CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभूति और अध्ययन

8.5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

।-५

अध्ययन

मिश्र

वालेका ताक्षर	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

... वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं० १००७
दिनांक ....
नरिया, ... वाराणसी

१० ४०५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभूति और अध्ययन

A. 405

हिन्दी कवियों की काव्य साधना, सेनापति और उनका काव्य, विचार-वीथिका, रसखान का अमर काव्य, आदि कृतियों के रचयिता

श्री दुर्गाशंकर मिश्र

प्रकाशक

नवयुग ग्रंथागार

छितवापुर रोड, लखनऊ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामेश्वर तिवारी
अध्यक्ष
नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ

प्रथम संस्करण
दिसम्बर, १९५४
मूल्य साढ़े तीन रुपया

मुद्रकः—
श्री रामचरणलाल श्रीवास्तव,
पवन प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं०. १००५....
वि० ४०५

प्रस्तावना

श्री दुर्गाशंकर मिश्र बी० ए०, साहित्य रत्न के कुछ आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह 'अनुभूति और अध्ययन' के नाम से प्रकाशित हो रही है। इस संग्रह में न केवल हिन्दी साहित्य की किन्तु संस्कृत-साहित्य की भी पर्याप्त चर्चा है। पुस्तक में संग्रीहीत पन्द्रह निबन्धों में से "संस्कृत के महाकाव्य", "महर्षि व्यास की काव्य-सुषमा" और "कालिदास का सौन्दर्य-वर्णन" तो संस्कृत साहित्य से ही सम्बन्ध रखनेवाले निबन्ध हैं। "साहित्य और संगीत", "साहित्य में गंगा", "भक्तिकालीन कविता की सामान्य पृष्ठभूमि" तथा इसी प्रकार के अन्य निबन्धों में भी संस्कृत साहित्य के पर्याप्त उद्धरण हैं।

श्री दुर्गाशंकर जी मिश्र का अध्ययन व्यापक है और उन्होंने जिस विषय पर कलम उठाई है उसमें पर्याप्त उपादेय सामग्री दे दी है जो उनकी अनुभूति और उनके अध्ययन से अलंकृत है। इन निबन्धों में अनुभूति की अपेक्षा अध्ययन की मात्रा विशेष है। परन्तु हमारा विश्वास है कि श्री मिश्र जी की लेखनी ज्यों ज्यों प्रौढ़ होती जायगी त्यों त्यों उसमें अनुभूति का भी समावेश उसी मात्रा में अधिकाधिक होता चला जायगा।

मिश्र जी के समीक्षात्मक निबन्ध सन् १९४७ से ही भार की लब्ध-प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। सन् १९५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में उनकी प्रथम पुस्तकाकार कृति "हिन्दी कवियों की काव्य साधना" नाम से प्रकाशित हुई। दूसरी कृति विचार-वीथिका नाम से अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। वह भी समीक्षात्मक निबन्धों का संग्रह ग्रन्थ है। 'अनुभूति और अध्ययन' उनकी तीसरी पुस्तक है।

यह तो मानी हुई बात है कि जब कोई पुस्तक मुद्रित की जाती है तब वह "स्वान्तः सुखाय" की अपेक्षा "लोक हिताय" ही का दृष्टिकोण विशेष रूप से समक्ष रखकर प्रकाशित की जाती है। सत्साहित्य के प्रकाशन का लक्ष्य यही होना चाहिये। उसमें यदि प्रेस के भूतों की कृपा से अर्थ का अनर्थ हो रहा हो तो उसके प्रकाशन की उतावली कभी कभी 'लोक हिताय' के स्थान पर 'लोक-भ्रमाय' का वातावरण उपस्थित कर देती है। हमारा विश्वास है कि भविष्य में श्री मिश्र जी इस बात का ध्यान अवश्य रखेंगे।

समीक्षा के क्षेत्र में श्री मिश्र जी उत्तम प्रगति कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि उनकी कृतियों से न केवल प्रांतीय साहित्य की श्री-वृद्धि होगी, किन्तु अखिल भारतीय स्तर पर भी भगवती भारती का मंदिर उनसे अलंकृत हो उठेगा।

सिविल लाइन्स
राजनांद गाँव (म० प्र०)
दिनांक १६-११-५४ ई०

डा० बलदेवप्रसाद मिश्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो शब्द

आज से दो वर्ष पहले श्री दुर्गाशंकर जी मिश्र की एक पुस्तक 'हिन्दी-कवियों की काव्य-साधना' नाम से प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने माध्यमिक वर्गों के विद्यार्थियों के लिए कुछ आलोचनात्मक लेख लिखे हैं। उनकी 'अनुभूति और अध्ययन' नाम की यह दूसरी पुस्तक उच्चतर कक्षा के विद्यार्थियों के साथ ही अन्य साहित्य-प्रेमियों के भी उपयोग के लिए लिखी गई है। इसमें जिन विषयों पर विचार किया गया है उनमें प्रधानतः ऐसे हैं जिनका समावेश विद्यालयों के पाठ्य ग्रंथों में प्रायः नहीं किया जाता। किन्तु सामान्य साहित्यिक दृष्टि से उनका अपना पृथक् महत्त्व है और साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं में उनपर निबन्ध प्रकाशित भी होते रहते हैं।

मिश्र जी ने इसमें संग्रीहीत लेखों के लिखने के पहले उनके वर्ण्य विषयों का सपरिश्रम अध्ययन किया है और उनका प्रतिपादन करते समय उनके विविध अंगों को तदनुसार उचित क्रम देने तथा अपनी मान्यताओं को प्रमाणित करते जाने की भी चेष्टा की है। उनकी सभी स्वीकृतियों के विषयों में उनसे सबका सहमत हो जाना संभव नहीं और न यह कभी आवश्यक ही माना जा सकता है। यदि आलोचक में यथेष्ट विचार-स्वातंत्र्य होतो वह उसके किसी भी युक्तिसंगत कथन को प्रामाण्य बना दे सकता है, आवश्यकता केवल इसी बात की है कि उसका मंतव्य वस्तुतः गंभीर चिंतन एवं मनन पर भी आश्रित हो।

मिश्र जी की इस पुस्तक के लेख सुन्दर एवं सुपाठ्य हैं और मुझे आशा है कि इसका अच्छा स्वागत होगा।

बलिया
१७-११-५४

परशुराम चतुर्वेदी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

'अनुभूति और अध्ययन'—निबंधसंग्रह है। इसके अन्तर्गत जिन निबंधों का संग्रह किया गया है, वे न केवल विद्यार्थियों के लिए परीक्षा की दृष्टि से ही उपयोगी हैं, वरन् वे लेखक की साहित्यिक सुरुचि. अध्ययन और मर्मग्राही दृष्टि के द्योतक हैं। संस्कृत और हिन्दी काव्य के व्यापक ज्ञान तथा प्रकृति और जीवन के निरीक्षण को समाविष्ट किये हुए विविध विषयों के ऊपर लिखे गये निबंध रोचक, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण हैं। मेरे निकट एक और उपयोग इन निबंधों का प्रगट है। और वह है पाठक में साहित्यिक अभिरुचि को जगाना। इसे मैं सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। साहित्यिक-निबंधों में यदि लेखक अपनी सर्जनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिभा और व्यापक व्युत्पत्ति द्वारा सुपाठ्य, ज्ञानवर्धक और रोचक सामग्री प्रस्तुत कर सका, तो यह उसकी सफलता का स्वतः प्रभाव है। इस कसौटी पर 'अनुभूति और अध्ययन' के अनेक निबंध कसे जा सकते हैं।

विश्वास है कि लेखक अपने इस कार्य को भविष्य में और भी अधिक तन्मयता के साथ करता रहेगा।

डा० भगीरथ मिश्र

लखनऊ विश्वविद्यालय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

हमें श्री दुर्गाशंकर मिश्र की नवीनतम कृति 'अनुभूति और अध्ययन' को अपने प्रिय पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मिश्र जी की 'हिन्दी कवियों की काव्य-साधना', सेनापति और उनका काव्य, 'विचार-वीथिका एवं रसखान का अमर काव्य' नामक चार समालोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा 'अनुभूति और अध्ययन' उनकी पाँचवीं कृति है। प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के प्रसिद्ध मासिक एवं साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं—कल्पना, अजन्ता, विशाल भारत, हिन्दुस्तान, माधुरी, सरस्वती संवाद—आदि में प्रकाशित मिश्र जी के समीक्षात्मक निबन्ध संगृहीत हैं। कुछ निबन्ध तो शोध-पूर्ण भी हैं तथा जहाँ तक हमारा विश्वास है महर्षि व्यास की काव्य सुषमा, राम काव्य के उद्भव और विकास तथा कविता में गंगा वर्णन के विषय में प्रथम बार ही इतने विस्तार के साथ विचार किया गया है। लेखक की समीक्षाशैली सर्वथा रोचक तथा संतुलित है और पुस्तक में सर्वत्र ही उनके व्यापक अध्ययन की झलक दृष्टि-गोचर होती है। आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक हमारे प्रिय पाठकों को अवश्य ही पसन्द आयेगी। पुस्तक में प्रूफ की कुछ भूलें रह गई हैं तथा 'छान्दोग्य उपनिषद' का 'द्यान्दोग्य उपनिषद्' 'Sanskrit Drama' का 'Sankrit Drama' और 'कामायनी' का 'कायायनी' एवं कवित्व का कावियत्व तो छपा ही है किन्तु साथ ही पृष्ठ १५३ की चौबीसवीं पंक्ति ही अशुद्ध छप गई है जिसे कि इस प्रकार होना चाहिए-"......... डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की वाङ्मय विमर्श, डा० भगीरथ मिश्र की 'हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास' तथा श्री सुमन और मल्लिक की 'साहित्य विवेचन' आदि कृतियों.........।" आशा है पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे।

प्रकाशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निवेदन

'विचार-वीथिका' की भाँति 'अनुभूति और अध्ययन' भी समय समय पर विभिन्न मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित मेरे समीक्षात्मक निबन्धों का संग्रह है। एक दो निबन्धों को छोड़कर इसके अधिकांश निबन्ध अभी हाल ही में —विगत दो तीन वर्षों के अंदर—प्रकाशित हुए हैं तो भी साहित्य के क्षेत्र में सर्वदा ही विचारों की प्रगति होती रहती है अतः हो सकता है कि कहीं कहीं मेरे निबन्धों में आज के विचारों का प्रतिबिंब पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर न होता हो। लेखक यह भी स्वीकार करता है कि इन निबन्धों में विषय के साथ पूर्ण न्याय भी नहीं हो सका है (यद्यपि सीमाबंधन के फलस्वरूप निबन्ध में विवेचन की पूर्णता भी असंभव ही है) तथा कहीं-कहीं साहित्यिक-सिद्धान्तों में मतभेद भी देख पड़ता है किन्तु न तो लेखक ने किसी भी निबन्ध में किसी भी व्यक्ति विशेष को केन्द्र बनाने का प्रयास ही किया है और न कहीं उसने साहित्यिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते समय जान बूझकर कुछ कवि या लेखकों की उपेक्षा ही की है। अनुभूति के सहज आलोक का साहित्य की कसौटी मानकर उसके (साहित्य के) सम्बन्ध में किसी महत्वपूर्ण तथ्य का साक्षात्कार कर उसे सशक्त रूप में प्रकट करने की चेष्टा ही लेखक ने की है और इस प्रकार इन निबन्धों का सृजन किसी निश्चित योजना के अनुसार नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि लेखक के ये विचार और निष्कर्ष समालोचकों को कहाँ तक रुचिकर और उपादेय प्रतीत होंगे तो भी यदि प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री से पाठकों को तनिक भी संतोष हुआ तो लेखक अपने श्रम को अव्यर्थ न समझेगा।

लेखक हृदय से आभारी है डा० बलदेव प्रसाद जी मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट० भूतपूर्व अध्यक्ष मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा हिन्दी विभाग नागपुर विश्वविद्यालय, आदरणीय श्री परशुराम जी चतुर्वेदी एम० ए० एल-एल० बी०, डा० भगीरथ जी मिश्र एम० ए०, पी० एच० डी०, रीडर लखनऊ विश्वविद्यालय प्रभृति समीक्षकों, विचारकों और साहित्य मनीषियों का जिन्होंने कि प्रस्तुत पुस्तक को अपनी प्राक्कथन प्रस्तावना तथा दो शब्द से अलंकृत करने की कृपा की है। सुहृदवर श्री रामेश्वर जी तिवारी के प्रति भी यहाँ कृतज्ञता ज्ञापन अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उन्हीं के आत्मीय-भाव से पुनः पुनः प्रेरित करने पर ही इस कृति को प्रकाश में आने का अवसर प्राप्त हो सका है।

कार्तिक पूर्णिमा
संम्वत २०११;
हंसापुरी, भंडारा रोड,
नागपुर (म० प्र०)

दुर्गाशंकर मिश्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुप्रसिद्ध समालोचक, निबन्धकार एवं कवि

आदरणीय

आचार्य श्री विनयमोहन जी शर्मा

को

सादर समर्पित

दुर्गाशंकर मिश्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
१—साहित्य और संगीत	६— १८
२—संस्कृत के महाकाव्य	१८— ३३
३—हिन्दी साहित्य में नाटकीय गीतों की परम्परा	३३— ५०
४—महर्षि व्यास की काव्य सुषमा	५०— ६५
५—राम काव्य की परम्परा	६६— ७६
६—कालिदास का सौंदर्य वर्णन	७६— ८८
७—हिन्दी गीतिकाव्य के विविध रूप	८८—१०४
८—साहित्य में गंगा	१०४—११६
६—आचार्य शुक्ल का निबन्ध कृतित्व	११६—१३१
१०—'प्रसाद' का गीति-काव्य	१३२—१४७
११—हिन्दी साहित्य-समीक्षा के विविध मान दंड	१४७—१७०
१२—आँसू में प्रेम तत्व	१७०—१८१
१३—भक्ति कालीन कविता की सामान्य पृष्ठभूमि	१८१—२०५
१४—रसखान का भाषा सौन्दर्य	२०५—२१२
१५—हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण की विविध शैलियाँ	२१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभूति और अध्ययन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य और संगीत

वेदों और उपनिषदों में "उद्गीथ" नामक एक शब्द का उल्लेख किया गया है। 'छान्दोग्य उपनिषद' में तो "उद्गीथ" के महत्व पर प्रकाश भी डाला गया है। "उदगीयते त्युद्गीथ:" अर्थात् जो उच्च स्वर से गाया जाए। उस "उद्गीथ" को ही सबका रस माना जाता है:—

"एषा भूतानां पृथ्वी रस: पृथिव्या आपो रसोऽपानोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रस: पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋच: सामरस: साम्न उद्गीथो रस:।"

अर्थात् सब भूतों का रस पृथ्वी; पृथ्वी का रस जल; जल का रस औषधियाँ; औषधियों का रस पुरुष; पुरुष का रस वाणी, वाणी का रस ऋग्वेद; ऋग्वेद का रस सामवेद और सामवेद का रस उद्गीथ है। ये तो उद्गीथ का उपनिषदों में विस्तार-पूर्वक उल्लेख किया गया है पर हम केवल एक ही मंत्र यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं:—

"अथ खलु य उद्गीथ: स प्रणवो य: प्रणव: स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति।"

अर्थात् जितना कुछ गेय काव्य-साहित्य वा संगीत है सब प्रणव ओंकार है और जो कुछ ओंकार है वह सब गेय है अर्थात् गाने की वस्तु है। सृष्टि के आरम्भ में इस प्रणव ओंकार का ही गान किया गया। ओ-ओ-ओ-म यही संगीत उस कवि ने गाया। कवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द 'कु' धातु से सिद्ध होता है जिसका अर्थ गीत गाना ही है। ईश्वर को भी कवि कहते हैं क्योंकि उसने वेदों के मंत्र ऋषियों के मानस में गा-गाकर सुनाए। काव्य और संगीत की उत्पत्ति इस प्रकार से वैदिक काल के पूर्व ही हो चुकी थी तथा वैदिक ग्रन्थों में तो उनका विकसित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के उष: सूक्त में काव्यित्व विशेष रूप से है तथा सामवेद में तो भारतीय संगीत पर अत्यधिक प्रकाश डाला गया है।

प्रसिद्ध कवि अल्फ्रेड आस्टिन का कथन है कि—"No verse which is unmusical or obscure can be regarded as poetry, whatever other qualities it may possess" अर्थात् कविता में और चाहे कितने भी गुण क्यों न हों पर यदि वह संगीत विहीन और अर्थ की रमणीयता से रहित है तो फिर वह कविता नहीं कहला सकती। इसी प्रकार एक विद्वान् ने कहा है कि— "Poetry is music in words and music is Poetry in sound" अर्थात् कविता शब्दों के रूप में संगीत है और संगीत स्वर के रूप में कविता है। कविता और संगीत का वांछनीय सम्बन्ध है। महाकवि मिल्टन जो कि स्वयं भी संगीत के बहुत बड़े प्रेमी थे, काव्यकला और संगीतकला को एक दूसरे की बहन मानते थे। 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द: काव्यम्' नामक उक्ति द्वारा यह अवश्य विदित होता है कि रमणीय अर्थ प्रतिपादित करने वाले शब्दों को काव्य कहते हैं पर उन शब्दों में रमणीयता का प्रादुर्भाव तभी हो सकता है जब कि उनमें संगीत की सी ध्वनि हो। संगीत की सहायता से प्राय: साहित्य के आभ्यंतरिक और बाह्य दोनों प्रकारों के सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। हमारा पुरातन काव्य साहित्य गेय ही है। 'आयुर्वेद' आदि ग्रन्थों में भी संगीत का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गीति काव्य का तो अर्थ यही है कि वह काव्य जो गाया जा सके। यों तो हिन्दी काव्य प्राय: गेय ही माना जाता है और काव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा संगीत का सहज सामञ्जस्य ही गीतिकाव्य कहलाता है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में—"गीतिकाव्य का यह लक्षण है कि उसमें व्यक्तिगत विचार, भावोन्माद, आशा निराशा की धारा अबाध रूप से वहती है। कवि के अन्तर्जगत के सभी विचार-व्यापार और उसके सुक्ष्म हृदयोद्‌गार उस काव्य में संगीत के साथ व्यक्त होते हैं। गीतिकाव्य में तो काव्य और संगीत को विलग नहीं किया जा सकता।

गीत प्रधानत: दो प्रकार के होते हैं। काव्यगीत और ग्रामगीत या लोकगीत। इन दोनों प्रकार के गीतों पर संगीत का व्यापक प्रभाव पड़ता है। एक ग्रामगीत देखिए:—

आजु सोहाग की राति चंदा तुम उइहउ।
चंदा तुम उइहउ, सुरुज जिनि उइहउ॥
मोर हिरदा बिरस जिनि किहेउ मुरुग जिनि बोलेउ।
मोर छतिया बिहरि जिनि जाइ तु पह जिनि फाटेउ॥
आजु करहु बड़ि राति चंदा तुम उइहउ।
धीरे-धीरे चलि मोरु सुरुज बिलम से अइहउ॥

[आज सोहाग की रात है चन्द्रमा तुम उदय होना, परन्तु हे सूर्य तुम मत उदय होना।

हे मुर्गे! तुम मत बोलना; बोलकर मेरा हृदय बिरस मत करना। पौ तुम मत फटना क्योंकि कहीं तुम्हारे फटने से मेरी छाती न फट जाय।

हे चन्द्र आज रात लम्बी करना और तुम अवश्य उदय होना, परन्तु हे मेरे सूर्य तुम धीरे धीरे चलकर देर से आना।]

प्रस्तुत ग्रामगीत संगीत के स्वरताल पर आसानी से गाया जा सकता है। आधुनिक गीतिकाव्य के विविध रूप लोकगीतों से विशेष रूप से प्रभावित हुये हैं। उत्तर प्रदेश में लावनी का अत्यन्त प्रचार रहा है और कव्वाली, कजली, विरहा आदि भी वहाँ के भिन्न भिन्न भागों में प्रचलित रहे हैं। लावनी का प्रभाव आधुनिक हिन्दी गीति-काव्य पर विशेष रूप से पड़ा है। एक उदाहरण देखिये—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह सभा चतुर जो बिगड़े काम सुधारै;
जब तलक बनै तब तलक न हिम्मत हारै। (टेक)
जो राजा को औ रैयत को दुख होवैं;
वह मंत्र विचारे दोनों को सुख होवै,
मंत्री वह है जिसमें यह पौरुख होवै,
सब अंग पलै जब मुखिया मुख ज्यों होवै।
सिद्धान्त में साधै, विवेक मंत्र बिचारै,
जब तलक बनै तब तलक न हिम्मत हारै॥

लावनी में पाँच पक्तियों के पश्चात् एक चरण की पुनरावृत्ति हुआ करती है। लावनी की ही भाँति कजली, दादरा आदि अन्य लोक-गीतों में भी एक एक पंक्ति की पुनरावृत्ति हुआ करती है। यह पुनरावृत्ति आधुनिक गीतिकाव्य में भी स्वीकार की गई है। 'शंकर' जी ने अपनी 'पंचपुकार' नामक कविता में इसी पुनरावृत्ति का प्रयोग किया है—

किसी से कभी न हारूँगा। (टेक)
उर्दू की बेनुक्त इबारत लिख दूँ काबिल-दीद,
'बीनी खुद बुरीद' को पढ़ के 'बेटी देय जरीद;
चुनीदाँ नज्र गुज़ारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

शनैः शनैः ज्यों ज्यों आधुनिक हिंदी गीति काव्य का विकास होता गया त्यों त्यों छन्दों में नूतनता आती गई और संगीत की रूप-रेखा भी परिवर्द्धित होती गई। प्रसाद जी ने तो अपने गीतिकाव्य में संगीत का संस्कृत (क्लासिकल) रूप प्रस्तुत किया। उनके नाटकीय गीतों में तो राग रागनियों की भी योजना है।

काव्य में संगीत छन्दों की लय से एक भिन्न वस्तु मानी जाती है और गवैयों के गीतों से भी उसमें विभिन्नता देख पड़ती है। निराला जी का 'बादल राग' देखिये—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

झूम झूम मृदु गरज-गरज घन घोर!
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर!
झर झर झर निर्झर - गिरि - सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में,
मन में, विजन - गहन - कानन में,
आनन - आनन में, रव - घोर-कठोर-
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर!

इस कविता का संगीत कवि का अपना संगीत है। निराला जी ने लिखा भी है:—"राग रागनियों में भी स्वतंत्रता ली गई है। भाव प्रकाशन के अनुकूल उनमें स्वर विशेष लगाए गए हैं—उनका शुद्ध रूप मिश्रित हो गया है। यह भावप्रकाशन वाला बोध पश्चिमी संगीत के अनुसार है।" अपने संगीत के विषय में भी वे लिखते हैं:—"जो संगीत कोमल, मधुर, और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। ताल, प्रायः सभी प्रचलित हैं प्राचीन ढंग रहने पर भी वे नवीन कण्ठ से नया रंग पैदा करेंगी।"

श्री सुमित्रानंदन पंत तो शब्दों का चयन ही इस प्रकार से करते हैं कि पदों का अर्थ शब्दों के नाद द्वारा ही प्रतिध्वनित हो जाता है। देखिये:—

जगत् की शत-कातर - चीत्कार
बेधतीं रुधिर! तुम्हारे कान!
अश्रु - स्रोतों की अगणित - धार
सींचती उर-पाषाण!
अरे क्षण - क्षण सौ सौ निश्वास
छा रहे जगती का आकाश!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्दिक घहर घहर आक्रान्ति,
ग्रस्त करती सुख शांति !

गीति काव्य के अतिरिक्त काव्य के अन्य रूपों तथा अन्य छन्दों पर भी संगीत का प्रभाव पड़ता है। मालिनी को पीलू राग और मुरफाख्ता ताल पर तथा शार्दूल विक्रीड़ित छन्द को 'गारवा' राग और 'झंपा' ताल पर सरलता से गा सकते हैं। मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, वियोगिनी, वसन्ततिलका और भुजंग-प्रयात आदि भी किसी न किसी राग और ताल पर गाए जा सकते हैं। यहाँ तक नहीं ब्रजभाषा के घनाक्षरी छन्द भी निस्संकोच रूप से गेय माने जा सकते हैं। रत्नाकर जी का निम्नांकित कवित्त आसानी से गाया जा सकता है:—

नन्द और जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़ भरे लालन की लालच लगावती।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृगनैननि के गुन-गन गावती॥
जमुना-कछारनि की रंग-रस-रारनि की,
विपिन-विहारनि की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की,
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती॥

इस प्रकार कविता और संगीत का तो सम्बन्ध है ही परन्तु गद्य में भी संगीतात्मकता आवश्यकीय है। "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" के अनुसार गद्य ही कवियों के लिए कसौटी है; अर्थात् किसी भी लेखक की कुशलता उसकी गद्यशैली द्वारा ही जानी जा सकती है। "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" के अनुसार रसात्मक वाक्य ही काव्य है परन्तु गद्य में भी सरसता का होना परमावश्यक है। काव्य तो सरस होना ही चाहिए पर गद्य में कहीं नीरसता न झलक पड़े इसका ध्यान प्रत्येक लेखक को रखना चाहिए। संस्कृत साहित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में बाणभट्ट का नाम अमर है। उनके गद्य में संगीत की ध्वनि, रसोत्कर्ष, भाव प्रकाशन और कोमलकान्त पदावली की बहुलता है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'कादम्बरी' में गद्य का निखरा हुआ रूप देख पड़ता है और बाणभट्ट को जो संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का जन्मदाता माना जाता है वह कुछ अनुचित नहीं है। हिंदी साहित्य में भी कई ऐसे लेखक हैं जिनकी भाषा में संगीतात्मकता है। यहाँ हम प्रेमचन्द जी की 'मुक्तिमार्ग' नामक कहानी से एक अवतरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें भावव्यंजकता, स्पष्टता, सुमधुरता, सरलता और प्रवाह के साथ साथ लय तथा संगीत भी है। देखिए:—

"अग्नि-मानव-संग्राम का भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। एक पहर तक हाहाकार मचा रहा। कभी एक पक्ष प्रबल होता था, कभी दूसरा। अग्नि-पक्ष के योद्धा मर मर कर जी उठते थे और द्विगुण शक्ति से रणोन्मत्त होकर शस्त्र प्रहार करने लगते थे। मानव पक्ष में जिस योद्धा की कीर्ति सबसे अधिक उज्ज्वल थी, वह 'बुद्धू' था। बुद्धू कमर तक धोती चढ़ाए, प्राण हथेली पर लिए अग्नि राशि में कूद पड़ता था और शत्रुओं को परास्त करके बालबाल बच कर, निकल आता था। अन्त में मानव दल की विजय हुई, किन्तु ऐसी विजय जिस पर हार भी हँसती।"

संगीत का नाटकों के भी साथ अभिन्न सम्बन्ध है बल्कि यह भी कह सकते हैं कि वह नाटक का एक प्रमुख अंग है। अरस्तू ने अपने 'पोएटिक्स' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में नाट्यरचना के नियमों का उल्लेख करते हुए नाटक में निम्नलिखित तत्त्व आवश्यक माने हैं—Fable (कथा), characters (पात्र), Diction (शैली), thought (भावप्रकाशन) Decoration (अलंकार) और Music (संगीत)। इस प्रकार अरस्तू ने संगीत को भी नाटक का एक आवश्यक तत्त्व माना है। संस्कृत नाटकों में तो संभाषण के मध्य कवित्वमय वातावरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से पद्यों का प्रयोग हुआ करता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार प्राचीन आचार्यों ने भी नाटकीय सौंदर्य की वृद्धि के हेतु संगीत की सहायता आवश्यक मानी थी। हिन्दी नाटकों में भी गीतों का प्रयोग होता रहा है यद्यपि प्रारम्भ में उनमें कवित्व का अभाव ही रहा। पारसी नाटकों में तो गानों का विशेष रूप से प्रचार था और उनके नाटकों में तो 'शकुन्तला' जैसी नायिकाएँ 'पतली कमर बलखाय' जैसे वासना मूलक और कुरुचि उत्पादक गीत ही गाया करती थीं हमारे कुछ प्रारम्भिक नाटकों में भी यह प्रभाव दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अवश्य इस दिशा में कुछ नवीनता लानी चाही पर वे भी प्राचीन परम्परा के ही पोषक रहे और डा० श्रीकृष्ण-लाल के शब्दानुसार "हरिश्चन्द्र स्कूल के नाटककार मुक्तक पद्यों के द्वारा रीतिकालीन कविता का वातावरण उपस्थित करते थे परन्तु कुछ नाटककारों ने पद, ठुमरी, दादरा इत्यादि गानों का भी प्रयोग किया।" आगे चलकर श्री जयशङ्कर 'प्रसाद' तथा उनके समका-लीन नाटककारों ने इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की और पद, दादरा, ठुमरी की अपेक्षा हिन्दी गीतिकाव्य की नवीन प्रवृत्तियों के विकसित स्वरूप को प्रस्तुत किया। प्रसाद जी के नाटकीय गीत तो हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि हैं तथा उनके द्वारा यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में संगीत द्वारा नाटकीय सौंदर्य द्विगुणित हो उठता है। उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होते होते ही यूरोप में आधु-निक नाटकों का सूत्रपात हो चुका था और इब्सनवाद का प्रभाव पूर्ण रूप से छाया हुआ था। इब्सन का प्रभाव यूरोप में ही नहीं बल्कि भारतीय नाटककारों पर भी पड़ा है। इब्सनवादी नाटकों में तो संगीत को विशेष स्थान नहीं दिया जाता बल्कि आधुनिक पाश्चात्य नाट्य-शास्त्री तो नाटक के केवल कथावस्तु, चरित्र-चित्रण और संवाद नामक तीन तत्त्व ही आवश्यक मानते हैं। इस प्रकार इधर अब हिंदी नाटकों में गीतों को प्रायः प्रस्तुत नहीं किया जाता परन्तु पात्रों के संभाषण में प्रयुक्त होने वाली भाषा तो संगीत पूर्ण ही रहती है। श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्मीनारायण जी मिश्र के 'सिन्दूर की होली', 'मुक्ति का रहस्य' और 'राजयोग' नामक नाटकों में यह विशेषता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि साहित्य के सभी विभिन्न अंगों से संगीत का किसी न किसी रूप में सम्बन्ध अवश्य है और संगीत का जो महत्व स्वीकार किया जाता रहा है वह कुछ अत्युक्ति पूर्ण नही है। परन्तु संगीत द्वारा केवल रमणीयता की वृद्धि ही करना चाहिये; और यदि कहीं संगीत की बहुलता हो गई या उसी का प्रभाव कृतियों पर विशेष रूप से पड़ने लगा तो फिर पाठकों को अरुचि ही होती है। महामुनि भरत ने तो 'नाट्यशास्त्र' में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है की "रूपकों में गीत, वाद्य, और नृत्य की बहुलता होने से स्वयं नटों को ही नहीं वल्कि दर्शकों को भी अरुचि हो जाती है, फलस्वरूप रस-परिपाक न होने से रूपकों में कुछ भी आनन्द नहीं आता।" इसी प्रकार कविता को भी यदि संगीत का अनुगामिनी वना दिया जाता है तो फिर कवित्व का ह्रास ही होता है। अंग्रेजी कवि का स्विनबर्न ने अपनी कविताओं को संगीत की अनुगामिनी वना दिया है अत: उनमें भावों की वह सुघरता दृष्टिगोचर नहीं होती। संगीत के सहयोग के बिना 'साहित्य सौन्दर्य की वृद्धि को जो असंभव माना जाता है उसके लिए यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि शब्दों की सहायता से कोई भी साहित्य प्रकार भावों को सुन्दरतम रूप में व्यक्त कर सकता है। यदि संगीत किसी भाव को संकेतमात्र द्वारा ही प्रदर्शित करता है और केवल वाह्यजगत् के चित्रण में ही विशेष समर्थता दिखा सकता है तो साहित्य वाह्य और आभ्यंतरिक जगत दोनों प्रकार की परिस्थितियों का चित्रण कर सकता है। साथ ही साहित्य का क्षेत्र संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत भी है।

इतना होते हुये भी वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला नामक पाँचों कलाओं में अंतिम दो ही श्रेष्ठतम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानी जाती हैं तथा संगीत को तो विशेष महत्त्व दिया जाता है। संगीत कला का एक बड़ा सुन्दर पर सबसे सूक्ष्म और दार्शनिक रूप है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य और संगीत दोनों का अपनी अपनी दृष्टि में विशेष महत्व है तथा जैसा कि राजर्षि भर्तृहरि ने लिखा है कि जो प्राणी साहित्य और संगीतकला का से विहीन है—अर्थात् जिसे साहित्य और संगीतकला का ज्ञान नहीं है—वह बिना सींग और पूँछ के पशु के समान है; वह उचित ही है। देखिये:—

साहित्य-संगीत-कला-विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥

---

२ संस्कृत के महाकाव्य

साधारणतः काव्य के भेद तीन प्रकार से किए जाते हैं—शैली या आकार की दृष्टि से, अर्थ की दृष्टि से और बंध की दृष्टि से। शैली या आकार की दृष्टि से काव्य को गद्य, पद्य और मिश्रित (जिसका कि एक रूप चम्पू माना जाता है) नामक तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। अर्थ की दृष्टि से भी काव्य के उत्तम, मध्यम और अधम या सामान्य नामक तीन विभाग किए गए हैं। बंध की दृष्टि से भी दो प्रकार की काव्य-कृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं—एक प्रबन्ध और दूसरी निर्बन्ध या मुक्तक। प्रबन्ध काव्य में किसी कथा की क्रमबद्धता और तारतम्यता रहती है किन्तु मुक्तक काव्य में स्वच्छन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप से किसी रस, भाव या तथ्य को व्यक्त किया जाता है। मुक्तक काव्य में वैयक्तिक अनुभूतियों, भावनाओं और आदर्शों की प्रधानता रहती है तथा कवि अपने अन्तर्जगत की सुकुमार मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति द्वारा अपने हर्ष-विषाद, हास-विलास, संयोग-वियोग आदि का चित्रण कर पाठकों को भावमग्न कर देता है। वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता के ही कारण इस प्रकार की कविता को विषयगत (Objective) या भाव प्रधान माना जाता है। प्रबन्ध काव्य में वर्णन की प्रधानता रहती है और उसे विषय प्रधान (Subjective) या वर्णन प्रधान (Narrative) भी कहा जाता है। प्रबन्ध काव्य के भी तीन भेद माने जाते हैं महाकाव्य, खंडकाव्य और एकार्थकाव्य—एकार्थकाव्य वस्तुत: महाकाव्य और खंडकाव्य के मध्य की एक विधामात्र है तथा उसमें कथावस्तु की पूर्णता होते हुए भी महाकाव्य की भाँति वस्तु का विस्तार नहीं रहता और जीवन के किसी एक पक्ष-विशेष को ही चित्रित करने का प्रयास किया जाता है। डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों में—"एकार्थ की ही अभिव्यक्ति के कारण ऐसी रचनाएँ महाकाव्य और खंडकाव्य के बीच की रचनाएँ होती हैं।" खंडकाव्य में प्रवन्धकाव्य की सी तारतम्यता होते हुए भी उसका क्षेत्र महाकाव्य की अपेक्षा सीमित ही होता है। खंडकाव्य में जीवन के एक ही रूप का और एक ही प्रधान घटना का चित्रण किया जाता है। महाकाव्य वस्तुत: विषय प्रधान कविता के ही अंतर्गत आता है अतएव उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध वाह्यजगत के साथ रहने के कारण और उसी का विस्तार के साथ वर्णन करने के कारण वह वर्णनात्मक ही माना जाता है। उसमें कवि अपने अंतर्जगत की अनुभूतियों का चित्रण न कर वाह्यजगत में घटित होनेवाली घटनाओं का वर्णन करता है और इस प्रकार वह किसी एक कवि की कृति न होकर देश अथवा जाति की कृति होती है और उसके निर्माण में पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों का भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्वपूर्ण योग होता है। महाकाव्य में जीवन की अनेकरूपता का चित्रण किया जाता है और उसमें कथा की दीर्घता आकार की विशालता तथा भावों की विविधता भी विद्यमान रहती है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में—"वर्णनानुगुण से जो काव्य पाठकों को उत्तेजित कर सकता है, करुणाभिभूत, चकित, स्तम्भित, कौतूहली और अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कर सकता है, वह महाकाव्य है और उसका रचयिता महान् कवि।.........महाकाव्य में एक महाचरित्र होना चाहिए और उसी महाचरित्र का एक महत्कार्य और महानुष्ठान होना चाहिए।" श्री गुलाबराय ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—"महाकाव्य वह विषय प्रधान काव्य है जिसमें कि अपेक्षाकृत बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।" महाकाव्य में युग अथवा जाति का प्रतिफलन तो होता ही है तथा साथ ही देश या जाति में विगत, वर्तमान और भावी स्वप्नों को भी संक्षेप में चित्रित किया जाता है। मानव जीवन की विस्तार के साथ सर्वांगीण व्याख्या करने के हेतु केन्द्र बिन्दु के रूप में एक प्रमुख पात्र को लेकर तत्सम्बंधित कथावस्तु का निर्माण किया जाता है और कथा में क्रमबद्धता, प्रवाह तथा एकसूत्रता लाने पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। वर्णन की प्रधानता होते हुए भी उसमें मर्मस्पर्शिता की अधिकता रहती है। महाकाव्य का नायक विशेषरूप से ऐतिहासिक, धार्मिक या सांस्कृतिक महत्व का ही महापुरुष होता है और महाकाव्यकार को समस्त मानव-समाज, रीति रिवाजों, तत्कालीन परिस्थितियों और मानव चरित्र की विविधताओं पर प्रकाश डालने की पूर्ण सुविधा रहती है। श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने लिखा भी है—"महाकाव्य का उद्देश्य है—जीवन की घनीभूत, विशदतम, निगूढ़ अनुभूतियों को अपने महाकलेवर में समेटे रहना और मानवीय उच्चादर्शों को उद्भावित करना।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत के प्राचीन आचार्यों पाश्चात्य समीक्षकों और आधुनिक हिंदी आलोचकों ने महाकाव्य के लक्षण भी निर्धारित किए हैं। प्राचीन संस्कृतलक्षण-ग्रंथों में विस्तार के साथ महाकाव्य के विविध अंगों की विवेचना की गई है और महाकाव्य को रूप रेखा को भी निर्धारित किया गया है। छठवीं शताब्दी में दंडी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'काव्यादर्श' में और पन्द्रहवीं शताब्दी में विश्वनाथ ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'साहित्य दर्पण' में विस्तार के साथ महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डाला है। संस्कृत के इन प्राचीन आचार्यों के विचारों को ध्यान में रखते हुए महाकाव्य के आवश्यक लक्षण संक्षेप में, इस प्रकार दिए जा सकते हैं—

(१) महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है। किन्तु ये सर्ग न तो अत्यधिक दीर्घ हों और न अत्यंत लघु ही हों।

(२) महाकाव्य का नायक देवता या उत्तम कुल का क्षत्रिय जिसमें कि धीरोदात्त नायक के गुण हों, होना चाहिए। आवश्यकतानुसार एक वंश के कई राजा भी उन गुणों से समान रूप में युक्त होने पर नायक हो सकते हैं।

(३) कथा वस्तु या तो इतिहास प्रसिद्ध हो या सज्जनताश्रित। साथ ही उसका सुसंगठित होना भी आवश्यक है।

(४) इसमें कम से कम आठ सर्ग अवश्य होने चाहिए तथा एक सर्ग में एक ही छंद रहना चाहिए प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद बदल भी दिया जाता है। साथ ही प्रवाह की एकता भी विशेष आवश्यक है।

(५) शृंगार, वीर और शांत रस में से किसी एक की निष्पत्ति प्रधान रूप से की जानी चाहिए। अन्य रसों की भी गौण रूप से अभिव्यक्ति की जाती है।

(६) आवश्यकतानुसार संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतुओं, वन, समुद्र, संग्राम यात्रा आदि विषयों का भी वर्णन होना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७) प्रारम्भ में मंगलाचरण और वस्तुनिर्देश भी आवश्यक माने जाते हैं।

पाश्चात्य समीक्षकों ने भी महाकाव्य के लक्षणों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि तथा आलोचक टॉमस स्टर्न इलियट ने 'वॉट इज ए क्लासिक ?; नामक वर्जिस सोसायटी के भाषण में कहा है कि "महाकाव्य में युग का क्षण और कलाकार का क्षण एकाकार होते हैं।" डा० जानसन ने तो महाकाव्यों को "मानव प्रतिभा की महान अभिव्यक्ति" माना है। अरस्तू का विचार है कि "महाकाव्य में एक ही विषय, एक ही क्रिया, अपने आप में सम्पूर्ण, आदि-मध्य-अंत पूर्ण हो। इसका छन्द एक सा हो और रचना नाटक के शोकांत प्रकार की भाँति हो।" फ्रेंच आलोचक-ल बस्सु महाकाव्य को प्राचीन घटनाओं के चित्रण के एक रूपक के रूप में स्वीकार करते हैं तथा डेवनाराट का भी यही मत है कि महाकाव्यों को प्राचीन घटनाओं पर ही आधारित होना चाहिए क्योंकि प्राचीन घटनाओं के चित्रण में कवि को स्वतन्त्रता तो रहती ही है तथा सामयिक घटनाओं की अपेक्षा उनको अंकित करने में उसको कल्पना शक्ति भी विकसित होती है। परन्तु प्रसिद्ध आलोचक लुकन प्राचीन घटनाओं की अपेक्षा अर्वाचीन घटनाओं को ही महाकाव्य की पृष्ठ भूमि बनाना अधिक उपयुक्त समझते हैं क्योंकि ऐसा करने महाकाव्य में वर्णित चरित्रों की सजीव प्रतिभा जनता के मानस-पटल पर अंकित हो जाएगी। इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों के सर्वमान्य तथ्यों के आधार पर महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण माने जाते हैं।

(१) महाकाव्य एक वृहदाकार प्रकथन काव्य (Narrativc poretry) है।

(२) इसका नायक शूरवीर होना चाहिए और सम्पूर्ण कथावस्तु नायक को लेकर ही एक सूत्र में आबद्ध की जानी चाहिए। यद्यपि कुछ पाश्चात्य समीक्षक महाकाव्य के पात्रों का देवताओं से सम्पर्क

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापित रहना आवश्यक समझते हैं परन्तु अर्वाचीन आलोचक उन पात्रों के कार्यकलाप में दैवीशक्ति का आक्षेप आवश्यक नहीं समझते।

(३) इसमें एक ही प्रकार के छंद का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(४ इसकी शैली में एक विशेष प्रकार की शालीनता और उच्चता आवश्यक है।

(५) इसका विषय परम्परा से प्रतिष्ठित और जनप्रिय होना चाहिये।

विचार पूर्वक देखा जाय तो भारतीय आचार्यों तथा पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों में कोई विशेष विभिन्नता नहीं देख पड़ती। पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही विचारकों ने नायक की शालीनता तथा महानता और कथावस्तु के संगठन पर विशेष जोर दिया है। भारतीय आचार्यों ने यद्यपि धीरोदात्त नायक की उदात्त भावनाओं के चित्रण पर ही जोर दिया है किन्तु पाश्चात्य समीक्षक तो नायक के व्यक्तित्व की अपेक्षा जातीय भावनाओं के संवर्धन पर अधिक जोर देते हैं। आधुनिक हिंदी महाकाव्यों में भी नायकों की कुलीनता पर विशेष जोर नहीं दिया जाता तथा इतिहास प्रसिद्ध और जनप्रिय नायक का ही विशेष रूप से चित्रण किया जाता है। नायक की प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और शूरता ही महाकाव्य में जातीय जीवन की वास्तविकता ला देती है। इस प्रकार महाकाव्य सम्बन्धी भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षकों के विचारों में कोई मूल विभिन्नता नहीं है और दोनों ही जातीय आदर्शों के अनुकूल महाकाव्य के नायक का धीरोदात्त होना आवश्यक समझते हैं। दोनों ही महाकाव्य के आकार की दीर्घता और शैली की शालीनता के पक्ष में हैं। किन्तु इधर महाकाव्य के बहुत से प्राचीन लक्षण अब नहीं अपनाये जाते। मंगलाचरण इत्यादि की आवश्यकता तो कवियों ने समझी ही नहीं है तथा सर्गों के बीच-बीच में सरसता लाने के हेतु प्रगीतों (Lyrics) का भी उपयोग किया जाता है। वस्तुतः पुरातन आदर्शों का ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुसरण करना आवश्यक भी नहीं है तथा उनमें परिवर्तन-परिवर्द्धन कर नवीन आदर्शों की सृष्टि करना अनुचित भी नहीं है। चूँकि मानव सभ्यता विकासशील है अतः साहित्यिक आदर्शों और उद्देश्यों का विकास भी अवरुद्ध नहीं रह सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री विनयमोहन शर्मा ने उचित ही लिखा है—"महाकाव्य मानव की व्यापक अनुभूति का प्रतीक होता है, उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' या अरस्तू के 'पोएटिक्स' की बँधी बँधाई व्याख्या की सीमा में बँधकर अपने को प्रकाशित करे। कथा किसी भी युग की हो, यदि उसमें मानव की शाश्वत भावनाओं, उनकी उलझनों आदि का सबल उदघोष है तो उससे महाकाव्य की सृष्टि हो जाती है।"

भारतीय महाकाव्यों की परम्परा पर विचार करते समय हमें सर्व-प्रथम संस्कृत के महाकाव्यों पर प्रकाश डालना होगा। चूँकि वेद ही हमारे साहित्य के मूलस्रोत समझे जाते हैं। अतः स्वाभाविक ही संस्कृत कविता का मूलउद्गम ऋग्वेद में ही सबसे पहले देख पड़ता है। यद्यपि ऋग्वेद के कई स्थलों मं कवित्व की अपूर्व छटा दृष्टिगोचर होती है किन्तु संस्कृत का आदि काव्य 'वाल्मीकि रामायण' ही है। वाल्मीकि कृत रामायण द्वारा ही काव्य धारा विभिन्न स्रोतों में प्रवाहित होती हुई भास, कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ तथा भवभूति आदि की सहायता से कविता कानन को सींचती रही है। वाल्मीकि रामायण ने न केवल परवर्ती कवियों के सामने महाकाव्य का आदर्श उपस्थित किया है बल्कि उनकी कृतियों को प्रभावित भी किया है। भारतीय आचार्यों ने रामायण को ही आदि काव्य और वाल्मीकि को आदि कवि माना है। आदि कवि की रामायण और व्यास की 'महाभारत' द्वारा ऐतिहासिक महाकाव्यों की भी परम्परा का भी विकास हुआ है। जैसा कि आर्नल्ड ने लिखा है—"ऐतिहासिक महाकाव्य का विषय कोई गुम्फित बड़ी घटना होनी चाहिये। प्रमुख पात्र का उच्च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुलोत्पन्न तथा उच्च विचारशील होना आवश्यक है। विषय के अनुरूप उसमें वर्णन भी उच्चकोटि का होना चाहिए। ऐतिहासिक महाकाव्य का विकास कथोपकथन, स्वगत भाषण और वार्तालाप से हुआ है।" यह कथन इन दोनों कृतियों के प्रति पूर्णत: लागू होता है।

'वाल्मीकि रामायण' की वर्तमान प्रतियों में सात काण्ड देख पड़ते हैं जिनमें कुल चौबीस हजार श्लोक हैं। रामायण की प्रतियों में पाठभेद की अधिकता तो है ही तथा उसमें प्रक्षिप्त अंश भी अत्याधिक संख्या में हैं। पाश्चात्य विद्वानों का तो यही मत है कि रामायण की मूलप्रति में बालकांड और उत्तरकांड नहीं थे। प्रो० जैकोथी ने तर्कों के आधार पर यही सिद्ध किया है कि मूल रामायण में अयोध्या कांड से युद्ध कांड तक अर्थात् केवल पाँच काण्ड ही थे तथा शेष दो काण्डों की रचना बाद में हुई है। प्रो० जैकोवी का यह भी मत है कि मूल ग्रंथ में भी कहीं कहीं प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित किए गए हैं। विराटरनिट्ज का मत है कि रामायण की मूल कथा की रचना वाल्मीकि ने प्राचीन अनुश्रुतियों के आधार पर तृतीय शताब्दी ई० पू० में की थी किन्तु यह कथन तर्कसंगत नहीं जान पड़ता। वस्तुत: रामायण की मूलकथा की रचना आदि कवि ने राम के राज्य काल में ही की थी और महाभारत को प्रसिद्धि प्राप्त होने के पूर्व ही वह एक प्रसिद्ध प्राचीन कृति के रूप में गिनी जाने लगी थी।

वस्तुत: रामायण न केवल संस्कृत काव्य की प्रारंभिक अवस्था का चित्रण करती है वल्कि प्राचीन भारतीय संस्कृति का सुन्दर, समुज्ज्वल और स्वाभाविक स्वरूप प्रस्तुत करती है। साहित्य और संस्कृति का इतना सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण अन्य किसी देश के महाकाव्य में नहीं दृष्टिगोचर होता। रामायण हिन्दुओं का आचार शास्त्र है और उसमें मानवजीवन की सूक्ष्म तथा गंभीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समस्याओं को सुलझे हुए स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। आदि कवि ने रामायण में रामराज्य के रूप में एक आदर्श समाज का चित्रण कर मानव जीवन के लिए किस प्रकार का आदर्श आवश्यक है; यही दिखलाना चाहा है। ऐतिहासिक सामाजिक और राजनैतिक महत्व के साथ साथ रामायण में काव्यगत विशेषताओं की भी बहुलता है। महाकाव्य के लिए आवश्यक सभी प्रमुख लक्षण उसमें दृष्टिगोचर होते हैं। उसके कलापक्ष और भाव पक्ष दोनों ही निखरे हुए हैं। कथा वस्तु की विशदता, भावों की गंभीरता, रस व्यंजना की मर्मस्पर्शिता, भाषा की सुघरता के साथ साथ छन्दों का औचित्य भी उसमें देख पड़ती है बाह्य प्रकृति और अन्त: प्रकृति के स्वाभाविक सजीव चित्रण के साथ साथ हृदय की अव्यक्त भावनाओं का मूर्तिमान स्वरूप जैसा रामायण में अंकित किया गया है वैसा कई प्रसिद्ध पाश्चात्य महाकाव्यों में भी नहीं किया गया। वाल्मीकि रामायण से सर्व सामान्य जनता को न केवल लोकोत्तर आनन्द ही प्राप्त होता है बल्कि व्यवहारिक शिक्षाएँ भी प्राप्त होती हैं। वस्तुत: विश्व में इस प्रकार का अन्य कोई दूसरा प्रभावशाली ग्रंथ नहीं देख पड़ता।

यद्यपि महाभारत को विशेष रूप से इतिहास ही माना जाता है किन्तु वास्तव में वह Epic या महा काव्य ही है। महाभारत की वर्तमान प्रति वस्तुत: महाभारत के मूल ग्रंथ का परिवर्तित-परिवर्धित रूप ही है तथा उसके विकास में स्पष्ट ही तीन विशिष्ट काल दृष्टिगोचर होते हैं। आरम्भ में महर्षिव्यास ने जिस ग्रंथ की रचना की थी उसका नाम 'जय' था; वैशम्पायन ने इसी को परिवर्धित कर 'भारत' नाम दिया और अंत में सौति ने 'महाभारत' नाम से इसको पूर्ण विस्तृत रूप प्रदान किया। मैकडॉनल का तो यही मत है कि महाभारत के मूलग्रंथ में केवल ८,८०० श्लोक ही थे यद्यपि यह संख्या महाभारत में आए हुए श्लोकों की नहीं बल्कि कूटश्लोकों की है। वैशम्पायन के 'भारत' में श्लोकों की संख्या चौबीस हजार थी तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे चलकर तो महाभारत एकलाख श्लोकों से युक्त होकर एक विशालकाय महाकाव्य बन गया। महाभारत वस्तुत: भारतीय संस्कृति का विश्वकोष है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति कराने के कारण इसे पंचमवेद भी कहा जाता है। महाभारत को भी रामायण की भाँति लोकप्रियता प्राप्त हुई है तथा उसमें भी तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक दशा का समुज्ज्वल और स्वाभाविक रूप अंकित किया गया है। रामायण की भाँति महाभारत में भी मानव जीवन के विविध रूपों पर प्रकाश डालने वाले उपाख्यानों की बहुलता सी है तथा महाकाव्यों के लिए आवश्यक उपकरण भी उसमें दृष्टिगोचर होते हैं। विषय की उदात्तता, युद्ध वर्णन की सजीवता, भाषा की गंभीरता, छन्दों का औचित्य और रस-परिपाक से महाभारत का साहित्यिक सौंदर्य भी निखरा हुआ प्रतीत होता है तथा उसका महत्व इलियड और ओडेसी से कुछ कम नहीं जान पड़ता।

वाल्मीकि रामायण और महाभारत जैसे ऐतिहासिक महाकाव्यों के आविर्भाव के पश्चात परवर्ती कवियों के समक्ष महाकाव्य का आदर्श उपस्थित हो गया और उन्होंने भी महाकाव्यों के विकास में पूर्ण योग दिया। यों तो ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी के बहुत पहले ही काव्य साहित्य की समस्त शाखाओं का विकास होने लगा था और ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग प्राप्त हुए कई शिलालेखों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उस समय तक संस्कृत काव्य साहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। संस्कृत साहित्य का प्रभाव तो इसीसे स्पष्ट है कि तत्कालीन शिलालेखों की रचना भी संस्कृत में ही हुई है तथा रूद्रदमन का ईसवी सन् १५० का शिलालेख भाषा शैली का सुन्दर नमूना है। संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि कालीदास का जन्म काल भी जनश्रुतवाद के अनुसार ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी ही माना जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालिदास ने 'कुमार संभव' और 'रघुवंश' नामक दो महाकाव्यों की रचना की है जिनमें 'रघुवंश' को ही विशेष ख्याति प्राप्त हुई है तथा वह उनका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य भी माना जाता वे। 'कुमार संभव' में सत्रह सर्ग हैं किन्तु प्रारंभिक आठ सर्ग ही कालिदासकृत माने जाते हैं तथा शेष नौ सर्ग अन्य किसी लेखक ने लिखे हैं। कुमार संभव से शिव पार्वती के पुत्र कुमार कार्तिकेय के जन्म का वर्णन किया गया है। प्राकृतिक दृश्यों में मनोमुग्धकारी चित्रण के साथ साथ इसमें शृङ्गारिकता को भी प्रधानता दी गई है तथा कारुण्य भावनाओं का भी स्वभाविक चित्रण किया गया है इस प्रकार इसमें कालिदास के कला-सौष्ठव का निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है। कुमार संभव की अपेक्षा रघुवंश का कलापक्ष और भावपक्ष दोनों ही निखरे हुए हैं। उन्नीस सर्गों के इस महाकाव्य में रघुवंश के कई राजाओं का गुणगान किया गया है प्रारंभिक नौ सर्गों में राम के चार पूर्वजों का—दिलीप, अज, रघु और दशरथ का वर्णन हैं तथा पन्द्रवें सर्ग तक राम का चरित्र चित्रण किया गया है और अंतिम चार सर्गों में राम के वंशजों पर विहंगम दृष्टि डाली गई है। कथावस्तु प्राचीन होते हुए भी उसमें विचारों की मौलिकत और भावुकता पग पग पर झलक उठती है। रघुवंश में घटनाओं का बड़ा ही सुन्दर और वैचित्र्यपूर्ण विन्यास दृष्टिगोचर होता है। इन्दुमती का स्वयंबर अज-विलाप, राम तथा सीता की विमान यात्रा, शून्य अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी द्वारा कुश को स्वप्न-दर्शन नामक घटनाओं के योग से कथा वस्तु में स्वाभाविकता के साथ साथ मर्मस्पर्शिता का भी समावेश हुआ है। चूँकि कालिदास की कृतियों में संस्कृत की काव्यशैली का चारुतम रूप दृष्टिगोचर होता है अतः रघुवंश में भी स्वाभाविक ही सुन्दर, सरस, और सुबोध शब्दावली ही दृष्टिगोचर होती है। अंतर्जगत और बाह्यजगत दोनों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण करने में कवि सिद्धहस्त प्रतीत होता है। उसकी विलक्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पना शक्ति और रसव्यंजना भी सराहनीय है इसमें कोई संदेह नहीं कि—"आदर्शों की अनुपम सृष्टि के लिए, रम्य और ललित कथोपकथन के लिए, सरस एवं स्पष्ट भाव व्यंजना के लिए, और कोमल तथा मधुर रसोत्पत्ति के लिए रघुवंश कालिदास की कीर्ति-पताका को सतत परिस्फुरित करता रहेगा।" ❀

पाश्चात्य समीक्षकों ने अश्वघोष को संस्कृत का सर्वप्रथम महाकवि माना है। कालिदास के सदृश अश्वघोष भी एक सफल महाकवि, नाटककार, और गीतिकार थे। बुद्ध चरित्र और सौन्दरानन्द इनके दो प्रसिद्ध महाकाव्य है। यद्यपि प्रो० कीथ ने सौन्दरानन्द को उनकी प्रथम कृति माना है परन्तु वास्तव में बुद्धचरित्र ही उनका प्रथम महाकाव्य है। बुद्धचरित्र २७ सर्गों का एक महाकाव्य है। यद्यपि उसके केवल सत्रह सर्ग ही उपलब्ध होते हैं। उसका चीनी और तिब्बती भाषा में अनुवाद भी हो चुका है तथा इत्सिङ्ग के वर्णन से तो यही जान पड़ता है कि छठवीं-सातवीं शताब्दी में समस्त भारतवर्ष में बुद्धचरित के पठन-पाठन का प्रचार था। बुद्धचरित में गौतमबुद्ध के विचार का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है तथा गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों का भी चित्रण किया गया है। यद्यपि अश्वघोष बौद्ध धर्मावलम्बी थे तथापि उन्होंने उपनिषदों, भगवद् गीता रामायण और महाभारत से भी पर्याप्त सामग्री ग्रहण की है। महाकाव्य के सभी प्रमुख तत्त्व बुद्धचरित में दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार सौन्दरानन्द में भी ऐतिहासिक महाकाव्यों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए बुद्ध के सोतेले छोटे भाई नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी की कथा दी गई है तथा दिखलाया गया है कि बुद्ध ने नन्द को जो कि अपनी प्रिय पत्नी सुन्दरी के प्रेम में मदान्ध हुआ जा रहा था किस प्रकार

❀ दे०—संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—श्री चंद्रशेखर पांडेय तथा श्री शांतिकुमार नानूरामव्यास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बौद्ध धर्म का अनुगामी बनाया। सौन्दरानन्द में बीस सर्ग हैं तथा उसकी सम्पूर्ण प्रति भी उपलब्ध है। इस महाकाव्य में कवि ने रोचक काव्यशैली में दार्शनिक वादों का विवेचन किया है और बौद्ध सिद्धान्तों की भी शिक्षा दी है किन्तु कहीं भी नीरसता और दुरुहता नहीं देख पड़ती। अश्वघोष वैदभी रीति के प्रसिद्ध कवि थे अतः इन दोनों काव्यों में वैदर्भी रीति का परिष्कृत और प्रभावोत्पादक रूप दृष्टि-गोचर होता है। माधुर्य और प्रसाद गुणों की उनकी भाषा में अधिकता है तथा कहीं भी दीर्घ सामासिक पदावली नहीं दृष्टिगोचर होती।

कालिदास तथा अश्वघोष के पश्चात जिन महाकाव्यों का सृजन हुआ उनमें से अधिकांश की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण और महाभारत से ही ली गई है। इधर संस्कृत-काव्यजगत में शृंगार रस की प्रधानता भी हो चली थी तथा गीतिकाव्य का भी शनैः शनैः विकास हो रहा था। कालिदास और अश्वघोष ने जहाँ कविता में सरलता और स्वाभाविकता को आवश्यक समझा है वहाँ इन परवर्ती कवियों का उद्देश्य चमत्कारोत्पादन ही रहा है तथा कविता के भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। इन उत्तर कालीन कवियों की कृतियों में शुद्ध कवित्व की अपेक्षा सूक्तियाँ ही अधिक हैं।

संस्कृत के महाकवियों में कालिदास और अश्वघोष के पश्चात भारवि का ही नाम लिया जाता है तथा उनकी कीर्ति उनके एकमात्र महाकाव्य किरातार्जुनीय पर ही आधारित है। यद्यपि किरातार्जुनीय की कथा महाभारत के वनपर्व से ली गई है परन्तु भारवि ने कथा में कई नवीन मौलिक प्रसंगों की भी उद्भावना की है। द्यूतक्रीड़ा में पराजित होकर पांडव जब द्वैतवन में रहते हैं उस समय वेद व्यास के परामर्श से अर्जुन पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करते हैं और किरातवेशधारी शिव से युद्ध कर अपने बाहुबल का पराक्रम दिखाकर उनसे पाशुपत नामक दिव्यास्त्र प्राप्त करते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किरातार्जुनीय महाकाव्य की बस यही कथावस्तु है। इसमें अठारह सर्ग है तथा वीर रस की ही प्रधानता विशेष रूप से है; श्रृंगार आदि अन्य रस गौण ही हैं। महाकाव्य के आवश्यक लक्षण भी उसमें पाए जाते हैं और ऋतु, पवन, सूर्यस्त, जलक्रीड़ा आदि का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। चरित्र चित्रण प्रभावशाली है तथा कथोपकथन में ओजस्विता भी है। भारवि में अर्थ गौरव का विशेष गुण पाया जाता है तथा भारतीय महाकाव्यों की परम्परा में वे अलंकृत काव्य शैली के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। छोटी से छोटी कथा वस्तु भी किस प्रकार काव्य कला कुशलता से प्रभावपूर्ण और हृदयग्राही बन जाती है तथा उसमें महाकाव्य की विशदता आ जाती है इसके लिए किरातार्जुनीय एक आदर्श स्वरूप है ।

भट्टि भी एक प्रसिद्ध महाकाव्यकार हो गए हैं जिनका रावणवध जिसको कि भट्टिकाव्य भी कहा जाता है एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। रावणवध में रामकथा के वर्णन के साथ साथ व्याकरण के जटिल नियमों के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार यह एक शास्त्रकाव्य है जिसमें विषयवस्तु के चित्रण के साथ साथ व्याकरण शास्त्र का भी परिज्ञान करा दिया गया है। भट्टिकाव्य या रावणवध में बाइस सर्ग हैं और इस प्रकार यह भी एक विशाल काय महाकाव्य माना जाता है। प्रबन्ध पटुता का अाभाव होते हुए भी इसमें भाषा की सरलता और प्रांजलता तो है ही। कहीं कहीं जो कृत्रिमता और शाब्दिक आडम्बर देख पड़ता है उसका कारण विषय की गंभीरता ही है। रावणवध के साथ साथ कुमार दास रचित जानकी-हरण भी संस्कृत का एक प्रसिद्ध महाकाव्य माना जाता है जिसमें राम कथा का वणंन किया गया है। कथा में मौलिकता न होते हुए भी वर्णन शैली सुन्दर है तथा शब्द सुषमा और छंदों के नाद सौंदर्य के फल स्वरूप मधुरता की अधिकता सी जान पड़ती है।

संस्कृत साहित्य में माघ का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और उनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिशुपालवध' की गणना उच्चकोटि की कृतियों में की जाती है। इस महाकाव्य में बीस सर्ग हैं और उसमें युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ समाप्त होने पर कृष्ण द्वारा किए गए शिशुपाल वध की घटना का ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। भारवि के सदृश्य माघ ने भी कई नवीन प्रसंगों का समावेश कर कथावस्तु को विस्तृत किया है तथा अलंकृत काव्य शैली का ही प्रश्रय लिया है। माघ की कल्पना शक्ति विस्तृत थी और भाव प्रकाशन में भी वे पूर्ण सफल रहे हैं। वस्तु वर्णन की सजीवता के साथ साथ उनकी प्रकृति पर्यवेक्षणी शक्ति भी सराहनीय है। 'शिशुपालवध' की ओजस्विता और उग्रता बहुत कम कृतियों में देख पड़ती है।

रत्नाकर कृत 'हरि विजय' संस्कृत साहित्य का सबसे अधिक वृहत्काय महाकाव्य है, जिसमें कि पचास सर्ग हैं। इसमें भगवान शंकर द्वारा अन्धकासुर-वध की कथा वर्णन की गई है। 'हरि विजय' पर माघ के शिशुपालवध का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है तथा कथावस्तु छोटी होते हुए भी वर्णन का आवश्यकता से अधिक विस्तार कर देने के कारण कवि को इस महाकाव्य में आनुपातिक संबन्ध का निर्वाह करने में सफलता न प्राप्त हो सकी। कहीं कहीं बाह्य प्रकृति का वर्णन अवश्य सुंदर बन पड़ा है। इसी प्रकार जैन महाकाव्यों में हरिश्चन्द्र नामक कवि का 'धर्म शर्माभ्युदय' नामक इक्कीस सर्ग का महाकाव्य भी अत्यधिक प्रसिद्ध है जिसमें पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का जीवन वृत्तान्त अलंकृत काव्य शैली में वर्णन किया गया है। कविराज नामक कवि का राघव पाण्डवीय भी एक उल्लेखनीय महाकाव्य है जिसमें प्रत्येक श्लोक में रामायण और महाभारत की कथा का साथ साथ वर्णन किया गया है। वस्तुतः इस प्रकार का शब्द कौतूहल संस्कृत को छोड़ विश्व की अन्य किसी भी काव्य कृति में नहीं पाया जाता। संस्कृत महाकाव्य की परम्परा में अंतिम महाकाव्य श्री हर्ष रचित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नषधीय चरित है जिसमें कि बाईस सर्गों में नल-दमयन्ती के प्रेम और विवाह की कथा वर्णन की गई है। 'नैषध' में महाकाव्य के सभी आवश्यक तत्त्वों का समावेश हुआ है तथा सजीवता, सुमधुरता और सरसता में यह अपने कई पूर्ववर्ती महाकाव्यों से भी श्रेष्ठ है—'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवि: ।' भाव और भाषा का जैसा सुन्दर समन्वय इसमें देख पड़ता है वैसा बहुत थोड़े से महाकाव्यों में देख पड़ता है। रूप वर्णन और चरित्र चित्रण दोनों में सजीवता है तथा जैसा कि श्री हर्ष ने अपने महाकाव्य के विषय में लिखा है—'शृङ्गारामृत शीगु:'—वास्तव में वह शृंगार रूपी पीयूष का सुधांशु है। प्राकृतिक दृश्यों का भी हृदयग्राही चित्रण किया गया हैं। किन्तु 'नैषध' में भावों की पुनरावृत्ति भी की गई है और दुरूह कल्पनाओं तथा विलक्षण अत्युक्तियों के योग से काव्य को क्लिष्ट और दुर्बोध भी बना दिया गया है। कहीं कहीं कुरुचि उत्पादक सूक्तियों का भी समावेश हुआ है और कवि ने अपनी आत्मश्लाघा को भी पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। परन्तु इन त्रुटियों के होते हुए भी नैषधीय चरित का संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों में महत्वपूर्ण स्थान है तथा उसके उपरान्त किसी भी उल्लेखनीय महाकाव्य का सृजन न हो सका और इस प्रकार श्री हर्ष संस्कृत के अंतिम महाकवि ही हैं।

हिन्दी साहित्य में नाटकीय गीतों की परम्परा

आधुनिक पाश्चात्य समीक्षकों ने नाटक के कथावस्तु, पात्र और कथोपकथन नामक तीन प्रधान तत्व ही माने हैं किन्तु अरस्तू ने तो अपने Poetics नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में, नाटकों में Fable

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कथा) Characters (पात्र) Diction (शैली) Thought (विचार) Decoration (अलंकार) और music (संगीत) नामक छः तत्वों का होना आवश्यक माना है। अरस्तू ने केवल कथा, पात्र और कथोपकथन को ही आवश्यक नहीं माना है बल्कि अलंकार तथा संगीत को भी प्रधानता दी है। संगीत से अरस्तू का अभिप्राय: यहाँ वस्तुत: गीतों के प्रयोग से ही है और इस विषय में तो उसका स्पष्ट मत है कि नाटकीय गीतों को नाटक का अभिन्न अंग ही होना चाहिए तथा आवश्यक स्थानों पर यदि गीतों का समावेश न हुआ तो नाटक की सर्वांगिता अपूर्ण ही रहेंगी। इस प्रकार अरस्तू गीत को भी नाटक का एक प्रधान तत्व मानता है। प्राचीन ग्रीक समीक्षकों की भाँति संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने भी नाटक में गीतों का प्रयोग आवश्यक माना है। संस्कृत साहित्य में भरत के नाट्यशास्त्र को ही नाट्य साहित्य सम्बन्धी प्रथम उपलब्ध ग्रंथ माना जाता है। नाट्यशास्त्र में रंगमंच, पात्र, वस्त्राभरण, संगीत, नृत्य, आंगिक वाचिक और आहार्य अभिनय आदि नाटक के प्रधान तत्व माने गए हैं। भरत के परवर्ती आचार्य धनंजय ने भी 'दशरूपक' नामक ग्रंथ में इन्हीं तत्वों को नाटकों के प्रधान तत्व माने हैं। धनंजय के उपरान्त विद्यानाथ की 'प्रताप रुद्रीय' और विद्याधर की 'एकावली' में भी भरत के नाट्य रचना के नियमों का प्राय: समर्थन ही किया गया है।

यह तो स्पष्ट ही है कि विश्व के अधिकांश उत्कृष्ट नाटक चाहे वे सुखान्त हों या दुखान्त प्रारम्भ में शताब्दियों तक पद्य में ही लिखे जाते थे। चाहे इसका उद्देश्य मानव जीवन की सूक्ष्म अन्त: प्रवृत्तियों का चित्रण करना रहा हो या फिर नाटकीय कथा वस्तु में कल्पना और सुमधुर चित्रमयी शब्दावली द्वारा रुचिरता संपादित करने का प्रयत्न किया गया हो परन्तु इनमें कोई सन्देह नहीं कि प्रारंभिक काल से ही कवित्व नाटक का एक प्रधान अंग माना जाता रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंगभाषा के आधुनिक प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय का भी यही मत है कि कवित्व नाटक का एक अंग है। (दे० कालीदास और भवभूति पृष्ठ १०५) यद्यपि आधुनिक हिंदी नाटक पाश्चात्य शैलियों से ही विशेष रूप में प्रभावित हुए हैं किन्तु वास्तव में इस देश में स्वतंत्र रूप में ही प्राचीन काल में रूपक रचना के पथ को प्रशस्त किया जा चुका है। ईसा की कई शताब्दी पूर्व ही 'नाट्यशास्त्र' में नाटकीय तत्वों तथा उसके भेदोपभेदों पर प्रकाश डाला जा चुका है। 'नाट्यशास्त्र' में प्रारम्भ में ही लिखा है—"एक बार वैवस्वत मनु के दूसरे युग में लोग बहुत दुखी हुए। इस पर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने ब्रह्माजी के समीप जाकर प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए जिसके द्वारा सबका चित्त प्रसन्न हो। इस पर ब्रह्माजी ने चारों वेदों को बुलाया और उनकी सहायता से पंचमवेद 'नाट्यशास्त्र' की रचना की। इस नूतन वेद के लिए ऋगवेद से संवाद, समावेद से गान, यजुर्वेद से नाट्य और अथर्ववेद से रस लिया गया। यथा—

जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात्सामभ्यों: गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥"

(नाट्य शास्त्र अ० १; श्लो० १७)

इस प्रकार संस्कृत नाट्य साहित्य में प्रारम्भ से ही कवित्व को प्रधानता दी जाती रही है तथा कालिदास आदि नाटककारों ने गीतों का प्रयोग किया भी है। यद्यपि ए० बेरीडेल कीथ ने Sankrit Drama नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में प्राचीन संस्कृत नाटकों की साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए गीतों के प्रयोग पर आक्षेप भी किया है परन्तु जैसा कि श्री नंददुलारे बाजपेयी ने लिखा है— "प्राचीन नाटक प्राय: भावपूर्ण और काव्यात्मक होते थे। उनमें प्रगीत मुक्तक बड़ी स्वाभाविकता के साथ और प्रभाव वृद्धि के उद्देश्य से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुड़े रहते थे। नाटक की कथा वस्तु का उनसे कोई विरोध नहीं था।"
(दे० आधुनिक साहित्य पृष्ठ १३१)

हिंदी नाट्य साहित्य पर विचार करते समय जो बात सबसे पहले हमारे ध्यान में आती है वह है आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास के पूर्व हिंदी नाटकों का अभाव। यद्यपि हमारा संस्कृत नाट्य साहित्य अत्याधिक समृद्ध था परन्तु हिंदी साहित्य में तो भारतेन्दु के पूर्व बहुत थोड़ी संख्या में ही नाटकों का सृजन हो सका था और उनमें भी नाटकत्व के प्रधान लक्षणों का अभाव ही देख पड़ता है यद्यपि भारतेन्दु ने 'जानकी मंगल' को हिंदी का प्रथम रंगमंचीय नाटक माना है परन्तु इस नाटक की प्रति अभी तक उपलब्ध न हो सकी है अत: सैयद आगा हसन 'अमानत' लिखित 'इन्दरसभा' जिसका कि रचनाकाल सन् १८५३ है को ही सबसे प्राचीन हिंदी नाटक माना जाना चाहिए। 'इन्दरसभा' वस्तुत: उर्दू का ही गीतिनाट्य है किन्तु उसकी भाषा को क्लिष्ट उर्दू न कहकर हिंदी उर्दू मिश्रित भाषा ही कहना उचित होगा। श्री विनयमोहन शर्मा ने गीतिनाट्य में गीतितत्त्व को ही उसका प्राण माना है और गीतिनाट्यों में गीतात्मकता को-आवश्यक समझा है (दे० दृष्टिकोण पृ० ११४) इस प्रकार संस्कृत नाटकों की भाँति हिंदी नाटकों में भी प्रारम्भ से ही गीतों का प्रयोग किया जाता रहा है। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि इन्दरसभा के पूर्व ही पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में रामलीला तथा रासलीला में हमें नाटकों का प्राचीनतम रूप दृष्टिगोचर होता है। विलियम रिजवे की पुस्तक The Drama and the Dramatic dances of the NonEuropean Races से यह भी ज्ञात होता है कि रामलीला और रासलीलाके अतिरिक्त कुछ अन्य कथाएँ भी नाटक रूप में दिखाई जाती थीं जिनके कथानक केवल पौराणिक ही नहीं होते थे बल्कि कुछ किम्वदंतियों के तथा कुछ मध्यकालीन ऐतिहासिक महापुरुषों और कुछ कल्पित वीरों की कथाओं पर आधारित रहा करते थे। जैसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि डा० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है—"इन नाटकों में जनता को आकर्षित करने के लिए नृत्य और संगीत का प्रवेश हुआ और उनके बाह्यरूप को सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया।" (दे० आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास पृष्ठ १६६)

रामलीलाओं में रंगमंच तथा नाटकीय उपकरणों का अभाव था तथा संवादों अथवा वार्तालापों में पद्य का ही विशेष रूप से प्रयोग किया जाता था। तत्कालीन कुछ नाट्य कृतियों पर रामलीला का भी प्रभाव पड़ा है और गोपालप्रसाद के 'जिह्वादंत नाटक' तथा 'रंभाशुक संवाद' नामक एक अन्य नाटक में भी छंदोबद्ध वार्तालाप दृष्टि गोचर होता है। रामलीला के ठीक विपरीत रासलीला में रंगमंच का विकास भी संभव हो सका और उसके कथोपकथनों में असंगति तथा कार्यों में अस्वाभाविकता होते हुए भी गीतों में सुमधुरता के साथ साथ आध्यात्मिक सौंदर्य का चित्रण किया जाने लगा जिससे कि जनसमुदाय में उसके प्रति रुचि जाग्रत होने लगी। रासलीलाओं पर अष्ट छाप के कवियों का व्यापक प्रभाव पड़ा था और सूरदासजी के पद उनमें विशेष रूप से प्रयुक्त किए जाते थे जिससे कि उनमें संगीत की सुरम्यता और रस की सुमधुरता का पयोधि उमड़ उठता था। रासलीला और रामलीला के अतिरिक्त नाटकीय प्रदर्शन का एक अन्य तृतीय प्रारंभिक रूप भी था जिसे कि 'नक्ल' कहते थे। 'नक्ल' का ही एक परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप 'नौटंकी' भी कहा जाता है और 'नक्ल' को (साँग) का पर्यायवाची भी माना जाता है तथा डा० सोमनाथ गुप्त के शब्दों में—"यह भी संभव है कि 'साँग' और उसका पर्यायवाची 'सांगीत' 'संगीत' शब्द से निकले हों। 'साँग' या 'सांगीत' में संगत की ही प्रधानता होती है। अतएव 'साँग' को 'संगीत' का फूहड़ रूप मान लेने में विशेष बाधा नहीं होनी चाहिए।"

(दे० हिंदी नाटक साहित्य का इतिहास पृष्ठ १६) इस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामलीला, रासलीला, और 'नक्ल में नाट्य कला के अंकुर देख पड़ते हैं तथा इन तीनों में गीतात्मकता को विशेष रूप से प्रधानता प्राप्त हुई है। 'इन्दरसभा' के जिसे कि हिंदी का प्रथम रंगमंचीय नाटक मानते हैं दो तिहाई या इससे भी अधिक भाग में गाते ही हैं तथा केवल एक तिहाई भाग में ही वार्तालाप है जो कि दोहों और गजलों में हैं। 'इन्दरसभा' के गीतों में ठुमरी, वसन्त, होली और गजल सभी का मिश्रण देख पड़ता हैं तथा साहित्यिक दृष्टि से उनका कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि श्रृंगारिकता, विलासिता और कमोद्दीपकता के कारण वे निम्नस्तरीय जनता का मनोरंजन कराने की: क्षमता रखते हैं। यद्यपि 'इन्दरसभा' के सदृश किसी दूसरे नाटक के लिखे जाने के पूर्व ही अवध की नवाबी समाप्त हो गई तो भी कई वर्षों तक सर्व साधारण जनसमुदाय के हृदय में इसका स्थान सुरक्षित बना रहा और कदाचित इसीलिए आगे चलकर पारसी व्यवसायिक कंपनियों ने भी इस नाटक का प्रदर्शन किया तथा इसी के अनुकरण पर कुछ अन्य नाटकों की रचना भी की गई जिनमें कि केवल अनुकरण मात्र ही देख पड़ता है चूँकि (पारसी थियेटस) व्यवसायी कंपनियाँ ही थीं अतः उनका उद्देश्य जनता की रुचि परिमार्जित करना न था बल्कि उन्होंने अपने नाटकों में नृत्य और संगीत के लिए नाट्य कला का ह्रास ही किया है। पारसी कम्पनियों ने अपना रंगमंच शेक्सपीरियन रंगमंच पर आधारित कर उसे भारतीय वातावरण के उपयुक्त बनाने का प्रयत्न किया। इन कम्पनियों के नाटकों में यद्यपि गीतों की प्रचुरता रहती थी किन्तु उन्हें साहित्यिक नहीं माना जा सकता। इन नाटकीय गीतों में केवल तुक बंदियाँ ही दृष्टिगोचर होती है जिन्हें बलपूर्वक किसी न किसी तर्ज पर बैठालने का प्रयत्न किया है जिसका परिणाम यह हुआ कि नाट्य-जगत में 'थियेट्रिकल तर्ज' नामसे एक नई तर्ज का प्रचलन हुआ। एक उदाहरण देखिए।

मैं आलम में बाँका जवाँ
जिधर भरके देखी नजर, शेरेबबर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काँपे जिगर, थरर थरर
मैं आलम में बाँका जवाँ।

प्रारम्भ में इन नाटकीय गीतों की भाषा विशेष रूप से उर्दू ही होती थी किन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में नारायण प्रसाद 'बेताबू' ने ही पहले पहल गीतों की भाषा सरल हिंदी या हिंदुस्तानी रखी है। पारसी कंपनियों ने अपने नाटकों को जनता में अधिक से अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए ही गीतों की भाषा के रूप में अनेक प्रयोग किए क्योंकि क्लिष्ट उर्दू के कारण उन्हें व्यवसाय क्षेत्र में आशातीत सफलता न प्राप्त हो रही थी इसीलिए 'बेताब' ने गीतों की भाषा सरल हिंदी रखी है। उनके 'महाभारत' नामक नाटक का एक गीत देखिए—

आली छाई आज जगत खुशहाली
उमड़ उमड़ आई घटा पीतवर्ण लिये लाली।
उत्सव की छवि माहिं हैं सबके नैन लगे,
पक्षिन के सब जोड़े शुभ आशिष देन लगे।
निज निज बोली में मनहर हैं,
सुरङ्ग सुमन विघ्न हरत हरियाली ।। आली० ।।

परन्तु इन नाटकीय गीतों की भाषा सरल हिन्दी होते हुए भी इनमें रीतिकाल और उर्दू काव्य की सी वासनामूलक, कुरुचि उत्पादक तथा छेड़ छाड़ की प्रवृत्तियों की ही प्रधानता देख पड़ती है। उदाहरणार्थ 'विश्व' रचित 'भीष्म प्रतिज्ञा' नामक नाटक में लड़कियाँ गाती हैं—

गोरी धीरे चलो कमर लचक न जाय
लचक न जाय गोरी मुरक न जाय
गोरी धीरे चलो कमर लचक न जाय

इसी प्रकार 'बुद्धदेव' नामक एक नाटक में कामकला गाती है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज मिले तोही सखी कुंजन पिहरवा
काहे बोलो झूठ बैन, कहे देत तोरे नैन
देखो न बिथुर रहे मुख पर बरवा.........
अंगिया के बंद टूटे, कर से कंगन छूटे
एक एक के चार चार उपटे हैं हरवा.........आज मिले

इस प्रकार पारसी रंग मंच पर प्रदर्शित होने वाले नाटकों की नाट्यकला अराजक और अव्यवस्थित अवस्था में ही रही क्योंकि कलागत सौंदर्य के सृजन के हेतु जिस संयम और नियमपालन की आवश्यकता पड़ती है उनका इनके नाटककारों तथा इन कम्पनियों के मालिकों में सर्वथा अभाव था। इसीलिए इन नाटकीय गीतों में शुद्ध साहित्यिक सौंदर्य दृष्टिगोचर नहीं होता है। परन्तु इन रंगमंचीय नाटकों के विरुद्ध आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गया था तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इनका प्रबल विरोध किया था। सन १८८३ में ही भारतेन्दु जी ने इन व्यवसायी कम्पनियों के नाटकों की आलोचना करते हुए लिखा था—"काशी में पारसी नाटकवालों ने नाच घर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यंत खेमटे वालियों की तरह कमर में हाथ रखकर मटक मटक कर नाच और 'पतरी कमर बलखाय' यह गाने लगा तो डा० थीबो, बाबू प्रमदादास मित्र, प्रभृति विद्वान यह कह कर उठ आए कि अब नहीं देखा जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।" (दे० नाटक—पृष्ठ ६४)

जैसा कि एक प्रसिद्ध समालोचक ने लिखा है "नाटकों के कला-रूप से भी कहीं अधिक विकास और परिवर्तन आधुनिक नाटकीय विधानों में मिलता है" वह उचित ही है क्योंकि आधुनिक कालीन नाट्य कृतियों पर प्रधानतः संस्कृत और पाश्चात्य दोनों नाट्य-शास्त्रों का विशेष प्रभाव पड़ा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके साथियों ने संस्कृत नाट्यनियमों को लक्ष्य बनाकर अपने नाटकों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सृष्टि की थी जबकि जयशङ्कर 'प्रसाद' तथा उनके कुछ समकालीननाटककारों ने आदर्शवादी नाटकों की परम्परा (Romantic dramas) प्रस्तुत की। इन दोनों प्रकार की नाट्य कृतियों के नाटकीय विधानों में परिवर्तन किए गए हैं। आधुनिक काल में बुद्धिवाद के मोहवश नाटकों को कवित्व के प्रभाव से स्वतंत्र करने का प्रयत्न किया जाने लगा तथा उनका वातावरण कविता से बिलकुल ही विलग कर यथार्थतायुक्त बना दिया गया। नाटक का प्रधान अंग कथोपकथन ही माना जाता था और वास्तव में कथावस्तु के विकास तथा चरित्र चित्रण के लिए नाटककार के पास केवल वही एक साधन रहता भी है किन्तु संस्कृत नाटकों में तो वर्तालाप के मध्य में पदों का प्रयोग कर कवित्वमय वातावरण प्रस्तुत करने की परंम्परा सी थी परन्तु अब विज्ञान और बौद्धिकता के फलस्वरूप यह परम्परा वर्तमान नाटककारों को रुचिकर न प्रतीत हुई। निश्चत रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे प्राचीन नाटककारों ने संभाषण में छंदबद्ध कविता का क्यों प्रयोग किया था परन्तु जहाँ तक है उनका उद्देश्य नाटकों में कवित्व का समावेश करना था और यह तो स्वाभाविक ही है कि नाटकों में मानव जीवन के सूक्ष्म अंतर्जीवन के निरूपण के हेतु कवित्वपूर्ण वातावरण उपस्थित करना भी आवश्यक है। चूँकि आधुनिक काल में गद्य का विकास हो जाने से पद्य की अपेक्षा गद्य में ही अपने विचारों को प्रस्तुत करने की सुगमता रहती है अतएव कथोपकथनों में कविता का प्रयोग वर्जित किया जाने लगा क्योंकि संभाषणों के मध्य हिंदी कवियों ने जिन पद्यों का प्रयोग किया वे केवल भाषाशैली के अलंकार मात्र ही थे तथा उनमें वास्तविक कवित्व का लेशमात्र भी न था। अतएव बँगला के प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने नाटकों में कवित्वपूर्ण वातावरण उपस्थित करने के लिए गीतों का प्रयोग प्रारम्भ किया जिसका कि अनुसरण हिंदी नाटकों में भी किया जाने लगा। इस प्रकार के गीत सुविधानुसार रंगमंच पर अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेपथ्य से गाये जाते थे। पारसी कंपनियों के नाटकों की भाँति इनमें शुद्ध साहित्यिक सौंदर्य का अभाव प्राय: नहीं रहता था।

भारतेन्दु जी प्रथम हिंदी नाटककार थे जिन्होंने हिंदी साहित्य में आधुनिक नाटकीय गीतों की परंम्परा को विकसित किया। उनके नाटकीयगीतों में अंतर्जगत की सूक्ष्म मनोभावनाओं को मूर्तिमान रूप प्रदान करने की क्षमता देख पड़ती है। मौलिक नाटकों के साथ साथ अनुवादित नाटकों में भी भारतेन्दु ने आवश्यकतानुसार गीतों का प्रयोग किया है जिनसे कि उनकी नीरसता दूर हो सकी है। 'नीलदेवी' नामक नाटक में जहाँ वे इस प्रकार की वात्सल्यपूर्ण भावनाओं से परिपूरित लोरी लिखते हैं—

सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे,
सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
भई आधीरात, बन सनसनात,
पथ पंछी कोऊ आवत न जात।
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हलन॥

वहाँ 'भारत दुर्दशा' में आरम्भ के ही गीत में भारतवर्ष की तत्कालीन दशा का चित्रण करते हुए उन्होंने दु:ख भी व्यक्त किया है। देखिए—

रोअहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
× × × ×
जहँ भये शाक्य हरिश्चन्द्ररु नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती।
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब जहँ देखहु तहँ दु:खहि दु:ख दिखाई
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।

भारतेन्दु ने ही प्रथम वार नाटकीय गीतों में राष्ट्रीयता की भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। भारतेन्दु कालीन अन्य नाटककारों ने भी पद, ठुमरी, दादरा, इत्यादि के द्वारा नाटकीय गीतों की परंपरा को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया किन्तु उच्च कोटि का गीतिकाव्य उनकी कृतियों में नहीं देख पड़ता है। भारतेन्दु ने सुमधुर वास्तविकतापूर्ण गीतों के सृजन द्वारा अपने समकालीन नाटक कारों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया था किन्तु रीतिकाल की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप और ब्रज-भाषा के प्रति मोह रहने के कारण इस ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया गया और मुक्तक पद्यों के द्वारा रीतिकालीन वातावरण उपस्थित करने का प्रयत्न किया जाने लगा इसीलिए हिन्दी नाट्यसाहित्य के द्वितीय उत्थान काल में नाटकीय गीतों की प्राचीन प्रणाली का पूर्णरूप से बहिष्कार कर दिया गया और पद, ठुमरी, दादरा, लावनी इत्यादि का प्रयोग न किया जाने लगा।

आधुनिक युग के सर्वव्यापी कलाकार जयशंकर 'प्रसाद' ने जिस प्रकार अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा हिंदी साहित्य के प्रत्येक अंग को समुन्नत करने का प्रयास किया है उसी प्रकार नाटकीय गीतों में भी कलात्मक परिवर्तन किए हैं। भारतेन्दु जी ने स्वयं इतना प्रबल प्रयत्न करने पर भी नाटकीय विधानों में परिवर्तन करने में जितनी अधिक सफलता प्राप्त न की उससे अधिक सफलता प्रसाद जी को इस क्षेत्र में प्राप्त हुई। प्रसाद जी को हिंदी काव्य में युग की नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात करने का श्रेय दिया जाता है अत: उनके नाटकीय गीतों में भी साहित्यिक प्रतिभा की मौलिक छटा देख पड़ती है। प्रसाद के नाटकीय गीत केवल कल्पना प्रसूत ही नहीं हैं बल्कि उनमें मानवीय भावनाओं की अनुभूतियों की भी प्रधानता है। उनके पूर्व नाटकीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीतों में न तो भावों की सुकुमारता ही देख पड़ती थी और न भाषा की सुघरता ही। उनके नाटकीय गीतों में साहित्यिकरूप लावण्य के साथ साथ संगीतात्मकता का भी मणिकांचनमय योग है। रागरागनियों की आदर्श योजना ही उन्होंने रखी है। राज्यश्री और विशाख में तो यद्यपि गीतों की संख्या न्यून ही है परन्तु उनकी नाट्यकृतियों में सभी नारीपात्र गान प्रिय ही जान पड़ते हैं। 'चंद्रगुप्त' में कार्नेलिया, कल्याणी, मालविका, और सुवासिनी आदि सभी अधिकांश नारी पात्रों ने गीत गाए हैं जिससे कभी कभी स्वाभाविक अरुचि भी होने लगती है। 'स्कंदगुप्त' की देवसेना और अजातशत्रु की मागंधी ने तो बड़े बड़े दीर्घाकार के गाने सात सात बार गाए हैं। अपनी काव्य प्रियता के फलस्वरूप ही प्रसाद ने दीर्घाकार के नाटकीय गीतों का सृजन किया है। यद्यपि कथावस्तु की उपादेयता की दृष्टि से चाहे ये प्रतिकूल भी जान पड़े तथा रंगमंच पर अनुपयुक्त और अव्यवहारिक भी प्रतीत हों किन्तु उनकी भावात्मकता, काव्यात्मकता और संगीतात्मकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। यहाँ प्रसाद के नाटकीय गीतों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना असंगत न होगा।

'स्कंदगुप्त विक्रमादित्य' में देवसेना के गीतों में नारी हृदय का सचित्र इतिहास अंकित किया गया है। भावाभिव्यंजन की सुकुमारता और शब्दावली की सुघरता के साथ साथ मानस की गम्भीरता भी इन गीतों में दर्शनीय है। निम्नांकित गीत में हृदय की तीव्र वेदना का चित्रण किया गया है—

आह वेदना मिली विदाई,
मैंने भ्रमवश जीवन संचित
मधुकरियों की भीख लुटाई।

किन्तु जब प्रेमपूर्ण इस जीवन के संघर्ष में देवसेना को मिलन की आशा नहीं रहती तब निराशा के कारण उसके मानस की विरह व्यथा और भी अधिक घनीभूत हो जाती है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगी सतृष्ण दीठ थी सबकी
रही बचाये फिरती कबकी।
मेरी आशा आह! बावली
तूने खोदी सकल कमाई॥
चढ़कर मेरे जीवन रथ पर
प्रलय चल रहा अपने पथ पर।
मैंने निज दुर्बल पद-बल पर,
उससे हारी होड़ लगाई॥

'चंद्रगुप्त' के निम्नांकित गीत में सौंदर्य और प्रेम की सर्वतोत्कृष्ट अभिव्यंजना है तथा प्रगीतत्त्व अपने चरमोत्कर्ष रूप में देख पड़ता है—

तुम कनक किरण के अंतराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों ?
नतमस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन रसकन ढरते
हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?

अजातशत्रु के एक गीत की निम्नांकित पंक्तियों में पद्मावती की हृदगत भावनाओं को मूर्तिमान रूप दिया गया है और उसकी असहाय परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण किया गया है—

निर्दय उङ्गली! अरी ठहर जा,
पल भर अनुकम्पा से भर जा,
यह मूर्छित मूर्छना आह सी,
निकलेगी निस्सार।

इस प्रकार प्रसाद के नाटकीय गीतों की यह एक प्रमुख विशेषता है कि उनमें परिस्थिति विशेष के चित्रण के साथ साथ कवित्व का भी समावेश है। भारतेन्दु की भाँति राष्ट्रीयता की भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रसाद ने भी अपने नाटकीय गीतों में की है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चूँकि उनका गीतिकाव्य संगीत, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से युगान्तरकारी माना जाता है क्योंकि उन्होंने उसे परम्परागत पद शैली एवं ब्रजभाषा से उन्मुक्त किया है और संगीत की क्षीण होती हुई रुचि को भी ओज प्रदान किया है अतः उन के नाटकीय गीतों को भी युगकारी मानना होगा। इन गीतों में कल्पना निसर्ग के अन्तः करण में सम्मिलित होकर अनुभूति की गहरी छाया पड़ते ही मानस से स्वाभाविक स्रोत के रूप में निःसृत हो उठती है। वास्तव में उनके नाटकीय गीत सराहनीय हैं तथा कवित्व-पूर्ण वातावरण की सृष्टि में सफल भी रहे हैं। आगे चलकर विशेष-रूप से प्रसाद का ही अनुसरण अन्य नाटक कारों ने किया है!

प्रसाद की भाँति 'सुदर्शन' ने भी 'अंजना' नामक नाटक में गीतों का प्रयोग किया है तथा श्री संतराम बी. ए. ने तो उसकी भूमिका में लिखा भी—"इस नाटक में उन्होंने स्थान स्थान पर जो गीत दिए हैं वे बड़े ही मधुर, सरस और हृदयग्राही हैं।" परन्तु अंजना के नाटकीय गीतों में परम्परागत पदशैली का ही अनुसरण किया गया है और भाषा भी ब्रजभाषा ही है अतः वे अन्तःकरण के उच्छ्वास अवश्य हो सकते हैं। किंतु युग की प्रतिध्वनि के साकार चित्र नहीं माने जा सकते। प्रसाद की सी राग रागनियों की आदर्शमर्यादा भी उनमें नहीं है। गोविन्दवल्लभ पंत की वरमाला और राजमुकुट, हरिकृष्ण प्रेमी के रक्षाबन्धन और शिवासाधना तथा जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द की 'प्रताप प्रतिज्ञा' के गीतों में अवश्य कवित्व पूर्ण वातावरण प्रस्तुत करने की क्षमता है। 'वर-माला' में सरल और छोटे छोटे संवादों के साथ साथ स्थान स्थान पर सुन्दर गाने प्रस्तुत किए गए हैं जोकि प्रसाद के अधिकांश नाटकीय गीतों की भाँति न तो दीर्घाकार ही हैं और न रहस्यपूर्ण ही। सरल सुमधुर शब्दयोजना द्वारा ही अंतर्जगत की विभिन्न मनोवृत्तियों का चित्रण किया गया है। 'प्रेमी' जी के ऐतिहासिक नाटकों के गीत वस्तु की उपादेयता के अनुकूल ही हैं और 'रक्षाबन्धन' के गीतों में तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कला का चरमोत्कर्ष रूप देख पड़ता है। कर्मावती तथा अन्य राजपूत रमणियाँ जब जौहर के लिए प्रस्थान करती हैं तब वे जिस गीत को गाती हैं उसमें अत्यधिक हृदयस्पर्शिता है। देखिये—

सजनि मरण को वरण करो री !
पुलकित अंबर और अवनि है,
आती आमंत्रण की ध्वनि है
यह सुहाग की रात, सजनि है
चिता सेज पर शयन करो री
सजनि मरण को वरण करो री।

नाटकों में यदि रहस्यपूर्ण गीतों का प्रयोग किया जाय जोकि इतने गंभीर, भावयुक्त और क्लिष्ट हों कि साधारण दर्शक उन्हें न समझ सकें तो फिर रंगमंच पर उनका उपयोग होना सम्भव नहीं रहता। नाटकीय गीतों में छायावादी कविताओं की भाँति अंतर्मुखी प्रवृत्तियों का निरूपण करना तथा चित्रमयी प्रतीकात्मक भाषा का उपयोग करना भी उचित नहीं है। प्रसाद के कुछ गीतों में यह दोष विशेष रूप से है इसलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें 'वर्तमान काव्य की एक शाखा के प्रगीत मुक्तक मात्र' माना है। सुमित्रानन्दन पंत की 'ज्योत्स्ना के नाटकीय गीतों में छायावादी प्रवृत्तियों की ही प्रधानता है जिससे कि वे रंगमंच के लिए उपयुक्त नहीं जान पड़ते इस प्रकार के गीतों की अपेक्षा श्री उदयशंकर भट्ट के विश्वामित्र, मत्स्यगंधा और राधा नामक भावनाट्यों की गीतात्मकता रंगमंच पर अभिनय के समय अनुपयुक्त नहीं जान पड़ती।

इस प्रकार प्रसाद जी के उपरान्त नाटकीय गीतों की परम्परा उनके अन्य समकालीन तथा परवर्ती नाटककारों द्वारा पल्लवित की जा रही थी कि हिंदी नाट्यसाहित्य के नाटकीय विधानों में एक नूतन परिवर्तन हुआ। शेक्सपियर के उपरान्त जब यूरोप में नाटकीय आदर्शों : घात प्रतिघात होने लगे तब उसका प्रभाव हिंदी नाट्यसाहित्य पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिमचरण में यूरोप में नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन ने नाटकीय आदर्शों में कई परिवर्तन किए और नाटकों को बौद्धिक स्वातंत्र्य प्रदान किया। इब्सन ने नाटकीय विधानों में यथार्थता को ही प्रधानता दी है और भाषा शैली में कवित्व की अपेक्षा स्वाभाविकता तथा सरलता ही रखी है साथ ही उसके नाटकों में युग की मनोंभावनाओं का ही विकास विशेष रूप से देख पड़ता है। परन्तु जैसा कि एक पाश्चात्य समालोचक ने लिखा है—"नाटकों में उसने गद्यात्मक शैली को प्रधानता देकर काव्य की सरसता के स्रोत को शुष्क कर दिया है। उसके अनुयायी यह अवश्य कह सकते हैं कि नाटक को बौद्धिक स्वतंत्रता अवश्य प्राप्त हो गई है परन्तु उन्हें यह न विस्मरण कर देना चाहिए कि नाटक को उसके हेतु एक बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ा है और वह है काव्यगत सुषमा की हत्या।" इस प्रकार इब्सनवादी नाटकों में गीतों का प्रयोग नहीं किया गया। इब्सन का प्रभाव वर्नाडशा, गाल्सवर्दी, रास्टेन्ट, मेटरलिंक हेम्पडम, यीट्स और लेडी ग्रेगरी आदि पाश्चात्य नाटककारों पर तो पड़ा ही तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र, रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास और भुवनेश्वर प्रसाद आदि हिन्दी के आधुनिक नाटककार भी उससे प्रभावित हुए हैं। चूँकि इब्सन ने अपने 'नाटकों में कवित्वमय वातावरण को प्रस्तुत नहीं किया है अत: इन नाटककारों ने भी अपने नाटकों में नाटकीय गीतों का प्रयोग नहीं किया है। सेठ गोविन्ददास के 'शशिगुहा' 'हर्ष' आदि कुछ ऐतिहासिक नाटकों में अवश्य गीतों का प्रयोग किया गया है अन्यथा अन्य सभी अधिकांश नाट्यकृतियों में तो उनका सर्वथा अभाव ही है। इस प्रकार के नाटकों को 'जीवन की अनुकृति, आचरण का दर्पण और सत्य का प्रतिबिम्ब' अवश्य बना दिया गया है किन्तु उनमें आंतरिक भावनाओं के सूक्ष्म निरूपण का कलापूर्ण चित्रण नहीं है। प्राय: नाटकों में कभी कभी ऐसे अवसर भी आते हैं जबकि कविता का प्रयोग केवल अलंकारों के रूप में न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर सौंदर्य के रूप में करना आवश्यक होता है। अभिनय के समय जब बाह्यस्थूल क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है तब अंत: प्रवृत्तियों का भी व्यक्तीकरण होता है और उस समय कवित्व की उपयोगिता निर्विवाद रूप से आवश्यक प्रतीत होती है। बहुत से गम्भीर अवसर भी आते हैं जब सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना के हेतु पद्य का अवलम्ब लेना ही पड़ता है किन्तु आधुनिक हिंदी नाटककार गंभीर अवसरों में भी कविता का प्रयोग असंगत और अस्वाभाविक मानते हैं क्योंकि उनका मत है कि इससे कला की यथार्थता का ह्रास हो जाता है। द्विजेन्द्रलाल राय ने बंगला नाटकों में इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण क्षणों में गद्यगीतों का प्रयोग किया है और उन्हीं का अनुसरण करते हुए हिंदी नाटकों में भी गद्यगीतों का प्रयोग किया जाने लगा। आधुनिक काल में हिंदी गद्य इतना अधिक विकसित हो गया है कि गंभीर भाव कवित्वपूर्ण शब्दावली तथा संगीतमय गद्य में प्रकट किये जा सकते हैं। प्रसाद, सुदर्शन, सेठ गोविन्ददास तथा उग्र के नाटकों में इसी प्रकार के गद्य-गीत दृष्टिगोचर होते हैं और संवादों में गद्य का प्रयोग होने पर भी कवित्वपूर्ण वातावरण की सृष्टि सम्भव हो सकी है। किन्तु इन गद्य-गीतों से दर्शकों के मन में नीरसता जाती और दुरूह शब्दावली के कारण कथोपकथन भी समझ में नहीं आ पाते हैं। उसकी अपेक्षा परिस्थिति विशेष के अनुकूल प्रयोग किए गए गीतों से न केवल रसानुभूति ही होती है बल्कि कथावस्तु का विकास और पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन भी सुगमता से हो सकता है। नाटकों में किसी भी रस की व्यंजना क्यों न की जाए परन्तु गीतों की उपयोगिता तो समस्त स्थलों में निर्विवाद रूप से सिद्ध होती है। प्रसन्नता कि बात है कि कि इधर कुछ एकांकी नाटकों में गीतों का प्रयोग किया जाने लगा है यद्यपि इनमें प्रसादकालीन नाटकीय गीतों की सी काव्य सुषमा नहीं देख पड़ती पर हाँ वे वस्तु विन्यास के अनुकूल अवश्य जान पड़ते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि डा० सूर्य्यकान्त शास्त्री ने उचित ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखा है—"वस्तुत: किसी भी साहित्य का सुवर्णयुग वही माना गया है; जबकि उस साहित्य के सबसे उत्कृष्ट नाटककार, साथ ही उत्कृष्ट-तम कवि भी हुए हैं।" (दे० साहित्यमीमांसा पृष्ठ ३२६)

महर्षि व्यास की काव्य सुषमा

महर्षि व्यास ने स्वयं ही 'अग्नि-पुराण' में काव्य के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि—

संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणद्दोषवर्जितम्॥

अर्थात् अभीष्ट अर्थयुक्त पदावली, जिसमें गुण ही गुण हो दोष न हों और अलंकार स्पष्ट प्रतीत होते हों कविता कहलाती है। उपर्युक्त कथन का अभिप्राय: यही है कि जिस प्रकार के सुन्दर शब्दों का चयन कवि करेगा; उसी प्रकार अर्थ भी कविता का उत्तम होगा या कविता भी उसी प्रकार श्रेष्ठतम हो सकेगी। 'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्' नामक उक्ति द्वारा भी यही सिद्ध होता है कि रमणीय अर्थ प्रतिपादित करने वाले शब्द ही काव्य हैं। परन्तु साथ ही आवश्कीय यह भी है कि कविता में रस का आविर्भाव भो हो सके। 'वाक्यं रसात्मंक काव्यम्' नामक साहित्यदर्पण को उक्ति तो यही सिद्ध करती है कि रसात्मक वाक्य ही काव्य है । साहित्यदर्पण' के रचयिता ने यह भी लिखा है कि—

"गुणा: शैर्यादिवत् अलंकारा: कटक कुण्डलादिवत् रीतयोऽवयव संस्थान विशेषवत, देहद्वारेणेव शब्दार्थद्वारेण तस्यैव काव्यस्यात्मभूतं रसत्युत्कर्षयन्त: काव्यस्योत्कर्षकाइत्युच्यन्ते।" परन्तु इस युक्ति द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाँ शब्दों और अर्थों की प्रशंसा की गयी है, यहाँ अन्त में रसोत्कर्ष होना भी नितान्त अवश्यकीय माना गया है। 'श्री कण्ठ चरित' में भी इसी प्रकार महाकवि मंखक ने लिखा है—

तैस्तैरलंकृतिशतैरवपंसितोऽपि,
रूढ़ो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि
नूनं विना घनरस प्रसराभिषेकं
काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबंधः॥

आचार्य शुक्ल जी ने भी 'कविता क्या है' नामक अपने प्रसिद्ध निबन्ध में लिखा है "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है। उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी शब्द विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।" [चिन्तामणि (पहला भाग) पृष्ठ १४१] भरत मुनि के 'न रसाहते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' नामक उक्ति द्वारा तो प्रतीत होता है कि काव्य को रसहीन होना ही न चाहिये। परन्तु रस की व्यंजना तो कवि की शब्दयोजना पर ही निर्भर रहती है। यदि कवि की कविता में सुन्दर-सुन्दर शब्दों का अभाव हुआ तो फिर काव्य नीरस ही प्रतीत होगा। इसीलिये महाकवि मंखक ने लिखा है—

तान्यथ रत्नानि न सन्ति येषां सुवर्ण सन्धेन च येन पूर्णाः।
ते रीति मात्रेण दरिद्रकल्पा यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्॥

भामह के 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' नामक उक्ति द्वारा भी इसी कथन की पुष्टि होती है। किसी भी कवि की काव्यकला की समीक्षा करते समय हमें इन लक्षणों से पर्याप्त सहायता मिलती।

सभ्यता के साथ-साथ साहित्य की भी उन्नति होती है। इस प्रकार से वेद ही हमारे पुरातन साहित्य के रूप में हैं अर्थात् वेदों को ही काव्य का मूलस्रोत समझना चाहिये। वेदों में कवित्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है और यदि यह कहा जाये कि उनमें काव्य की बड़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुन्दर छटा दृष्टिगोचर होती है तो कुछ अत्युक्ति न होगी। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में—"वैदिक कविता सृष्टि की भाषा है। विराट् प्रकृति के अनेक तत्त्वों को अपना प्रतीक बनाकर नाना अभिप्रायों की कल्पना करती हुई। कविता की यह चिरन्तन वाणी सृष्टि के मूलभूत अर्थों को प्रकाशित करती है।"

ऋग्वेद का एक मन्त्र देखिये—

अभ्रातेव पुसं एति प्रतीची,
गर्वारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा,
उषा हस्तेव निरिंणीते, अप्सः।
(ऋग्वेद० १।१२४।७

वैदिक साहित्य के उपरान्त संस्कृत में उन दो महान विभूतियों का प्रादुर्भाव होता है, जो संस्कृत साहित्य के उच्चकोटि के महाकवियों में गिनी जाती हैं। वे दो विभूतियाँ हैं, वाल्मीकि और व्यास। वाल्मीकि तो आदि कवि ही माने जाते हैं और उनकी वाल्मीकि रामायण तो संस्कृत का प्रथम महाकाव्य है। परन्तु वाल्मीकि के साथ-साथ व्यास का भी संस्कृत साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान है। "वाल्मीकि रामायण' और 'महाभारत' ये दोनों संस्कृत साहित्य की उच्च कोटि की रचनाऐं हैं। महर्षि व्यास के उपरान्त जिस किसी ने काव्य सृजन किया इन दोनों रचनाओं से उसने अवश्य भाव ग्रहण किया। कविवर राजशेखर के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य मीमांसा' में स्पष्ट ही महर्षि व्यास के 'अग्निपुराण की' छाया दृष्टिगोचर होती है। अग्नि-पुराण' इस बात का द्योतक है कि महर्षि व्यास केवल कवि ही नहीं थे बल्कि काव्य का मर्म भी पूर्णत: समझते थे। उनका ज्ञान अगाध था। काव्य के समस्त अंगों, रूप, रीति, अलंकार, नृत्य, अभिनय और रूपक आदि सभी विषयों पर उन्होंने प्रकाश डाला है। कोई भी विषय उनकी लेखनी ने अछूता नहीं छोड़ा। साथ ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन सबके निरूपण में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। 'अष्टादश पुराणानां कर्ता सत्यवती सुत:' नामक उक्ति के अनुसार वे अठारहों पुराण और महाभारत के रचयिता भी माने जाते हैं। परन्तु यदि सिर्फ एक मात्र महाभारत को ही लिया जाये तो वही अकेला उन्हें संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवियों में सम्मिलित कर देता है। 'न्यस्यति वेदान् इति व्यास:' नामक उक्ति द्वारा यह भी विदित होता है वेद का विभाग करने वाले अथवा ज्ञान का विस्तार करने वालों को व्यास कहते हैं।* इस प्रकार से महर्षि व्यास की प्रतिभा सर्वतोमुखी जान पड़ती है। प्रस्तुत लेख में हम महर्षि व्यास के काव्य सौन्दर्य पर संक्षेप में ही प्रकाश डाल सकेंगे क्योंकि यदि उनकी कृतियों में एक ही विषय के उदाहरण एकत्र किये जावें तो एक बड़ी सी पुस्तक ही निर्मित हो जावे।

महर्षि व्यास की रचनाओं में नवों रस के उदारण पाए जाते हैं। महाभारत में करुण, वीर और शान्त रस की अभिव्यंजना में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई है। महाभारत के कुरुक्षेत्र के भीषण नरसंहार विषयक अवतरणों को पढ़ते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वीभत्स और

---

* अर्वाचीन काल में भी 'व्यास' शब्द का यही अर्थ माना जाता है। देखिये—

विपष्टमद्रुतं शांतं स्पष्टक्षरपदं तथा।
कलस्वर समायुक्तं रसांभावसमन्वितम्॥
बुध्यमान: सदर्थे वै ग्रन्थार्थञ्चापिन्नृप।
य एवं वाचयेद् ब्रह्मन् स विप्रो व्यास उच्यते॥

भविष्यपुरान में भी यही बात दृष्टिगोचर होती है।

बुध्यमान: सदा त्यर्थे ग्रन्थार्थे कृतत्त्तमेव चं।
य एवं कथयेत्सम्यक् स विप्रो व्यास उच्यते॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भयानक रसपूर्ण वर्णनों की इस स्थल पर बहुलता सी है। इसी प्रकार करुण रस पूर्ण चित्रों की भी अधिकता अन्य कई स्थलों पर देख पड़ती है। यहाँ हम करुण रस का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

विपत्तियों को झेलते, वन वन की धूल छानते हुये एक दिन नल और दमयन्ती एक खाली धर्मशाला में पहुँचे। जो राजसी सुख-शैय्या पर सर्वदा विश्राम करते थे, उन्हें ही आज धरती पर रात व्यतीत करना पड़ रहा है। अर्ध रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, कालचक्र तनिक और घूमा तथा विपत्तियों का एक दूसरा प्रबल झोंका आया। अब दम्पति के वियोग का समय आया। नल का विचार दमयन्ती को एकाकी ही छोड़ चले जाने का हुआ। उसने दमयन्ती के तन पर के परिधान के दो टुकड़े किये और आधा तो उसे पहने रहने दिया तथा आधा स्वयं पहन लिया। अर्धवस्त्रों में अपनी प्रियतमा को सुप्तावस्था में छोड़कर वह आगे बढ़ा, परन्तु उसका हृदय उसे बार बार धर्मशाला की ओर खींच लाता था। इस समय का वर्णन बड़ा ही करुणापूर्ण है और इसकी गणना महर्षि व्यास के काव्य-सौन्दर्य के अत्युत्तम उदाहरणों में की जाती है। देखिये—

तेनार्द्धं वास सश्छित्त्वा निवस्य च परन्तपः।
सुप्तामुत्सृज्य वैदर्भी प्रद्रवग्दचेतनाम् ॥
ततो निवृत्तहृदयः पुनरागम्य तां सभाम्।
दमयन्ती तदा दृष्ट्वा रुरोद निषधाधिपः॥
या न वायुर्नचादित्यः पुरा पश्यति मे प्रियाम्।
सेयमद्य सभामध्ये शेते भूमावनाथवत्॥
इयं वस्त्रावकर्तेन संवीता चारुहासिनी।
उन्मत्तेव वरारोहा कथं बुद्ध्वा भविष्यति॥
एवमुक्त्वा प्रिया भार्या रूपेणाप्रतिमां भुवि।
कलिनापहृतज्ञानो नलः प्रातिष्ठदुद्यतः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गत्वा गत्वा नलो राजा पुनरेति सभां मुहुः ।
आकृष्यमाणः कलिना सौहृदेनाव कृष्यते ॥
द्विधेव हृदयं तस्य दुःखितस्याभवत्तदा ।
दोलेव मुहुरायाति याति चैव सभां प्रति ॥

[महाभारत, वन पर्व, अ, ६२।१६२७]

दुखी नल ने उस खड्ग को उठा लिया और दमयन्ती ने तन पर का आधा वस्त्र काटकर स्वयं पहन लिया। निद्रोन्मीलित दमयन्ती को सुप्तावस्था में ही छोड़कर नल वहाँ से चले गये। थोड़ी देर बाद उनके हृदय में कुछ उत्सुकता सी हुई और वे फिर उसी धर्मशाला में लौट आये तथा दमयन्ती की दशा को देखकर विलाप करने लगे। वे रोदन करते हुए मन ही मन यह विचार करते थे कि मेरी यह पत्नी जिसे समीर तक स्पर्श करने का साहस नहीं कर पाता था, आज अनाथ के समान वसुधा के इन रजकणों पर पड़ी हुई है। खड्ग से काटे हुये अर्ध-परिधान को धारण किये हुये, सुन्दर सुडौल अंग वाली मेरी प्रियतमा जब मुझे यहाँ नहीं देखेंगी तब न जाने कितना अधिक व्यथित होगी। समस्त पृथ्वी में जिसके रूप की कोई समता नहीं कर सकता, उसी प्राणों से भी अधिक प्रिय दमयन्ती को इस बेसुध अवस्था में छोड़कर राजा नल चले गये। परन्तु बार बार वे बाहर जाते थे और बार उसी धर्मशाला में लौट आते थे। कालचक्र उन्हें बाहर खींचता था और पत्नी का प्रेम उन्हें धर्मशाला के अन्दर ले आता था। दुःख के मारे राजा नल का हृदय दो टूक हो रहा था। उनकी दशा हिंडोले के समान थी जोकि कभी इधर आता है और कभी उधर जाता है।

हृदय की आभ्यंतरिक भावनाओं का कितना हृदयस्पर्शी चित्र है। सुन्दर मधुर पदावली के साथ कल्पना और भावुकता का मणि-कांचनमय योग है। पढ़ते ही हृदय द्रवित हो उठता है। अलंकारों की सुन्दर छबीली छटा भी छहरा रही है। पूरा वर्णन पढ़ने से ऐसा प्रतीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है कि मानों कोई चित्र सा देख रहे हों। चित्रोपम कल्पना प्रस्तुत करने में वे पूर्ण सिद्धहस्त प्रतीत होते हैं राजा नल के विलाप में हृदय की भावना साकार रूप में सामने आ उपस्थित होती है। इसी प्रकार का एक उदाहरण और देखिये, जिसमें हृदय की वेदना सागर रूप में चित्रित की गयी है। भगवान् के इहलोक से प्रयाण कर परमधाम चले जाने पर अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ। श्री कृष्ण तो उनके सर्वस्व थे। अर्जुन अपने मानस की इस व्यथा को इन शब्दों में प्रकट करते हैं—

तमपश्चयन् विषीदामि घूर्णाभीव च सत्तम ।
परिनिर्विण्णश्चेताश्च शान्ति नोपलभेऽपि च ॥
विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवतुमुत्सहे ॥
[महाभारत मौ अ० ८ श्लो० २२-२३]

महर्षि व्यास की अभिव्यंजन शैलियाँ संस्कृत साहित्य में अद्वितीय हैं। अन्तर्जगत और बाह्यजगत के दोनों का सौन्दर्य वर्णन कविगण करते है। कालिदास जहाँ वाह्य जगत के चित्रण में सफल रहे हैं और शेक्सपियर केवल अन्तर्जगत का ही सुन्दर चित्रण कर सका वहाँ महर्षि व्यास को बहिंजगत और अभ्यन्तरिक जगत् दोनों के चित्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। अन्तर्जगत का सौन्दर्य उययुक्त दो उदाहरणों में कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है अब बहिंजगत् का सौन्दर्य-वर्णन देखिये। अन्तरिक्ष से भगवान् शंकर की जटाओं पर गंगा के गिरते समय जो दृश्य दिखायी दिया, वह महर्षि व्यास के शब्दों में देखिये:—

ईशानं च स्थितं दृष्ट्वा गगनात्सहसा च्युता ।
तां प्रत्युतामथो दृष्ट्वा देवाः सार्द्धि महर्षिभिः ॥
गन्धर्वोरगयक्षाश्च समाजग्मुदिदृक्षवः
ततः प्रपात गगनाद्गङ्गा हिमवतः सुता ॥
समुद्धतमहावर्ता मीनग्राहसमाकुला ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तां दधार हरो राजन् गङ्गा गगनमेखलाम् ॥
ललाटदेशे पतितां मालां मुक्तामयीमिव ।

भगवान् शंकर को खड़े देखकर व्योममण्डल से अचानक ही गङ्गा जी उनकी जटाओं पर बड़े वेग के साथ गिरीं। अंतरिक्ष से उन्हें गिरते हुये देख, उस दृश्य की सुषमा निहारने के हेतु देवता महर्षि, गन्धर्व, यक्ष, सर्प आदि एकत्र हुए। गङ्गा जी का उस समय बड़ा ही विकराल रूप दृष्टिगोचर हो रहा था। बड़े बड़े भँवर उनकी धारा में पड़ रहे थे, मीन और ग्राह सरीखे जलजन्तु भी दृष्टिगोचर होते थे। हिमालय की सुला, गगन की मेखला-सी प्रतीत होने वाली गङ्गा को शंकर जी ने जटाओ पर इस प्रकार से धारण कर लिया, जैसे कोई मोतियों की माला धारण की गयी हो।

महर्षि व्यास के चित्रण की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से करनी ही पड़ती है। शब्द सौन्दर्य के साथ भावव्यंजना भी अनुपम है। कदाचित इसी प्रकार के सुकवियों के प्रति महाकवि मंखक ने 'श्री कण्ठ चरित' में लिखा है:—

अभ्रंकषोन्भाषित कीर्तिसितात पत्रः
स्तुत्यः स एव कवि मण्डल चक्रवर्ती।
यस्येच्छायैव पुरतः स्वयमुज्जहीते,
द्राग्वाच्यवाचकमयः पृतनानिवेशः॥

वह कवि चक्रवर्ती सराहने योग्य है जिसके इंगितानुसार शब्दों और अर्थों की सेना उचित ढंग से खड़ा हो जाती है।

एक चित्र और देखिये। महाभारत में भीष्मपर्व का विषय है। एक दिवस जब भीष्म ने रणक्षेत्र में धनंजय के छक्के छुटा दिये, उसका रथ तक चकनाचूर कर डाला और गाण्डीवधारी पार्थ के गाण्डीव की डोर तक काट डाली तब वह हताश-सा हो गया। भक्त की रक्षा के लिये भगवान् श्री कृष्ण शीघ्र ही रथ एक पहिया उठाकर भीष्म की ओर दौड़े। महर्षि व्यास ने उस समय का चित्र बड़े ही कलापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षुरान्तमुद्भ्राम्य भुजेन चक्रं,
रथावप्लुत्य विसृज्य बाहान् ।
स कम्पयन् गां चरणौर्महात्मा,
वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम् ॥
मदान्धमाजौ समुदीर्ण दर्पं,
सिंहो जिघांसन्निभव वारणेन्द्रम ।

महर्षि व्यास की प्रमुख काव्यगत विशेषता तो यह है कि ऐसा कोई भी विषय अवशेष नहीं रहा, प्रायः जिसका वर्णन उन्होंने न किया हो। उनकी प्रतिभा उनके प्रत्येक ग्रन्थ में देखी जा सकती है और उनकी भावमूर्ति विधायनी कल्पना की प्रशंसा तो मुक्त कण्ठ से करनी ही पड़ती है। महर्षि व्यास इस प्रकार का स्वाभाविक और हाव-भाव पूर्ण मूर्ति-विधान करते थे कि पाठक रसानुभूति में मग्न हो उनकी भावुकता की सराहना करने लग जाता है। प्रकृति वर्णन में भी वे पूर्ण सफल रहे हैं। उनका षट्ऋतु वर्णन संस्कृत साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। उनके ऋतुवर्णन से बहुत से परवर्ती संस्कृत और हिन्दी कवियों ने भाव ग्रहण किये हैं। कल्पना तथा वाणी के साथ अपनी भावुकता का संयोग कर प्रकृति के जैसे सुन्दर चित्र महर्षि व्यास ने प्रस्तुत किये हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ ही हैं। उनके प्रकृति वर्णन से पाठकों को शिक्षा भी मिलती है। पावस वर्णन की कुछ पंक्तियाँ देखियेः—

श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मण्डूका व्यासृजन गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ॥
आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ।
पुँसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः ।
गिरयो वर्षधारभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्ष जचेतसः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युत जनागमे ।।

—श्री मद्भागवत, स्कंध—१० पूर्वार्द्ध अ० २०

जैसा कि अभी-अभी हम लिख चुके हैं, महर्षि व्यास के ऋतुवर्णन का प्रभाव परवर्ती कवियों की सूक्तियों पर अत्यधिक पड़ा है। गोस्वामी तुलसीदास के ऋतुवर्णन में भी महर्षि व्यास के ऋतुवर्णन की छाया स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। तुलसी के पावस वर्णन की निम्नांकित पंक्तियाँ देखिये—

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।।
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरेहु धन खल बौराई ।।
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन सन्त सह जैसे ।।
लछिमन देखहु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरत रत हरष जस, बिष्णु भगत कहुँ देखि ।।

प्रायः प्रत्येक परवर्ती कवि पूर्व वर्ती कवियों से भाव ग्रहण करता है, अतः इन पंक्तियों में चाहे भावसाम्य पाया भी जाता हो, तो भी यह स्वीकार करना ही होगा कि तुलसी के ऋतुवर्णन का हिन्दी साहित्त में वही स्थान है, जो महर्षि व्यास के ऋतुवर्णन का है। अब महर्षि व्यास के शरद्वर्णन की सुषमा देखिये—

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ।।
सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवचसः ।
यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्त किल्विषा ।।
गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ।।
वाणीङ् मुनि नृपस्नाता निर्गम्यार्थन् प्रपेदिरे ।
वर्षकद्धा यथा सिद्धः स्वापिगजन्काल आगते ।।

[श्री मद्भागवत स्क० १० पूर्वार्द्ध अ० २०]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्ट भावव्यंजना, सुमधुर, भाषा, सुरम्य विभाव चित्रण और अद्वितीय अभिव्यंजन शैलियों के साथ-साथ महर्षि व्यास की रसव्यंजना भी अनुपम कही जाती है। रसों में श्रृंगार को प्रधान माना जाता है। 'श्रृंगार प्रकाश' के रचयिता भोजदेव ने श्रृंगार रस की महत्ता निम्न-लिखित श्लोकों में प्रतिपादित की है—

वीराद्भुतादिषु च ये ह रस प्रसिद्धः,
सिद्धा कुतोऽपि वय्यत्त्वदाविभांति;
लोके गतानुगांतकत्व व शादुपेता—
मेतां निर्वतयितुमेष परिश्रमो नः।
श्रृंगारवीर करुणाद्भुतहास्यरौद्र—
बीभत्स वत्सल भयान कशांतनाम्नः॥
आम्ना सिषुर्दशरसान् सुधियो वयन्तु,
श्रृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः॥

विश्व, प्रकृति पुरुष की केलिका रंगमंच है। नारी पुरुष की प्रीति प्रकृति पुरुष का प्रीति का प्रतिबिंब ही है। प्रेम की समता भला कौन कर सकता है। प्रेम के विषय में विहारी ने उचित ही लिखा है—

गिरि तैं ऊँचे रसिक मन बूड़े जरों हजार।
बहैं सदा पसु नरन को प्रेम पयोधि पगार।

संस्कृत के एक प्रसिद्ध विद्वान का कथन है कि समस्त रस और भाव उदधि में ऊर्मियों के समान, जिसमें उठते और लीन होते रहते हैं उसका नाम प्रेम है। देखिए—

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसंज्ञकः॥

यही प्रेम श्रृंगार रस का स्थायी भाव माना जाता है। श्रृंगार रस को रसराज भी कहते हैं तथा दूसरे सभी रस श्रृंगार के सन्मुख गौण ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठहरते हैं। हिन्दी साहित्य का रीतिकाल कृष्ण और राधा की प्रेममयी कविताओं से ही भरा पड़ा है। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाये तो यही समझ पड़ता है कि इन कवियों को प्रेरणा श्री मद्भागवत से ही मिली है। व्यास जी ने श्री मद्भागवत को 'पिवत भागवत रसमालयम्' कहा है और पाठकों से 'भागवत' का रसपान करने का अनुरोध किया है। 'श्री मद्भागवत' में शृंगार रस के सुन्दर-सुन्दर चित्र दृष्टि-गोचर होते हैं। प्रीति क ये सुन्दर उदाहरण संस्कृत साहित्य की अक्षय निधि हैं। एक उदाहरण देखिये—

अन्तर्गृहगताः कश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलित लोचनाः॥

शरद् पूर्णिमा की बावली-सी कर देने वाली विभावरी थी। जब निशा आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी तब एकाएक वृन्दावन में श्याम की बाँसुरी बज उठी। गोपियाँ जिस दशा में थीं उसी दशा में कृष्ण के समीप जा पहुँची। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'रसखान' ने कृष्ण की बाँसुरी की सुरीली तान का ब्रज पर क्या प्रभाव पड़ा और उसके वशीभूत हो गोपियाँ किस प्रकार अपनी सुधबुध भूल गयीं इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

दूध दुह्यो, सोरो परयौ तातो न जमायो बीर,
जामन दियो सो धन्यो धन्योई खटायगो।
आन हाथ आन पाइ सब ही के तब ही तें,
जब ही तें 'रसखानि' ताननि सुनायगो॥
ज्यौं ही न त्यों ही नारी तैसिये तरुनि वारी,
कहिये कहा री, सब ब्रज बिललायगो।
जानिये न आली, यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजायगो, कि बिष बगरायगो॥

जिस प्रकार वीणा बजते ही मृग उस सुमधुर स्वरलहरी को कर्ण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोचर कर उसे और अधिक समीप से श्रवण करने के हेतु वीणा बजानेवाले के पास आ पहुँचता है, उसी प्रकार वन्शी की मधुर ध्वनि सुनते ही गोपियाँ भी श्याम के समीप जा पहुँची। परन्तु जो न जा सकीं उन्होंने मन ही मन श्याम से आराधना की और चक्षुओं को मूंद कृष्ण का ध्यान किया और उसी प्रकार श्याम से उनकी भेंट हो गयी। महर्षि व्यास ने गोपियों की इस अवस्था का सुन्दर चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया है। गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति कितना प्रगाढ़ प्रेम था, उसका सुन्दर परिचय इस श्लोक में मिलता है। मानस की आभ्यन्तरिक अवस्था यहाँ कलात्मक रूप में चित्रित की गयी है।

अब महर्षि व्यास की श्रृंगार रसपूर्ण काव्यकला का एक दूसरा उदाहरण देखिये। रासलीला हो रही थी, परन्तु एकाएक भगवान श्रीकृष्ण गोपियों को आश्चर्य चकित करने के हेतु विलुप्त हो गये। अब गोपियाँ उन्हें न देखकर अत्याधिक आश्चर्यमग्न हो गयीं। उन्होंने कृष्ण की बहुत खोज की, पर वे मिल न सके। उनका हृदय दुखी हो रहा था और उनकी इस वियोगावस्था—करुणापूर्ण दशा को देख—श्याम पसीज उठे और एकाएक प्रकट हो गये। अब गोपियों ने उन्हें घेर लिया और लगी प्रेम परिहास करने। सबने भिन्न-भिन्न ढंग से अपना प्रेम प्रदर्शन किया, परन्तु उन सबके मध्य एक ऐसी प्रेमयोगिनी थी जिसने बड़े ही अद्भुत ढंग से अपना प्रेम प्रदर्शित किया। उसका यह प्रेम-प्रदर्शन महर्षि व्यास के शब्दों में देखिये—

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृद कृत्य निमील्य च।
पुलकाङ्ग्यपगुह्य स्ते योगीवाम्नदसम्प्लुता॥

महर्षि व्यास ने व्यंग्यपूर्ण कथन भी प्रस्तुत किये हैं और कहीं-कहीं हास्य रस की भी धारा प्रवाहित की है। अर्जुन जब सुभद्रा से विवाह कर चुके, तो कुछ दिनों उपरान्त उनसे व्यंग्य करती हुई द्रौपदी ने कहा—'अजी, आप वहाँ जाइये, जहाँ आपकी नयी नवेली सुभद्रा जी बैठी हैं। एक गट्ठा चाहे कितनी दृढ़ता से बाँध दिया जाये, उसका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहला बन्धन चाहे कितना भी अधिक सुदृढ़ क्यों न हो परन्तु जब वही गट्ठा दूसरी बार बाँधा जाता है तो उसका पहला बन्धन कुछ शिथिल अवश्य पड़ जाता है।' देखिये—

तत्रैव गच्छ कौन्तेय यत्र सा सात्वतात्मजा।
सुबद्धस्यापि भारस्या पूर्वबन्धः श्लाथायते ॥

व्यंग्य के साथ-साथ नीतिपूर्ण उद्गार भी महर्षि व्यास ने प्रगट किये हैं। वे कवि और आचार्य के साथ-साथ उपदेशक भी थे तथा उनके ऋतुवर्णन में नीतिपूर्ण सूक्तियाँ तो दृष्टिगोचर होती ही हैं। महाभारत में जो 'श्रीमद्भागवत गीता' है, उसका महत्व तो आज भी सर्वविदित है, साथ ही उसमें नीतिपूर्ण उद्गारों की खान सी है। विस्तारभय से हम यहाँ सिर्फ एक ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। 'एक माँ अपने पुत्र से कहती है कि चाहे तेदुंवे की लकड़ी के समान एक ही क्षण में जलना पड़े, पर जलना अवश्य और जलकर अपने अलोक से जीवन को प्रकाशित कर देना। प्रकाशहीन अग्नि न बनकर प्रकाशवत् बनना। अधिक दिन जीवित रह सको, इसीलिये भूसे की धूमिल अग्नि के समान जलकर अपना जीवन व्यर्थ नष्ट न कर देना। एक ही क्षण का आलोकपूर्ण जीवन इस धूम्रमय दीर्घ जीवन से लाखगुना उत्तम है।' कितने सुन्दर विचार हैं और उनको कितनी कुशलता के साथ व्यक्त भी किया गया है। यह महर्षि व्यास की काव्यकला का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। देखिये:—

अलात तिन्दुकस्येव मुहुर्तमपि हिज्वल।
मा तुषाग्नि रवानर्चिर्धुमायस्व जिजीविषुः ॥

महर्षि व्यास उच्चकोटि के संस्कृत कवियों में हैं। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। भावों के अनुरूप भाषा सर्वत्र ही उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती हैं। सुन्दर पदावली की सहायता से वे सुन्दर सजीव भावपूर्ण मूर्तिविधान करते थे। भावों का श्रेष्ठता के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ-साथ उनकी भाषा भी रमणीय है। लाक्षणिकता भी सराहनीय है। उत्पत्ति, विकास और अंत—सृष्टि, युद्ध और शोक—इन तीनों के वर्णन में जिस कवि को जितनी अधिक सफलता मिलती है, उतनी ही उच्चकोटि की उसकी रचना भी होती है। महर्षि व्यास के महाभारत में इन तीनों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है और एक मात्र महाभारत ही उनकी कवि प्रतिभा का परिचायक है, फिर अन्य अवशेष ग्रन्थों का तो कहना ही क्या है। उसकी काव्यगत विशेषताओं की प्रशंसा प्रसिद्ध विद्वानों तक ने की है तथा वह अकेला ही उनकी कीर्ति को सर्वदा अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ है। आचार्य आनन्दवर्धन ने 'ध्वन्यालोक' के चतुर्थ उद्योत में महाभारत की काव्य दृष्टि से समीक्षा करते हुए लिखा है—

"महाभारतेऽपि............वृष्णिपाण्डवविरासावसान वैमनस्यदायिनी समाप्तिमुपनिबध्नता महामुनिना वैराग्यजननतात्पर्यप्रधान्येन स्वप्रबन्धस्य दर्शयता मोक्षलक्षणः पुरुषार्थः शान्तोरसश्च मुख्यतया विवक्षविषयत्वेन सूचितः............काव्यने तृष्णाक्षयसुखरिपोषलक्षणः शान्तो महाभारतस्याङ्गित्वेन विवक्षत इति सुप्तिपादितम्। अत्यन्तसारभूतत्वाच्चायमर्थोव्यङ्ग्यत्वनैव दर्शितो न तुवाच्चन्त्वेन। सारभूतो ह्यर्थः स्वशब्दानभिधेचन्त्वेन प्रकाशितः सुतरामेव शोभामावहति। प्रसिद्धिश्चेयमस्त्येव विदग्धविद्वत्परिषत्सु यदभिमततंर वस्तु व्यङ्ग्यत्वेन प्रकाशिते न साक्षाच्छब्दवाच्यत्वेनैव।"

महर्षि व्यास का महाभारत पाँचवा वेद माना जाता है तथा उसके अध्ययन से समस्त शास्त्रों के अध्ययन का रस प्राप्त होता है। उसे सर्वशास्त्रों के रसों का निचोड़ भी कहा जाता है और स्वयं महर्षि ने महाभारत में उस बात पर प्रकाश डाला है—

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।
ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितंमया॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साङ्गोपनिगदां चैव वेदनां रिस्तर क्रिया।
इतिहास पुराणा नामुन्मेषं निमिषं च यत् ॥
चातुर्वर्ण्य विधानं पुराणानां च कृत्स्नशः।
ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणां च युगैः सह ॥
न्याय शिक्षा चिकित्सा च दानं पाशुपनं तथा।
तीर्थानां चैव पुण्यानां देशानां चैव कीर्तनम् ॥
नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च।

[महा० आदि पर्व अ० १-८६-७३]

महाभारत से न जाने कितने नवीन कवियों को प्रेरणा मिली है और न जाने कितने कवियों ने भावग्रहण किये हैं। महर्षि व्यास ने स्वयं ही उसके आदि पर्व में लिखा है कि बाद के कवियों को महाभारत से प्रेरणाएँ मिलेगी और इस कथानक का आश्रय लेकर परवर्ती कवि काव्य सृजन करेंगे। देखिये

इतिहासोत्तमादस्माद् जायते कवि बुद्धयः।

[महा० आदि पर्व २। ३८५]

और भी—

इदं कविवरैस्सवैरख्यानमुपजीव्यते।

[महा० आदि पर्व—२३८७]

उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य हुआ। वास्तव में संस्कृत साहित्य को उनकी रचनाओं पर गर्व करना चाहिये। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास चौविस अवतारों में तो माने ही जाते हैं, परन्तु संस्कृत के कवियों में भी उनका अपना एक अद्वितीय स्थान है। वे उन महान विभूतियों में हैं, जिनकी रचनाओं का मान विदेशों तक में है और उनकी काव्य कलाकी प्रशंसा में जितना भी अधिक लिखा जाय थोड़ा ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम-काव्य की परम्परा

आदि कवि महर्षि बाल्मीकि की 'बाल्मीकि रामायण' में ही सर्वप्रथम बार राम का महत्व वर्णन किया गया है। जे० एन० फर्कुहर (J. N. Farquhar) ने 'बाल्मीकि रामायण' का रचनाकाल ईसा के ४०० या ६०० वर्ष पूर्व माना है। इस प्रकार के ४०० या ६०० वर्ष पूर्व ही राम का महत्व भारत में स्वीकार किया जा चुका था। यद्यपि 'बाल्मीकि रामायण के प्रथम और सप्त-काण्ड प्रक्षिप्त ही माने जाते हैं परन्तु द्वितीय से षष्ट-काण्ड तक की मौलिकता और प्रमाणिकता में सन्देह नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि उनकी वास्तविकता पर अविश्वास भी किया जाता है परन्तु जहाँ तक है उनका रूप विकृत न हो सका और इस प्रकार उन पर सन्देह करना व्यर्थ ही है। 'बाल्मीकि रामायण' में हिन्दू धर्म के स्वरूप का यथार्थ चित्रण किया गया है तथा उसमें अंधविश्वासपूर्ण रूढ़िग्रस्त विचारों का भी निरा अभाव है। परन्तु यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि बाल्मीकि जी ने बालमीकि रामायण का सृजन लौकिक दृष्टि-कोण से ही किया था और लौकिक दृष्टिकोण रहनेके फलस्वरूप उन्होंने धर्म का भी लौकिक स्वरूप ही चित्रित किया है। 'बालमीकि रामायण' में राम एक महापुरुष मात्र हैं और उसमें कहीं भी वे अवतार के रूप में चित्रित नहीं किए गए। प्रारम्भ से लेकर अंत तक कहीं भी राम में देवत्व की भावना दृष्टिगोचर नहीं होती और वे केवल मनुष्य मात्र ही माने गए हैं। अतएव 'बाल्मीकि रामायण' और 'रामचरित मानस' में चरित्र चित्रण में जो विभिन्नता हमें देख पड़ती है उसका भी यही एक विशेष कारण है कि आदि कवि ने राम को एक मानव मात्र ही माना है परन्तु तुलसी ने तो राम को लोकरक्षक और लोकरंजक ईश्वर के रूप में ही चित्रित किया है। बंग साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री० दिनेशचन्द्र सेन ने तो अपनी 'रामायणीकथा' नामक पुस्तक में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'वाल्मीकि रामायण' के पात्रों के चरित्रों के दोषदर्शन पर विशद प्रकाश डाला है। उदाहरणार्थ 'वाल्मीकि रामायण' में अयोध्या काण्ड के २६ वें सर्ग में रामचन्द्र सीता से कहते हैं—

"ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्।
तस्मान्न ते गुणः कथ्या भरतस्याग्रतो मम॥"

अर्थात् ऋद्धियुक्त पुरुष अपने सामने दूसरे पुरुष की प्रशंसा कभी नहीं सहन कर सकते अतः तुम कभी भरत के सामने मेरी प्रशंसा मत करना।

सेन महोदय ने इस वर्णन पर अपनी आपत्ति प्रदर्शित की है और इसे राम के चरित्र चित्रण की दुर्बलता माना है। उनका कहना है कि आदि कवि ने राम के द्वारा भरत के प्रति ऐसे बचन व्यक्त करवा कर न केवल भरत के प्रति अन्याय किया है परन्तु साथ ही अपने आदर्श चरित्र और उदारमानस की दुर्बलता भी दिखाई है। किन्तु लौकिक दृष्टिकोण से विचार करने पर राम के ये वचन अनुपयुक्त प्रतीत नहीं होते क्योंकि उन्होंने यहाँ मानव हृदय की दुर्बलता का स्पष्ट चित्रण किया है और चूंकि 'वाल्मीकि रामायण' में उन्हें अलौकिक रूप में प्रस्तुत न करें लौकिक रूप में ही प्रस्तुत किया गया है अतः सेन महोदय के विचारों से सहमत होना आवश्यक भी प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार राम वनवास के उपरान्त जब दशरथ कौशल्या के भवन में पहुँचे तब महारानी कौशल्या ने उन्हें जो वचन कहे उनमें भर्त्सना के स्थान पर मातृ-हृदय की वात्सल्य पूर्ण भावनाओं की प्रधानता ही देख पड़ती है पर कुछ सहृदय समालोचक इस अवतरण के आधार पर आदि कवि की कड़ी टीका करते हैं कि उन्होंने कौशल्या के आदर्श चरित्र को बहुत ही निम्न स्तर का बना दिया है परन्तु वास्तव में कौशल्या के निम्नांकित कथन में पुत्रशोक की प्रबलता ही विशेष रूप से है और बुद्धि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वादी दृष्टिकोण से बाल्मीकि ने इस अवतरण में यथार्थता की ही प्रधानता है। देखिए।

स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः।
स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा॥
गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते॥
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया॥

[वा० रा० अ० सर्ग ६१]

जिस प्रकार बड़ी मछलियां अपनी सन्तानों का अर्थात छोटी छोटी मछलियों का भक्षण कर डालती हैं उसी प्रकार आपने पिता होकर भी वृषभकंध और सिंह के समान साहसी राम को वन भेज कर ऐसा ही कार्य किया है। नारी की सबसे प्रथम गति पति, द्वितीय पुत्र और तृतीय कुटुम्बीजन होते हैं, चतुर्थ कोई अन्य गति नहीं होती। आप पति होकर भी मेरे नहीं हैं, मेरे पुत्र राम वन में हैं और मैं वन जाना नहीं चाहती। इस तरह आपने सब प्रकार से मुझे मार डाला।

इस प्रकार आदि कवि ने राम को एक महात्मा या महापुरुष मात्र माना है और वेदों में मान्य देवता ही ग्रहण किए हैं जिनमें इन्द्र को अन्य सब देवताओं से कुछ ऊँचा माना गया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य देवी देवताओं का भी उल्लेख है तथा ऋगवेद के सदृश्य विष्णु और शिव का भी वर्णन किया है परन्तु विष्णु और राम में कोई सम्बन्ध चित्रित नहीं किया गया और न राम को अवतार ही माना गया।

मौर्यवंश के उपरान्त सुंगवंश की स्थापना हुई और बौद्धधर्म अपनी समुन्नत अवस्था में जा पहुँचा। गौतम बुद्ध को भी दैवत्य के गुणों से विभूषित किया जा रहा था और बौद्धधर्मावलम्बी तो उन्हें ईश्वर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही समझ रहे थे। इन्हीं दिनों 'वायुपुराण' का सृजन हुआ और उसमें प्रथम बार राम विष्णु के अवतारों के अन्तर्गत माने गए। वायुपुराण में ही राम वास्तव में परमात्मा के पद पर प्रतिष्ठित किए गए हैं। हो सकता है कि बौद्धधर्मावलम्बियों की नूतन प्रवृत्तियों से ही प्रभावित हो राम को भी ईश्वर माना जाने लगा हो 'वायुपुराण' की अभी तक कोइ निश्चित प्रामाणिक तिथि ज्ञात नहीं हो सकी है परन्तु कुछ इतिहासकारों ने उसका रचनाकाल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व माना है। यह तो स्वाभाविक ही है कि 'वायुपुराण' किसी न किसी रूप में बौद्ध-मत से अवश्य ही प्रभावित हुआ होगा और चूँकि बौद्धधर्मावलम्बियों ने गौतमबुद्ध के निर्वाण के उपरान्त उन्हें ही देवत्व के गुणों से विभूषित करना प्रारम्भ कर दिया तथा बौद्ध विहारों में बुद्ध की प्रतिमाओं की स्थापना भी की अत: हो सकता है उसी प्रकार किसी समय केवल महापुरुष समझे जाने वाले राम 'वायुपुराण' में ईश्वर मान लिए गए हों। यह तो स्पष्ट है कि वायुपुराण में राम विष्णु के अवतारों में माने गए हैं। यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि 'वाल्मीकि रामायण' के जिन अंशों को प्रक्षिप्त माना जाता है उनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक त्रिदेवों को समान रूप से मान्यता दी गइ है और और कुछ अंशों में राम विष्णु के अवतार भी माने गए हैं तथा इन्द्र की महानता को कम कर विष्णु को उनसे श्रेष्ठ समझा गया है। यद्यपि ये अंश प्रक्षिप्त ही हैं तथा इनकी प्रामाणिकता पर निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता परन्तु चूंकि ऋगवेद में भी विष्णु का उल्लेख किया गया है अत: इतना तो स्पष्ट है कि विष्णु की उपासना की ओर लोगों का ध्यान वैदिक काल में ही आकर्षित हो चुका था और 'वायुपुराण' में तो विष्णु का महत्व विशेष रूप से स्वीकार किया गया है।

ईसा के लगभग दो सौ वर्ष उपरान्त 'मानव धर्मशास्त्र' में अनुगीता के अन्तर्गत विष्णु के अवतारों पर प्रकाश डाला गया है। उसमें वाराह,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नृसिंह, वामन, मत्स्य, राम और कृष्ण नामक ६ अवतार विष्णु के माने गए हैं। 'मानवधर्म शास्त्र' में ही मोक्षधर्म के अन्तर्गतनारायणीय नामक एक विशेष भाग में वैष्णवधर्म के विकसित रूप पर प्रकाश डाला गया है। इसमें विष्णु को 'व्यूह' रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्हें सृष्टि का निर्माता भी स्वीकार कर लिया गया है और उनके चतुर्व्युह रूप का वर्णन किया गया है। वैष्णव मत के हेतु वासुदेव, सात्वत और पंचरात्र नाम भी स्वीकार किए गए हैं। विष्णु के अवतारों की संख्या छः से बढ़ाकर दस कर दी गई है और संहिता में तो शक्ति का सम्बन्ध भी विष्णु से माना गया है। राम भक्ति में इसी शक्ति को सीता का रूप माना गया है। इस प्रकार हम निस्संकोच कह सकते हैं कि गुहाकाल में राम का पूर्णरूपेण महत्व वर्णन किया गया है। 'विष्णु पुराण' जिसका कि रचनाकाल ईस्वी सन् ४०० माना जाता है; राम क महत्व को वास्तव में पूर्ण रूप से चित्रित करने में समर्थ हो सका है। अतः हम कह सकते हैं कि गुप्तकाल में ही राम का पूर्ण रूपेण चरित्र चित्रण करने का प्रयास किया गया।

ईसा की छठवीं शताब्दी के उपरान्त 'राम पूर्व तापनीय उपनिषद' और 'राम उत्तर तापनीय उपनिषद्' में राम भक्ति का अपूर्व विकास हुआ। इन उपनिषदों में राम को ब्रह्म का अवतार माना गया है और उन ब्रह्म का जिनके कि वे अवतार हैं विष्णु नाम से नाम करण किया गया है। इसके उपरान्त 'अगस्त सुतीक्ष्ण संवाद संहिता' में तो राम का महत्व अलौकिक रूप में वर्णित किया गया है तथा कुछ समय उपरान्त तो आगे चलकर 'अध्यात्म रामायण' में राम को ईश्वरत्व की सबसे ऊँची शिखर पर अरूढ़ किया गया। 'अध्यात्म रामायण' में राम और सीता का आध्यात्मिक रूप ही चित्रित किया गया है। राम को पुरुष माना गया है और सीता को प्रकृति; राम परम ब्रह्म माने गए हैं और सीता को उनकी अनिर्वचनीया माया माना गया है। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं की लीला का क्षेत्र है। देवताओं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा वसुधा के भार को उतारने के लिए प्रार्थना किए जाने पर ब्रह्म और माया ने ही विश्व में आकर अपनी लीला प्रदर्शित की थी। इस ब्रह्म और माया की अनोखी लीलाओं से परिपूरित रामचरित ही 'अध्यात्म रामायण' में वर्णित किया गया है। ग्रंथ का प्रारम्भ करते समय ही ग्रंथकार ने अपने इस आशय की सूचना मंगलाचरण के निम्नांकित श्लोक में स्पष्ट कर दी है—

य: पृथिवी भरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः।
सञ्जातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः॥
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरा।
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे॥

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्रीमद्भगवत पुराण द्वारा तो श्री राम चन्द्र के महत्व का विस्तृत विवरण प्रचारित किया गया। अतएव जैसा कि श्री सर आर. जी. भण्डारकर (Sir R. G. Bhandar Kar) महोदय ने 'Vaisnavism, Savism, and minor Religious systems' नामक पुस्तक में लिखा है—The cult of Ram, therfore, must have come into existence about the eleventh century." वास्तव में ग्यारहवीं शताब्दी में ही राम भक्ति एक प्रवल संप्रदाय का रूप धारण कर सकी तथा इसके पूर्व राम के महत्व वर्णन में परिवर्तन-परिवर्द्धन ही किया जाता रहा।

उत्तर भारत में रामानन्द ने ही सर्वप्रथम वार जन साधारण के मध्य रामभक्ति का प्रचार किया। आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल ने उनका समय विक्रम की १५ वीं शती के चतुर्थ या १६ वीं शती के तृतीय चरण के भीतर माना है। यद्यपि रामानन्द के पूर्व अनेक वैष्णव भक्त हो चुके थे परन्तु रामभक्ति का प्रचार करने का सर्वप्रथम प्रयास उन्होंने ही किया। रामानंद जी यद्यपि रामानुजाचार्य्य के मतावलम्बी ही थे जो कि उनकी गुरु परंपरा में उनके १४ पीढ़ी पूर्व हो चुके थे तदापि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्होंने अपनी उपासना पद्धति का विशेष रूप माना। शुक्ल जी ने यद्यपि रामानंद को तत्त्वदृष्टि से रामानुजाचार्य का ही मतावलम्बी माना है परन्तु कुछ विद्वानों ने दोनों आचार्यों का उतना अधिक सन्निकट सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो 'कबीर' नामक अपनी पुस्तक में रामानुजीय और रामानंदीय संप्रदाय का अंतर स्पष्टता के साथ चित्रित किया है तथा तालिका देकर उसे समझाया भी है। रामानंद जी ने लोक में लीला विस्तार करने वाले राम की उपासना की और इस प्रकार अपना इष्टदेव राम को माना तथा मूलमंत्र राम नाम स्वीकार किया। यों तो रामानंद के पूर्व भी रामोपासक भक्त हो चुके हैं परन्तु विशेष रूप से इन्होंने ही विष्णु के अन्य रूपों में 'राम रूप' को ही ग्रहण किया है और उनकी उपासना की ओर सर्वसाधारण को प्रेरित किया तथा एक सबल संप्रदाय का संगठन किया। जाति बंधन को ढीला कर राम भक्ति के द्वार उन्होंने सब जातियों के लिए खोल दिए और इस प्रकार राम नाम की महिमा वर्णन की तथा सभी जाति के लोगों को राम भक्ति का उपदेश दिया।

यद्यपि कबीर ने भी रामानंद का शिष्यत्व ग्रहण कर राम नाम का आश्रय लेकर संतमत का प्रसार किया था तथापि राम भक्ति का पूर्णरूपेण विकास तुलसी की ही कृतियों में हुआ। जैसा कि डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"रामानंद के प्रधान उपदेश अनन्य भक्ति को कबीर ने शिर सा स्वीकार कर लिया था। बाकी तत्त्व ज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों, रुचि और शिक्षा के अनुसार एकदम नवीन रूप दे दिया था।" वह वास्तव में पूर्णत उचित है और हमें इस बात पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए कि कबीर के राम वास्तव में पुराणों द्वारा प्रतिपादित अवतार नहीं थे बल्कि उन्होंने तो निर्गुण राम की उपासना पर ही जोर दिया है। देखिए—

ता साहिब कैं लागौं साथा, दुख सुख मेटि जौ रह्यो अनाथा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नां दसरथघरि औतरि आवा, नां लंका का रांव सतावा ॥
देवै कूरव न औतरि आवा, न जसवै लै गोद खेलावा ।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोबरधन ले ना कर धरिया ॥
बावन होय नहीं बलि छलिया, धरनी वेद लेन ऊधरिया ।
गंडक सालिग राम न कोला, मच्छ-कच्छ ह्वै जलहिं न डोला ॥
बद्री बैठा ध्यान नहिं लावा, परसराम ह्वै खत्री न सतावा ।
द्वारमती सरीर न छाड़ा, जगन्नाथ ले प्यंड न गाड़ा ॥
कहै कबीर विचार करि, ये ऊले व्यवहार ।
याहा थें ज अगम है, सो वरित रह्यो संसार ॥

—कबीर ग्रंथावली—पृष्ठ २४२-३

गोस्वामी तुलसीदास ने रामनन्द के सदृश ही दास्यभाव से राम की उपासना की है, उन्होंने रामानन्द के सिद्धान्तों का आधार लेकर अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से हिन्दी साहित्य में राम काव्य की धारा प्रवाहित की जो केवल उनके ही काल में नहीं बल्कि उनके उपरान्त भी रामभक्ति का प्रचार करने में समर्थ रह सकी। रामचरित वर्णन सर्वप्रथम तुलसी ने ही जन साधारण की भाषा में किया है यद्यपि जैसा कि नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १६०६, १६०७ और १६०८ की खोजरिपोर्टों से पता चलता है कि तुलसी के पूर्व कुछ और ऐसे कवि हो गए हैं जिन्होंने रामकथा, का वर्णन किया है तथापि 'मानस' ही राम काव्य की परम्परा में हिंदी साहित्य की अग्रणी रचनाओं में माना जाता है तुलसीदास ने भी स्वीकार किया है कि वे ही रामभक्ति के पहले कवि नहीं हैं। वे कहते हैं—

कलि के कविन्ह करउँ परनामा। जिन बरने रघुपति-गुन-ग्रामा।
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने॥

खोजरिपोर्टों के अनुसार संवत १३४२ में भूपति नामक कवि ने सर्वप्रथम बार राम की कथा दोहे चौपाई में लिखी। संवत १६४२ में मनिलाल ने भी 'रामप्रकाश' नामक ग्रंथ लिखा परन्तु रामकाव्य के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वप्रधान हिन्दी कवि गोस्वामी तुलसीदास ही माने जाते हैं और डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में—"तुलसी की प्रतिभा और काव्यकला इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई कि उनके बाद किसी भी कवि की रामचरित सम्बन्धी रचना उनके मानस की समानता में प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकी। (दे० हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास)

तुलसी के उपरान्त केशव ने 'रामचन्द्रिका' में राम का चरित्र चित्रण किया परन्तु चूँकि उनमें कवि और आचार्य दोनों के व्यक्तित्व का सहज सामंजस्य था अत: कहीं कहीं उनका कवित्व उनके आचार्यत्व के बोझ में बोझिल सा हो गया है। 'रामचन्द्रिका' में कथा विस्तार तो है ही नहीं तथा कथा वस्तु भी विशेषत: 'वाल्मीकि रामायण' से ही प्रभावित है अत: हम देखते हैं कि डा० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में उचित ही लिखा है—"रामचन्द्रिका में न तो कोई दार्शनिक और धार्मिक आदर्श है और न लोक-शिक्षा का कोई रूप ही, जैसा 'मानस' में है।" केशव के उपरान्त स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि कई कवियों ने रामकथा का वर्णन किया है तथा विक्रम की १६ वीं और २० वीं शताब्दी में भी रामचरित सम्बन्धी कई कृतियाँ लिखी गई जिनमें रामचरणदास, रघुनाथदास और महाराज रघुराज सिंह की रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। सेनापति ने कवित्तरत्नाकर की चौथी तरंग में भी रामचरित्र चित्रण किया है। परन्तु तुलसी के उपरान्त आगे चलकर रामभक्ति की काव्यधारा में भक्ति-भावना की वह विशुद्धता और प्रबलता न रह सकी जो तुलसी की 'मानस' में थी। जैसा कि आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है—"तुलसीदास जी ने भक्ति को अपने पूर्णरूप में, श्रद्धा-प्रेम समन्वितरूप में सबके सामने रखा और धर्म या सदाचार को उसका नित्य लक्षण निर्धारित किया।" परन्तु आगे चलकर श्रद्धा की अपेक्षा भक्ति-साधना में प्रेम की ही प्रधानता रही और इस प्रकार शनैः शनैः धर्म से विमुख हो शृंगारो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पासना तथा माधुर्यभाव की ही ओर कवियों के आकर्षण में वृद्धि होने लगी। कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने तो कृष्ण के लोक-रक्षक और लोक-रंजक स्वरूप को त्यागकर केवल माधुर्य उपासना की ही ओर जन साधारण को प्रेरित किया। वल्लभाचार्य ने यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए 'पुष्टिमार्ग की उपासना कर उचित ही कार्य किया था परन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में साधना का जो स्वरूप स्वीकार किया गया उसमें भोगविलास के प्रदर्शन की ही प्रधानता रही और आगे चलकर तो भक्ति साधना की अपेक्षा विलासिता और ऐन्द्रिकता की ओर ही जन-साधारण को प्रेरित किया गया। राधाकृष्ण की प्रेमलीला का ही गुणगान विशेष रूप से होने लगा और 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित कृष्ण के मधुर रूप की ही ओर आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता रहा। कृष्णोपासक कवियों की भक्तिसाधना के इन सिद्धान्तों से रामभक्ति-शाखा के कवि भी विशेष रूप से प्रभावित हुए और उन्होंने भी राम के केवल माधुर्य रूप की ही ओर ध्यान दिया तथा रामभक्ति को भी शृंगार की रसधारा से सिंचित कर दिया। यों तो तुलसी स्वयं भी 'सूरसागर' के शृंगार रस पूर्ण चित्रों से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने भी सूर का अनुसरण कर 'गीतावली' में राम को भी हिंडोला विहार करते और होली खेलते हुए चित्रित किया है परन्तु इतना होते हुए भी राम के प्रति पूज्यभाव ही उन्होंने यत्र तत्र व्यक्त किये हैं। पर तुलसी की सी भावनाएँ आगे अक्षुण्ण न रह सकीं और अयोध्या के बाबा रामचरणदास ने तो 'स्वसुरती' नामक भक्ति की नवीनशाखा को प्रारम्भ कर पतिपत्नी भाव की उपासना पर जोर दिया है। इस नवीन शाखा का प्रवर्तन करनेवाले 'कशलखंड' नामक एक ग्रंथ में तो स्पष्ट लिखा है कि रासलीला तो वास्तव में रामने की थी और रामावतार में तो वे ९९ रास कर चुके थे केवल अवशेष एक के ही लिए उन्हें कृष्ण का अवतार लेना पड़ा। इस प्रकार इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवीन शाखा के प्रवर्तकों ने राम की रासलीला आदि के कई वासना-मूलक कल्पित वृत्तों का प्रसार करना प्रारम्भ किया। यही पतिपत्नी भाव की उपासना आगे चलकर 'सखी भाव' के नाम से संबोधित की जाने लगी और 'कृपानिवास पदावली' तथा 'श्री रामावतार भजन तरंगिणी' जैसी अश्लील तथा कुरुचि उत्पादक पदों से परिपूर्ण पुस्तकें प्रकाश में आई। गोस्वामी जी ने जिस रामभक्ति का पुनीत दिव्यालोक चारों ओर फैलाया था वह इस प्रकार की रचनाओं द्वारा धूमिल किया जाने लगा। एक उदाहरण देखिए—

"हमारे पिये ठाढ़े सरजू तीर!
छोड़ि लाज मैं जाय मिली जहं खड़े लखन के बीर॥
मृदु मुसुकाय पकरि कर मेरो खैंचि लियो तन चीर।
झाऊ वृत्त की झाड़ी भीतर करन लगे रति धीर॥"

आधुनिक हिन्दी काव्य में भी रामचरित का निरूपण कई कविय ने किया है यद्यपि बुद्धिवाद को प्रधानता से और वैज्ञानिक दृष्टि कोण के प्रभाव से शिक्षित और विचारवान पुरुषों ने ईश्वर के अवतारवाद के सिद्धान्त पर अविश्वास भी प्रकट किया है। अवतारवाद के प्रति आर्य समाज के विरोधी विचारों का प्रभाव तो स्वाभाविक रूप से पड़ा ही तथा अंधविश्वास के स्थान पर तर्क शक्ति की प्रबलता होने से राम और कृष्ण के अति मानुषिक कार्यों पर भी संदेह व्यक्त किया जाने लगा। अत: राम और कृष्ण पुन: मानव चरित्र के रूप में चित्रित किए जाने लगे। 'प्रिय प्रवास' की भूमिका में 'हरिऔध' जी ने लिखा भी है—'मैंने श्री कृष्णचंद्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नही। अवतारवाद की जड़ में श्रीमद्भगवत्गीता का यह श्लोक मानता हूँ—

"यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंश संभवम्।"

श्री रामचरित उपाध्याय ने 'राम चरित चिन्तामणि' में राम की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथा को सर्वथा ही एक विभिन्न दृष्टिकोण से चित्रित किया है। कृष्ण की चरित्र की भाँति राम चरित्र में अलौकिक घटनाओं की बहुलता नहीं है और आदि कवि ने तो राम के लौकिक रूप का ही चित्रण किया है। श्री राम चरित उपाध्याय ने तो राम का चरित्र चित्रण राजनैतिक दृष्टिकोण से ही किया है यद्यपि उन्हें अपने कार्य में उतनी सफलता न प्राप्त हो सकी और जैसा कि डा० श्रीकृष्ण लाल का कथन है—"परन्तु इस दृष्टिकोण से राम, सीता, भरत और लक्ष्मण के आदर्श चरित्र का निर्वाह नहीं हो सका वरन् मोतियों के स्थान पर कवि ने काँच के टुकड़े सजा दिए।" आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त ने भी साकेत, पंचवटी तथा प्रदक्षिणा में राम का चरित्र चित्रण किया है। वाल्मीकि के मानव राम में तुलसी ने देवत्व का समावेश कर 'राम चरित मानस' में राम को देवता ही माना है परन्तु गुप्तजी के राम तो परब्रह्म होते हुए भी मनुष्य ही हैं तथा अवतार होते हुए भी हमसे विभिन्न नहीं हैं—

राम राजा ही नहीं पूर्णावतार पवित्र।
पर न हमसे भिन्न है साकेत का गृह चित्र॥

हरिऔध जी की भाँति गुप्तजी भी आधुनिक युग की बौद्धिकता से स्वाभाविक ही प्रभावित हुए हैं और इसीलिए धार्मिक भावनाओं की प्रधानता होते हुए भी गुप्तजी के राम तुलसी की अपेक्षा लौकिक अधिक हैं और 'साकेत' में तो राम को एक आदर्श समाज सेवक के रूप में ही चित्रित किया गया है तथा वे "परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृतम्" नामक उक्ति को पूर्ण रूप से चरितार्थ भी करते हैं। 'साकेत' के राम समाज सेवा के विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

निज रक्षा का अधिकार रहे जन जन को।
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं।
जो विश्व विकल बलहीन दीन शापित हैं॥
हो जाय अभय वे जिन्हें कि भय शासित हैं।
जो कौणपकुल से मूक सदृश शासित हैं॥

साथ ही राम स्वर्ग या मुक्ति का सन्देश लेकर नहीं आए थे बल्कि इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने के आए थे—

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥

हरिऔध जी ने जिस प्रकार 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण को एक महापुरुष या महात्मा के रूप में चित्रित किया है उसी प्रकार 'वैदेही बनवास' नामक ग्रन्थ में राम को भी मानवता की महान विभूति माना है। उन्होंने वैदेही बनवास की भूमिका के ६वें पृष्ठ पर लिखा भी है—"महाराज रामचंद्र मर्यादा पुरुषोत्तम लोकोत्तर चरित और आदर्श नरेन्द्र अथच महीपाल हैं, श्रीमती जननंदिनी सती शिरोमणी और लोक पूज्या आर्य बाला हैं। इनका आदर्श आर्य संस्कृति का सर्वस्व है, मानवता की महान विभूति है, और है स्वर्गीय-संपत्ति-सम्पन्न। इसलिये इस ग्रन्थ में इसी रूप में इसका निरूपण हुआ है। सामयिकता पर दृष्टि रखकर इस ग्रन्थ की रचना हुई है। अतएव इसे बोधगम्य और बुद्धि संगत बनाने की चेष्टा की गई है।" इन काव्य कृतियों के साथ साथ श्री रामचन्द्रोदय' 'काव्य, 'कोशल किशोर' और 'साकेत सन्त' आदि उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थों का उल्लेख भी राम-काव्य की परम्परा में परमावश्यक है जिनमें राम-काव्य का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक युग में यद्यपि साहित्य विभिन्न विभिन्न वादों से प्रभावित सा होता रहा है परन्तु राम काव्य की परम्परा उसी प्रकार अक्षुण्ण बनी हुई हैं और निराला जी की कविता 'राम की शक्ति पूजा' तो उल्लेखनीय कृति है। हाल ही में ब्रजभाषा में श्री हरदयालु सिंह का 'रावण' नामक महाकाव्य भी प्रकाशित हुआ है जो कि हिंदी साहित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के महाकाव्यों के अंतर्गत अपना विशेष स्थान रखता है। आशा है भविष्य में भी रामकाव्य की यह परम्परा अक्षुण्ण बना रहेगी।

कालिदास का सौन्दर्य-वर्णन

अँग्रेजी के प्रसिद्ध कवि इमर्सन ने (R.W. EMERSON) सौन्दर्य का महत्व इन शब्दों में व्यक्त किय है।

Rhodora if the sages ask thee why
This charm is wasted on the earth and sky!
Tell them, dear, that if eyes are made for seeing
Then beauty is its own excuse for being

अर्थात् यदि संतजन पूछें कि सौन्दर्य, धरती और आकाश में व्यर्थ क्यों बिखेर दिया गया है, तो मेरी प्रिय उन्हें कहो कि यदि आँखें देखने के हेतु बनी हैं, तो सौन्दर्य भी उन्हा के लिये बना है।

कविता का राज्य सौन्दर्य है और सत्य कहा जाये तो कविता सौन्दर्य का ही मूर्तिमान रूप है। कला का प्रधान गुण सौन्दर्य ही माना जाता है और वह नूतन सौन्दर्य की सृष्टि भी करती है। सौन्दर्य बाह्यजगत् और आभ्यंतरिक जगत् दोनों में पाया जाता है। बाह्यजगत वह जगत है, जो नेत्र आदि बाहरी इन्द्रियों द्वारा जाना जा सकता है। विचार पूर्वक देखा जाये तो बाह्यजगत् का अनुभूत ज्ञान ही कवि के अन्तर्जगत का मूल आधार है। कवि जहाँ नारी के अंग-प्रत्यंग का बाह्य सौन्दर्य वर्णन करते हैं, वहाँ उसके मानस के प्रेम एवं करुणा आदि आभ्यंतरिक भावनाओं का भी वर्णन करते हैं। एक मात्र बाह्य सौन्दर्य का ही वर्णन करने वाले भी कवि कहे जाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं; परन्तु वे कवि जो मनुष्य के मानसिक सौन्दर्य का भी वर्णन करते हैं, उनसे कहीं अधिक श्रेष्ठ कवि या महाकवि कहे जाते हैं।

कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। कोमलकांत पदावली प्रांजल और सुललित भाषा, मनो-हारिणी भावव्यंजना आदि गुणों के कारण कालिदास का कवित्व निखर उठा है। कालिदास विशेषतः सौन्दर्य के कवि हैं और सौन्दर्य वर्णन में कालिदास की प्रकृति-पर्यवेक्षणी शक्ति का परिचय मिलता है और वास्तव में श्री छन्नूलाल द्विवेदी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कालिदास और शेक्सपियर' में उचित ही लिखा है— "प्रकृति के अनन्त विस्तार की छाया कालिदास के काव्य में पड़ी हुई है। कालिदास का काव्य प्रकृति सौन्दर्य का अनन्त भंडार है। वहाँ किसी पदार्थ की कमी नहीं है। जो खोजेंगे वही मिलेगा।" (पृष्ठ ५६)

कवियों का प्रकृति वर्णन भी प्रायः उनकी भावनाओं और मनोवृत्तियों पर निर्भर रहता है। प्राकृतिक दृश्यों को कवियों ने उपदेश का साधन बनाकर भी चित्रित किया है। इस प्रकार के प्रकृति वर्णन में कवि अपने आत्मानुभव से काम लेता है। महर्षि व्यास के ऋतु-वर्णन में जहाँ काव्य कला का निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है, वहाँ उनसे गहन से गहन शिक्षा भी मिलती है। प्रकृति के साधारण से साधारण पदार्थों के स्वाभाविक चित्रण के साथ साथ अटल सत्य की अलौकिक शिक्षा भी मिलती है। गोस्वामी तुलसी दास ने भी महर्षि व्यास की प्रणाली अपनायी है। नीति कला का अद्भुत संगम इस प्रकार के प्राकृतिक वर्णनों में देख पड़ता है। कवियों ने प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों का प्रयोग अलंकारों के उदाहरणों के रूप में भी किया है। कवियों ने उपमाएँ प्रायः प्रकृति से ही ग्रहण की हैं और हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में तो इसी प्रकार का प्रकृति वर्णन किया जाता रहा है। कवि प्रकृति के परिवर्तनशील रूपों को भी अपनी विभिन्न शैलियों द्वारा वर्णन करता है। जन साधारण की अपेक्षा कवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के कथन में कुछ विशेषता ही होती है। सर्व साधारण के लिए लू चलना एक साधारण बात है। परन्तु कवि यह अनुमान करता है कि मानों बसंत के विरह में ग्रीष्म उसाँसे ले रहा है। बिहारी ने कहा भी है—

नाहिंन ये पावक प्रबल लुए चलति चहुँ पास।
मानहुँ बिरह बसंत के ग्रीषम लेति उसास ॥

कालिदास ने प्रकृति को भिन्न भिन्न रूपों में चित्रित किया है और उन्हें इस दिशा में अपूर्व सफलता मिली है। पाश्चात्य कवियों ने प्रकृति के नग्न रूप को प्रदर्शित करने में ही अपनी विशेषता समझी है और उनकी इस सावरण को निरावरण करने की प्रवृत्ति को आधुनिक हिन्दी कवियों ने भी ग्रहण किया है। परन्तु प्राचीन कवियों ने सुन्दर आलंकारिक ढंग से ही प्रकृति का चित्रण किया है। कालिदास ने कुमारसम्भव में हिमालय का इसी प्रकार वर्णन किया है और 'मेघदूत' में 'कैलास पर्वत' का भी आलंकारिक वर्णन किया गया है। जैसे—

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यःकृत्तद्विरद दशनच्छेद गौरस्य तस्य।
शोभामद्रेः स्तिमितनयन-प्रेक्षणीयां भवित्री—
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥

यक्ष, मेघ और कैलास पर्वत की तुलना कर रहा है। वह मेघ से कहता है कि तुम तो चिकने मले हुए अंजन के समान काले रंग के हो परन्तु कैलास पर्वत तुरंत काटे गये हाथी दाँत के टुकड़े की तरह श्वेत है। जब तुम कैलास की शोभा निहारने के हेतु खड़े होंगे तब उस कैलास पर्वत की सुषमा और भी अधिक बढ़ जायेगी। उस समय यही प्रतीत होगा मानो कन्धे पर नील वसन रखे हुए शुभ्र श्वेत शरीर वाले बलराम जी खड़े हों। कालिदास ने जल से परिपूर्ण मेघ को चिकने और खूब बारीक मले हुए अंजन के सदृश माना है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा कैलास पर्वत को तुरन्त ही काटे गये हाथी दाँत के टुकड़े की तरह श्वेत। उपमालंकार के योग से कैलास पर्वत का यह वर्णन बड़ा ही कवित्वमय हो गया है।

पर्वतों का वर्णन बायरन, शेली और वर्डस्वर्थ आदि पाश्चात्य कवियों ने तथा संस्कृत के माघ और भारवि जैसे प्रसिद्ध कवियों ने भी किया है। माघ ने रैवतक पर्वत को विशाल हाथी के रूप में चित्रित किया हैं, परन्तु कालिदास की सी कामनीयता उनके वर्णन में नहीं आ सकी। देखिये—

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा—
वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा—
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥

इसी प्रकार कालिदास ने 'रघुवंश' में गंगा-यमुना संगम का भी बड़ा ही सुन्दर अलंकारपूर्ण वर्णन किया है। श्री रामचन्द्र जी सीता के साथ पुष्पक विमान पर लंका से अयोध्या को लौटते हैं तथा मार्ग में गंगा-यमुना के संगम की शोभा निहार कर उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता होती है। वे सीता से कहते हैं—"प्रिये, गंगा और यमुना के संगम की शोभा तो देखो, किस प्रकार यमुना की वीचियों से गंगा का प्रवाह भिन्न दिखलायी दे रहा है। कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों गंगा इन्द्रनीलमणियों से जटित मुक्ताहार के सदृश है और कहीं-कहीं वह श्वेत सरोरुहों की माला के समान जान पड़ती है, जिसमें नील कमल भी गूँथ दिये गये हैं। मान-सरोवर-प्रेमी हंसों की पंक्ति भी दृष्टिगोचर हो रही है जिनमें नीले हंस भी उपस्थित हैं। अन्यत्र कालगुरु या नगर के चिह्नित पत्रों से सुशोभित श्वेत चन्दन की बनी हुई वसुधा के समान वह दिखाई दे रही है। कहीं वह छाया में छिपे हुए, घोर तिमिर से कालिमा ली हुई सुधाकर की प्रभा के समान जान पड़ती है। कहीं पर शरद् ऋतु के श्वेतवारिदों की रेखा भी देख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ती है, जिनके मध्य गगन के नीले प्रदेश स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कहीं काले-काले सर्पों का आभूषण पहने हुए और भस्म रमाये शंकर का शरीर ही देख पड़ता है।" कदाचित् इसी प्रकार के उदाहरणों के कारण "उपमा कालिदासस्य" नामक उक्ति प्रचलित हो गयी है। 'मेघदूत' में नर्मदा का और 'रघुवंश' में समुद्र का वर्णन भी इसी प्रकार कलापूर्ण देख पड़ता है।

प्राकृतिक सौंदर्य की सर्वश्रेष्ठ क्रीड़ाभूमि भारतवर्ष में वसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त और शिशिर नामक छः ऋतुएँ होती हैं। इन ऋतुओं में प्रकृति का अनूठा सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति के सुन्दर और हृदयग्राही इन सजीव चित्रों को चित्रित करने में कवियों की कविजनोचित कल्पना का पूर्ण प्राबल्य देख पड़ता है। संस्कृत साहित्य में प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों ने ऋतुवर्णन किया है। आदि-कवि-वाल्मीकि ने जहाँ प्रकृति के स्वच्छन्द रूप का चित्रण किया है, वहाँ महर्षि व्यास ने प्रकृति को उपदेश का साधन बना दिया है। कालिदास पर विशेष रूप से वाल्मीकि का ही प्रभाव पड़ा है। 'रघुवंश' के नवम सर्ग में वसंत का वर्णन करते समय उन्हें मन्द-मन्द मारुत द्वारा हिलाई गयी मल्लिका ऐसी प्रतीत होती है मानो कोई नर्तकी नृत्य कर रही है।

"श्रुति-सुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुम-कोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः॥"

कालिदास की अद्भुत कल्पना शक्ति का यह एक सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार एक स्थल पर उन्होंने वसंत को वीर के रूप में चित्रित किया है।—

प्रफुल्ल चूतांकुर तीक्ष्णसायको द्विरेफमाला विलसद्धनुर्गुणः।
मनांसि वेद्धुं सुरत-प्रसङ्गिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये॥

रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि मतिराम ने भी अपने एक सवैये में इस श्लोक के भावों को अपनाया है। 'कुमार सम्भव' के तृतीय सर्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में कालिदास ने हिमालय के गिरिवन में ऋतुराज वसन्त का किस प्रकार विकास हुआ इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। ग्रीष्म और पावस का सुन्दर वर्णन 'ऋतु संहार' में भी दृष्टिगोचर होता है। उत्तम भाषा की सर्वप्रधान विशेषता यह है कि वह सर्वत्र ही भावानुकूल हो। कालिदास की भाषा में यह विशेषता विशेष रूप से देख पड़ती है। दावानल का वर्णन करते समय जैसी शब्द योजना उन्होंने की है वैसी वसंत के वर्णन में नहीं है। पावस को उन्होंने राजा के रूप में वर्णन किया है, जिसका कि वाहन मेघरूपी मतंग है, चपला जिसकी पताका है, वज्रनिर्घोष जिसकी जय टंकार है, जो कि कामीजनों को सर्वाधिक प्रिय है। देखिये—

शशीकराम्भोधरमत्त कुंजरस्तड़ित् पताकोऽशनि-शब्द-मर्दनः।
समागतो राजवदुन्नतध्वनिः घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये॥

पावस में बाह्य प्रकृति का अन्तर्जगत पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका भी चित्रण उन्होंने कुशलता से किया है। वसंत को वीर के रूप में, और पावस को राजा के रूप में जिस प्रकार चित्रित किया गया है, उसी प्रकार शरत् को नवविवाहिता रमणी के रूप में चित्रित किया है—

ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद् दधानार्द्रनखक्षताभम्
प्रसादयन्ती स कलंकमिन्दुं तापं रवेरभ्याधिकं चकार।

बाह्य जगत् जड़ और चेतन दो भागों में विभाजित किया जाता है। जड़ जगत् पुनः प्राकृतिक और कृत्रिम दो भागों में विभाजित किया गया है। प्राकृतिक जगत में जहाँ नदी और पर्वतों आदि का वर्णन किया जाता है वहाँ कृत्रिम जगत् के अन्तर्गत मन्दिरों और प्रसादों का वर्णन किया जाता है। कालिदास ने कल्पना और भावुकतापूर्ण वर्णन किया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के प्रथम अंक में तथा 'रघुवंश' के प्रथम सर्ग में तपोवन का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। कालिदास का अलका वर्णन, बाणभट्ट के उज्जैन वर्णन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माघ के द्वारिका वर्णन और मिल्टन के रोम वर्णन से कहीं अधिक वर्णन किया है उसी प्रकार शोचनीय विषादमयी ध्वंसावशेषों की दशा भी उन्होंने चित्रितको है। श्रेष्ठ है। कवियों ने जिस प्रकार किसी नगरी की शोभा और समृद्धिका 'रघुवंश' में रघु की राजधानी अयोध्या की शोचनीय दशा का विषादपूर्ण वर्णन बायरन के रोम के दुःखपूर्ण वर्णन के समान ही श्रेष्ठ है। किसी कवि का कथन है कि शोक में अतीत सुख की पूर्वस्मृति ही शोक की पराकाष्टा है। रघुवंश के इस वर्णन में यह उक्ति पूर्ण चरितार्थ हुई है।

चेतन जगत् के अन्तर्गत नर-नारी के सौन्दर्य वर्णन करने में भी कालिदास को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। शकुन्तला, पार्वती इन्दुमती, यक्षवनिता आदि का सौन्दर्य बड़ा ही कलापूर्ण है। एक आलोचक ने लिखा भी है— "कालिदास की नायिकाएँ अपूर्व सौन्दर्यमयी हैं।" विरह पीड़ित शकुन्तला का वर्णन करते समय कवि लिखता है कि शकुन्तला विरह से व्याकुल है। उसके स्तनों पर उशीर रखा है। कलाई में उसने जो मृणाल के आभूषण पहने थे वे भी शिथिल से हो गये हैं। परन्तु तो भी विरहावस्था में वह अपूर्व कांतिमयी दृष्टिगोचर हो रही है। ग्रीष्म से तपित कामिनी के शरीर में भी ऐसी कमनीयता नहीं आ सकती है, जैसी विरह से व्यथित युवती के शरीर में देखिये—

स्तन्य स्तोशीरं प्रशिथिलमृणालै कवलयं
प्रियायाः सावधं तदपि कमनीयं वयुरिदम्।
समस्तापः कामं मनसिज निदाघ प्रसरयो---
र्नतु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥

भवभूति ने भी उत्तररामचरित में विरहिणी सीता का वर्णन किया है:—

परिपाण्डु दुर्वल कलोल सुदरं
दधती विलोल कबरीक माननम्।
करुणस्य मूर्तिरिव वा शरीरिणी
विरह व्यथेव वनमेति जानकी ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारी सौन्दर्य के समान कालिदास ने 'कुमार सम्भव' में शंकर का, 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में दुष्यंत का और रघुवंश में दिलीप का सौन्दर्य वर्णन किया है। शक्सपियर और मिलटन को भी नर वर्णन में ऐसी सफलता प्राप्त न हो सकी। पाश्चात्य कवियों को इतर प्राणियों के चित्रण में विशेष गर्व रहा है, परन्तु कालिदास ने भी मृगों, शुकों और अश्व तथा सिंह का वर्णन किया है। इस प्रकार के बाह्यजगत् के चित्रण में वे पूर्व सफल प्रतीत होते हैं।

काव्य औ नाटकों में मानवीय भावों का पूर्ण दिग्दर्शन किया जाता है। जिस कवि ने मानवीय भावों का अच्छी तरह से मनन नहीं किया, वह काव्य सृजन में सफल भी नहीं हो सकता। नाटक भी दृश्य-काव्य कहे जाते हैं। अतएव नाटककारों को भी मानवीय भावों का सत्य-सत्य वर्णन उपस्थित करना चाहिये। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव मनुष्य के मानस में उदय होते हैं। एक मात्र कल्पना शक्ति से ही कवि समुचित भाव चित्रण नहीं कर सकता। इसके लिए उसे अनुभव की आवश्यकता होती है। कल्पना और अनुभूतियों के संयोग से कवित्व निखर उठता है। कल्पना और अनुभूति विहीन कविता में न तो रस का ही प्रादुर्भाव होता है और न वह पाठकों को ही आनन्द प्रदान कर पाती है। कल्पना और अनुभव के योग से कवि का सौन्दर्य वर्णन भी श्रेष्ठतम हो सकता है। वाह्यजगत के चित्रण में कवि चाहे कल्पना शक्ति से सहायता ले भी ले, पर अन्त-र्जगत के चित्रण में तो उसे अनुभव से ही काम लेना पड़ता है। वाह्यसौन्दर्य के साथ-साथ आभ्यंतरिक जगत् का भी वर्णन आवश्यक है बल्कि जैसा कि श्री द्विजेंद्रलाल राय ने 'कालिदास और भवभूति' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है—"वाह्य सौंदर्य के वर्णन की अपेक्षा भीतरी सौन्दर्य के वर्णन में कवि की अधिक कवित्व शक्ति प्रकट होती है।"

कालिदास ने अन्तर्जगत का सौन्दर्य भी अपने काव्यों और नाटकों में चित्रित किया है। शकुन्तला की प्रेमभावना, विदूषक की सरसता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्यन्त का विरह, प्रियम्वदा और अनुसूया का सख्यप्रेम, इन्दुमती के वियोग में अज का विलाप, रति की करुणा, पार्वती की लज्जा, प्रेम प्रवीण पुरुरवा और छलनामयी उर्वशी की मानसिक कोमल वृत्तियाँ, यक्षकी विरहावस्था आदि के चित्रण में कालिदास पूर्ण सफल रहे हैं। यक्ष मेघ से कहता है कि यद्यपि भाग्यवश मेरा अपनी पत्नी के साथ संयोग नहीं रहा, तब भी मानसिक विचारों से मेरा और उसका संयोग होता ही है। यक्ष वनिता के अत्यन्त कृश शरीर में मानसिक संकल्पों से ही वह (यक्ष) अपने कृश शरीर द्वारा प्रवेश करता है। देखिये—

अंगेनांगं प्र तनु तनुनां गाढ़तप्तेनतप्तं
सास्रेणाश्रु द्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठतेन।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दुरवर्ती
संकल्पस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः।

पाशविकता, दुराशा, द्वेष, क्रोध आदि भी मनके ही विषय हैं। अन्तर्जगत में इनका भी समावेश होता है। परन्तु कालिदास ने अन्तर्जगत उन्हीं मनोवृत्तियों का वर्णन किया है, जो सुन्दर हैं। सुकुमार, सुमधुर और सुन्दर मनोभावनाओं की ओर ही कवि ने दृष्टि फेरी है और मनुष्य के हृदय की सुन्दर भावनाओं का ही विश्लेषण किया है। न तो पाप का ही वीभत्स चित्र वे अपने काव्य में प्रस्तुत कर सके हैं और न श्मशान का ही। रूपेंद्रियों को जो भावनाएँ ग्राह्य थीं उन्हीं का वर्णन कालिदास ने किया है परन्तु शेक्सपियर ने पाशविकता, कामुकता, द्वेष, द्रोह, खलता, संदेह आदि प्रवृत्तियों को भी चित्रित किया है अतः अन्तर्जगत के चित्रण में उसे विशेष सफलता मिली है! मिरांडा, डेस्टिमोना, ओथेलो, इयागो, मैकबेथ, क्लाडियस, रिचर्ड, क्रेसिडा आदि के अन्तर्जगत की भावनाओं का जैसा चित्रण शेक्सपियर ने किया है, वैसी प्रवृत्तियों का वर्णन कालिदास ने कभी किया। कालिदास की कृतियों में प्रणय, विरह, उन्मत्तता, करुणा और सरसता आदि मनोवृत्तियों का ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकता है। चूँकि वह सौन्दर्य का पुजारी था इसलिए उसने उन्हीं मनोभावनाओं का चित्रण किया जो कि सुन्दर थीं असुन्दर भावनाओं की उसने निरी उपेक्षा ही की है, यहीं तक नहीं रघुवंश में ताड़का वध का वर्णन करते समय भी रूपक के सहयोग से उन्होंने सौन्दर्य लाने की ही चेष्टा की है—

रामसन्मथ शरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिर चंदनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥

वास्तव में कलिदास सौंदर्य का कवि है और उनका सौंदर्य वर्णन निस्सन्देह ही सराहनीय है।

हिन्दी गीतिकाव्य के विविध रूप

प्राचीन भारतीय आचर्यों ने काव्य को प्रबन्ध मुक्तक नामक दो प्रमुख विभागों में विभाजित किया है तथा प्रबन्ध काव्य के भी महा काव्य और खण्ड काव्य नामक दो प्रधान भेद माने हैं। अग्निपुराण की "मुक्तकं श्लोक वैकश्चमत्कारक्षम: सताम्" नामक उक्ति के अनुसार मुक्तक रचना उसे कहते हैं, जिसमें कि स्वयं ही रसोद्रेक करने की क्षमता हो। मुक्तक काव्य तारतम्य के बन्धन से सर्वथा मुक्त रहता है और अभिनव गुप्ताचार्य ने भी "पूर्वापर निरपेक्षायति येन रस चर्वणा क्रियते तन्मुक्तम्" लिखकर पूर्वापर प्रसंगों पद्यों का अवलम्ब न लेने पर भी जिसमें रस की अभिव्यक्ति हो सके उसे मुक्तक माना है। प्रवन्ध काव्य के सदृश मुक्तक काव्य में जीवन की अनेक रूपता या किसी एक ही रूप का विस्तृत चित्रण नहीं किया जाता बल्कि मन की किसी एक अनुभूति, भाव या कल्पना को अंकित किया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—"मुक्तक में प्रबन्ध के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिये खिल उठती है। यदि प्रवन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से वह सभा समाज के लिये अधिक उपयुक्त होता है उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिये मंत्रमुग्ध सा हो जाता है।"

मुक्तक के साधारणत: पाठ्य और गेय नामक दो भेद माने जाते हैं, परन्तु इन दोनों के मध्य की विभाजन रेखा अति सूक्ष्म और अस्थिर है, क्योंकि पाठ्यवस्तु भी कभी-कभी गेय हो सकती है और इस प्रकार यह भेद अध्ययन की दृष्टि से चाहे उचित हो, परन्तु उसे युक्तिसंगत तो माना ही नहीं जा सकता। मुक्तक गेय में भावावेश की आत्माभिव्यक्ति और संगीतात्मकता की प्रधानता रहती है तथा उन्हें गीतिकाव्य या प्रगतिकाव्य कहा जाता है अंग्रेजो में तो उन्हें 'लीरिक' (Lyric) कह कर सम्बोधित किया जाता है। डा० श्यामसुन्दरदास ने गीतिकाव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है—"गीतिकाव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करता है और बाह्य जगत को अपने अन्त:करण में ले जाकर उसे अपने भावों से रंजित करता है।" प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हीगेल ने गीतिकाव्य के सृजन के लिये एक विशेष चित्तवृत्ति (Lyric mood) को आवश्यक माना है तथा इच्छा, विचार और भाव को उसका आधार माना है। आत्माभिव्यक्ति और कल्पना की प्रधानता के कारण गीतिकाव्य काव्य के अन्य अंगों से भिन्न सा हो गया है तथा हरबर्ट रीड का तो यही मत है कि गीत का मूल अर्थ विलुप्त ही हो गया है और अब वह केवल भावात्मक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य का कोई भिन्न भाग ही नहीं था, क्योंकि काव्य स्वयं ही गेय होता था परन्तु पाश्चात्य समीक्षकों ने गीतिकाव्य की स्वतन्त्र सत्ता भी स्वीकार की है। इसीलिये हिन्दी साहित्य के कुछ आधुनिक आलोचकों ने गीत और प्रगीत में अन्तर भी माना है तथा उनका विचार है कि गीत की अपेक्षा प्रगीत में कवि का व्यक्तित्व विशेष रूप से अभिव्यक्त होता है। श्री नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में—"प्रगीतकाव्य के कवि की भावना का पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसमें किसी प्रकार में विजातीय द्रव्य के लिये स्थान नहीं रहता। प्रगीतो में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है। वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यंजना होती है।" परन्तु वास्तव में प्रगीतों को गीतिकाव्य का ही एक अंग समझना चाहिये। गीतिकाव्य में आत्मभिव्यक्ति, संक्षिप्तता भावावेश और कोमलकान्त-पदावली के साथ साथ संगीतात्मकता भी परमावश्यकीय है। गीतिकाव्य में शब्द साधना के साथ-साथ स्वरसाधना भी आवश्यक मानी जाती और श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा भी है—"गीतिकाव्य का क्षेत्र यद्यपि संगीतात्मक कविता तक ही सीमित नहीं, क्योंकि जहाँ भाव है वहां स्वत: संगीत है, किन्तु 'गीतिकाव्य' अपने स्वतंत्र अर्थ में काव्य कला और संगीतकला का संयोजक है।" इस प्रकार गीति-काव्य में रागात्मकता को आवश्यक माना जाता है।

गीतों को प्रधानता: लोकगीति या लौकिक-गीत तथा साहित्यिक गीत नामक दो भागों में विभाजित किया जाता है। डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों में—"लौकिक गीत वे हैं जिनमें साहित्य के अंगों का विशेष ध्यान नहीं रखा गया और जो स्वच्छन्द रूप से किसी भाव या स्थिति को व्यक्त करने में प्रवृत्त दिखायी देते। ये लौकिक गीत वे हैं, जिन्हें नागर लोग 'ग्राम्यगीत' कहते हैं।" लोकगीतों का प्रचलन तो जन समुदाय में आदिकाल से होता चला आ रहा है और उनका सम्बन्ध विशेषकर सामाजिक रीति-रिवाजों से या उत्सवों से रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन गीतों का कलापक्ष चाहे उतना सुघर न रहता हो और उनमें व वित्व की अधिकता भी न रहती हो, किन्तु भाव प्रकाशन की स्वाभाविकता और हृदयस्पर्शिता उनमें विशेष रूप से देख पड़ती है। लोकगीतों में मानव-जीवन की सुषमा और छाया भी प्रतिबिंबित हुई है। साहित्यिक गीतों में विशेषकर आत्मकल्याण तथा भक्ति और प्रेम की भावनाएँ विशेषरूप से चित्रित की जाती है तथा उनमें राग-रागनियों को भी प्रधानता दी जाती है। इन गीतों को या तो किसी कथा पर आश्रित अथवा शुद्ध संवेदनात्मक नामक दो भागों में विभाजित किया जा सकता है वस्तुत: साहित्यिक गीतों का उद्भव लोक गीतों से ही हुआ है, क्योंकि आधुनिक हिंदी साहित्य के बहुत से प्रारम्भिक गीत ग्रामगीतों से प्रभावित जान पड़ते हैं। आधुनिक हिंदी गीतकाव्य पर लावनी, कव्वाली, कजली, विरहा इत्यादि का प्रभाव तो विशेष रूप से पड़ा ही तथा कवियों ने स्वयं भी कजली, ठुमरी, दादरा, होली और गजल इत्यादि की भी रचना की। श्री माधव शुक्ल की भारत गीतांजलि की एक कजली देखिये—

कालो छाय रही अँधियारी, घर में आन घुसे हैं चोर।
बरसे मेंह, दामिनी, दमकै चढ़ी घटा घनघोर।
बरसत हाय हमारी सम्पति नासत सबै बटोर.......इत्यादि

वर्गीकरण के आधार की विविधता को देखते हुए हिन्दी गीति-काव्य के कई भिन्न भेद माने जा सकते हैं, किन्तु जाति, राष्ट्र भाषा और आकार का आधार न लेकर काव्यगत भाव और शैली की दृष्टि से ही उसका विभाजन उचित होगा। मानव हृदय का भावावेश किसी भी प्रकार सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता और वह तो किसी न किसी भाँति विविध रूपों में अभिव्यक्त होता ही है, अत: स्वाभाविक ही हिंदी गीतिकाव्य के विविध रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं। अंग्रेज़ी साहित्य में तो गीतिकाव्य के विविध रूपों का बड़ा ही सुन्दर और सूक्ष्म वर्गीकरण किया गया है तथा (१) (Sonnet) (२) ओड (Ode) (३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐलिजी (Elegy) (४) डिडेक्ट (Didact) (५) सेटाइर (Satire) (६) रिफ्लेक्टिव (Reflective) नामक ६ भेद माने जाते हैं। हिंदी गीतिकाव्य में न तो अंग्रेजी 'लिरिक' के नियमों को और न उसके इस वर्गीकरण को ही अक्षरशः उसी रूप में स्वीकार-किया गया है, परन्तु यह अवश्य है कि सूक्ष्मावलोकन से उसमें भी गीतों के ये उपर्युक्त विभिन्न रूप अवश्य दृष्टिगोचर होंगे। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विविध रूप भी हिंदी गीतिकाव्य में देख पड़ते हैं। समीक्षकों ने हिंदी गीतकाव्य का वर्गीकरण आकार और चित्तवृत्ति के आधार पर ही करना उचित समझा है अतः हम उसका वर्गीकरण इस प्रकार से कर सकते— (१) व्यंग गीत (२) शोक-गीत (३) सामाजिक-गीत (४) प्रेम गीत (५) संबोध-गीत (६) पत्र-गीत (७) वीर-गीत (८) गीति नाट्य और (९) सानेट।

व्यंग्य गीत को ही अंग्रेजी में Satire कहते हैं और व्यंग्य गीतिकाव्य की भाँति व्यंग्य प्रबन्धकाव्य भी लिखे जाते हैं। व्यंग्य गीतों में राष्ट्र, जाति और साहित्य का वास्तविक वर्णन किया जाता है तथा उपालम्भों का भी चित्रण होता है। हिंदी गीतिकाव्य में व्यंग्य गीतों की संख्या बहुत ही कम है और उनमें चाहे कवित्व का समुचित विकास न भी हो सका हो, किन्तु हास्य की मधुर झलक अवश्य देख पड़ती है। संत साहित्य में व्यंग्य गीतों के कई सजीवतापूर्ण उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं तथा कबीर की व्यंग्यपूर्ण सूक्तियाँ तो बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। सूर के भ्रमरगीतों में उपालम्भ के रूप में भी व्यंग्य की मधुर झलक दृष्टिगोचर होती है। वियोग रूपी उन्माद में प्रियतम के प्रति उपालम्भ व्यक्त करना स्वाभाविक ही जान पड़ता है, क्योंकि विरहावस्था में प्रिय की रूप माधुरी की स्मृति होते ही और अपनी विरह वेदना का ध्यान आते ही स्वाभाविक ही उपलाम्भों द्वारा उसकी भर्त्सना करने की इच्छा होती है। सूर सागर के निम्नांकित पद में कितना सुन्दर उपालम्भ है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्याम विनोदी रे मधुबनियाँ
अब हरि गोकुल काहे लो आवहिं चाहत नव यौवनियाँ ॥
दिना चारतें पहिरन सीखे पट पीताम्बर तनियाँ ।
सूरदास प्रभु तजो कामरी अब हरि भये चिकनियाँ ॥

इस प्रकार का व्यंग्य शिष्ट व्यंग्य के अन्तर्गत ही आता है और उसमें स्मित हास्य का ही आविर्भाव हो पाता है। तुलसी ने भी इसी प्रकार के कुछ मधुर व्यंग्य-गीतों की रचना की है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु, नाथूराम शर्मा 'शंकर', सनेही और मैथिलीशरण गुप्त ने भी कुछ व्यंग्य गीतों का सृजन किया है। प्रसाद जी के आँसू में भी कहीं–कहीं व्यंग्य की झलक देख पड़ती है, परन्तु विरह की तीव्रता से वह मन्द सी पड़ गयी है। एक उदाहरण देखिये, जिसमें प्रियतम के प्रति उपालम्भ व्यक्त किया गया है—

रो रोकर सिसक सिसक कर
कहता मैं करुण—कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी

प्रगतिवाद से प्रभावित हो निराला ने भी कुछ गीत ऐसे लिखे हैं जिनमें कि शुद्ध व्यंग्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक उदाहरण देखिये—

गर्म पकौड़ी —
ऐ गर्म पकौड़ी,
तेल की भुनी
नमक मिर्च की मिली,
ऐ गर्म पकौड़ी
मेरी जीभ जल गयी,
सिसकियाँ निकल रहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लारकी बूंदें कितनी टपकीं
पर डाढ़ तले तुझे दबा ही रखा मैंने
कंजूस ने ज्यों कौड़ी—
ऐ गर्म पकौड़ी। इत्यादि

शोक गीत को अंग्रेजी में ऐलिजी (Elegy) कहते हैं परन्तु अँग्रेजी शोकगीतों की अपेक्षा हिन्दी शोकगीतों में कुछ भिन्नता भी है। हिन्दी साहित्य की अपेक्षा उर्दू फारसी में उनकी बहुलता है। अँग्रेजी कवि 'ग्रे' की प्रसिद्ध एलिजी का रूपान्तर 'ग्रामीण विलाप' के नाम से श्री कामता प्रसाद गुप्त द्वारा किया जा चुका है तथा मिश्र बन्धुओं का 'हा काशी प्रकाश और निराला की 'सरोज स्मृति' नामक कविताएँ शोकगीतों के ही अन्तर्गत आती है। यद्यपि शोकगीतों में करुण रस की ही प्रधानता रहती है, परन्तु हिन्दी साहित्य के शोकगीतों में निजी, प्रेम विरह और क्षोभ की भावनाएँ भी चित्रित की जाती हैं तथा कभी कभी देश तथा जाति की दुर्दशा या किसी महापुरुष के निधन पर भी करुणापूर्ण उद्‌गार अभिव्यक्त किये जाते हैं। प्रसाद जी का 'आँसू' एक उत्कृष्ट शोक गीति काव्य है तथा श्री इलाचन्द्र जोशी के शब्दों में—"प्रसाद जी की आँसुओं की पंक्तियों ने हिन्दी जगत को प्रथम बार उस वेदनावाद की मादकता से विभोर किया जिससे बाद में सारा छायावादी युग मतवाला हो उठा था। वेदना की भयंकर बाढ़ में सारे युग को परिप्लावित कर देने की जैसी क्षमता प्रसाद जी के इन आँसुओं में रही है, वह हमारे साहित्य के इतिहास में वास्तव में अतुलनीय है।" कवि ने 'आँसू' में प्रारम्भ में ही अपनी मानसिक व्यथा की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

इस करुणा कलित हृदय में
क्यों बिकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानस सागर के तटपर
क्यों लोल लहर की घातें
कल-कल ध्वनि से हैं कहतीं
कुछ विस्मृत बीता बातें

और उसने स्वयं भी ही अपने प्रश्न का उत्तर भी दे दिया है—

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छायी।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आयी॥

और फिर आँसू में विरह तथा स्मृति का करुणापूर्ण चित्रण करते हुए वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विश्व में सुख और दुःख दोनों का ही आविर्भाव हुआ करता है तथा दुःख और पीड़ा के होते हुए भी मिलनरूपी आशा ही मनुष्य को जीवित रखती है। इस प्रकार सुख और दुःख दोनों का सम्मिलन स्वाभाविक ही है—

मानव जीवन वेदी पर, परिणय हो विरह मिलन का।
दुःख सुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का मनका॥

प्रसाद जी के नाटकीय गीतों में भी शोकगीतों के कई उदाहरण मिलते हैं तथा पंत, बच्चन और महादेवी ने भी विरहपूर्ण भावनाओं की प्रधानता रखते हुए कई शोक गीतों की रचना की है। श्रीमती महादेवी वर्मा को दुःख से स्वाभाविक ही प्रेम है तथा उन्होंने 'रश्मि' की भूमिका में लिखा भा है—"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं रह सकता।" वे अपनी ही पीड़ा से नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व की पीड़ा से विकल हो कह उठती हैं—

मेरे हँसते अधर नहीं,
जग की आँसू लाड़ियाँ देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियाँ देखो ।

गुप्त जी की साकेत, यशोधरा और कुणाल गीत में भी कुछ शोक गीत दृष्टिगोचर होते हैं। हिंदी शोक गीतों में भावावेश की तीव्रता और आत्माभिव्यक्ति की पूर्णता विशेष रूप से देख पड़ती है। रवीन्द्र के 'स्मरण' नामक कविता संग्रह में भी कई करुणासिक्त गीत दृष्टिगोचर होते हैं। पत्नी के निधन के उपरान्त लिखे गये कुछ गीतों में अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी करुणापूर्ण भावों की अभिव्यक्ति उन्होंने की है कुछ पंक्तियाँ देखिये—

तुमि मोर जीवनेर माझे
मिशायेछो मृत्युर माधुरी
चिर बिदायेर आभा दिया
राङ्गये गिये छे मोर हिया

सामाजिक गीतों के कई रूप होते हैं। किसी वर्ग विशेष की भावनाओं के चित्रण के साथ-साथ उत्सवों, धार्मिक संस्कारों तथा अन्य इसी प्रकार के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीत सामाजिक गीत ही माने जाते हैं। कबीर, दादू, सुन्दरदास आदि सन्तों के अध्यात्मिक रहस्यवादी गीत भी सामाजिक गीत ही माने जायेंगे तथा सूर, तुलसी और मीरा के भी धार्मिक भावनाओं का प्राधान्य रखने वाले गीत इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। नृत्य गीत भी वस्तुत: सामाजिक गीतों के ही एक अंग के समान हैं तथा राष्ट्रीय कविताएँ भी इसी श्रेणी में आती हैं। इस प्रकार सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, नवीन तथा दिनकर के कुछ राष्ट्रीय गीत सामाजिक गीतों के उत्कृष्टतम उदाहरण माने जा सकते हैं। सामाजिक गीतों में कवि पाठकों तथा श्रोताओं को समाज सुधार के लिये भी प्रेरणा देता है। पंतजी ने तो मानव जीवन की वर्तमान दशा के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए प्राचीन सामाजिक व्यवस्था नष्ट कर नवीनता का आवि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव करने की आकांक्षा व्यक्त की है, जो कि नवजीवन के हेतु उपयुक्त नहीं है, उसके प्रति उनके विचार हैं—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन ।

अतएव वे चाहते हैं कि मानव प्राचीन युग की रूढ़ियों को नष्ट-भ्रष्ट करे—

गर्जन कर मानव केसरि !
प्रखर नखर नव-जीवन की लालसा गड़ाकर
छिन्न भिन्न कर दे गतयुग के शव को दुर्धर

विचारात्मक और उपदेशात्मक गीत भी वस्तुत: सामाजिक गीतों के अन्तर्गत ही आते हैं तथा प्रगतिवादी काव्यधारा में भी बहुत से सामाजिक गीतों का सृजन हुआ है। बंगाल के अकाल के संबंध में श्री केदारनाथ अग्रवाल ने बड़े ही करुणापूर्ण उद्‌गार अंकित किये हैं—

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर
धर्म धीरज प्राण खोकर
हो रही अनरीत बर्बर
राष्ट्र सारा देखता है
बाप बेटा बेचता है
मा अचेतन हो रही है
मूर्च्छना में रो रही है
दंभ के निर्भय चरण पर
प्रेम माथा टेकता है,
बाप बेटा बेचता है ।

सौंदर्य और प्रेम तो प्राय: काव्य के सर्वदा ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय माने जाते रहे हैं। इस प्रकार प्रेम गीत को ही गीतिकाव्य का सर्वाधिक प्राचीन रूप माना जाना चाहिये। प्रेम गीतों में प्रेम के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का चित्रण किया जाता है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वस्तुत: प्रेम गीतों के अन्तर्गत ही आते हैं। सृष्टि के अणु अणु में व्याप्त प्रेम रस की सुधामयी सुमधुर अविरल धारा को प्रवाहित करना ही विश्व के सभी महान कवियों का ध्येय रहा है। प्रेम गीतों की आभ्यंतरिकता भी विशेष रूपसे सराहनोय है क्योंकि आभ्यंतरिकता के समावेश से गीतिकाव्य में कवि की अंत: प्रवृत्ति और चित्तवृत्ति के अनुसार विभिन्न भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं। जयदेव का गीत गोविंद वस्तुत: प्रेमगीत ही है तथा हिंदी साहित्य में भी विद्यापति, सूरदास, मीरा, भारतेन्दु, सत्यनारायण कविरत्न, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, आरसी प्रसाद सिंह, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अचल ने श्रेष्ठतम प्रेम गीतों की रचना की है। अंचल ने विशेष रूप से यौवन के उन्माद का चित्रण करने में ही सफलता पायी है और उनके प्रेम गीतों में रूपासक्ति के साथ-साथ प्रेम की तीव्रतम ज्वाला भी धधक उठती है। उनके प्रेम गीतों में प्रेमकी विह्वल तरंगे, प्रगति की प्रेरणा और जीवन के सुख-दु:ख की यथार्थ अभिव्यक्ति एक साथ झलक उठती है। तारुण्य हृदय की प्रेम तरंगों का उत्तेजनापूर्ण चित्रण कहीं कहीं बड़ा ही हृदयग्राही बन पड़ा है—

चांदनी में आज केवल,
चाँद की बात करो।

प्रेम की मधु झील के तट पर मिले हम आज फिर,
उग रहे आकाश को भरते हुए तारक शिशिर—
आज ओ मधु वर्षिणी! आये दृगों में स्वप्नथिर!
चाँदनो में आज केवल,
चाँद की बातें करो!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लग रही कटिकी तुम्हारी किंकिणी पयधारसी
कंकणों से उठ रही सित मन्त्रिता झनकारसी
कनक बेसरके नगों को ज्योति पारावारसी
चाँदनी में आज केवल.....................

प्रेम गीतों में संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोगपक्ष की ही प्रधानता देख पड़ती है तथा कहीं-कहीं वेदना की प्रबलता के कारण विरह गीत शोक गीतों की समकक्षता कर बैठते हैं और इस प्रकार उन दोनों में विभिन्नता अंकित करना एक दुस्तर कार्य हो जाता है। कबीर और रवीन्द्र को प्रेम लीला तो वास्तव में उनकी भक्ति साधना की ही केन्द्रबिन्दु है। कबीर की भक्तरूपी अभिसारिका आरती सजाकर प्रिय के अन्वेषण को निकल पड़ती है और प्रेमरस की धारा से उसकी चूनरी भीजती रहती है—

भीजे चुनरिया प्रेमरस बूंदन।
आरती साजकै चली है सुहागिनी,
प्रिय अपने को ढूँढन।

रवीन्द्र की भक्तरूपी प्रेयसी की पिपासा शमन करने के हेतु तो स्वयं हृदयेश ही उसके समीप आते हैं—

ओह अन्तरतम.
मिटंछे कि तब सफल तियाव,
असि अन्तर मम।

इसी प्रकार डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"कबीर के प्रेम का जो आदर्श है वह कविवर रवीन्द्रनाथ के प्रेम लीला के आदर्श से मिलता सा है। रवीन्द्रनाथ ने बहुत अधिक सरस और कवित्वपूर्ण भंगी में जिस प्रेम लीला को व्यक्त किया है, उसे कबीर ने सरल, फक्कड़ाना और अर्थपूर्ण भाषा में व्यक्त किया है।" आधुनिक हिन्दी साहित्य के छायावादी गीत] भी विशेषत: प्रेमगीत ही हैं, क्योंकि उनमें अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों का ही चित्रण विशेष रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से होता है। प्राचीन रहस्यवादी कवियों की भाँति आधुनिक हिन्दी कवियों ने भी आध्यात्मिक विरह मिलन के गीत लिखे हैं, जिनमें कि मिलन की अपेक्षा विरह दशा का ही अनुभूतिपूर्ण चित्रण किया गया है। श्रीमती महादेवी वर्मा को विरह में ही संयोग की अपेक्षा अधिक तन्मयता प्रतीत होती है और 'हो गयी मैं आराध्यमय विरह की आराधना से—"विरह ही उनके लिये संयोग और वियोग दोनों है।

पत्र गीत जिसे कि अँग्रेजी में Epistes कहते हैं, हिन्दी में बहुत ही सीमित संख्या में लिखे गये हैं। पत्र गीतों में पत्र के रूप में कविता लिखी जाती है और उनमें आभ्यन्तरिकता अवश्य होती है तथा भावात्मकता भी देख पड़ती है, किन्तु उनकी शैली के विशेष रूप से वर्णनात्मक होने के कारण उनमें रस विशेष के संनिवेश की अपेक्षा उक्ति वैचित्र्य की ही मात्रा विशेष रूप से रहती है। कदाचित इसीलिये आंग्ल आलोचक हडसन ने तो पत्र गीतों को गीतकाव्य के अन्तर्गत नहीं माना है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की पत्रावली वस्तुत: पत्र गीत के अन्तर्गत ही मानी जाती है।

सम्बोध गीत को अंगरेजी में Ode कहते हैं तथा डा० श्रीकृष्ण-लाल के शब्दों में—"इनमें कवि किसी वस्तु विशेष को सम्बोधन करके उसके सम्बन्ध में अपने विचारों, और भावों, चित्रों और कल्पनाओं की व्यंजन करते हैं। इसमें कवि किसी प्राकृतिक वस्तु, किसी भाव और विचार अथवा किसी दृश्य को भी सम्बोधन कर सकता है।" सम्बोध गीत के अन्तर्गत प्राय: किसी दृश्य विशेष या वस्तु के अवलोकन से जो विचार और भाव या कल्पना और चित्र हृदय अथवा मस्तिष्क में उठते हैं, उनकी अभिव्यक्ति की जाती है। आधुनिक हिन्दी काव्य में सम्बोध गीतों की संख्या बहुत अधिक है तथा प्रसाद के किरण, रूप, वसन्त, विषाद और दीप; निराला के यमुना के प्रति, वासन्ती, वसन्त, समीर, भिक्षुक, सन्ध्यासुन्दरी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जूही की कली, शेफालिका, तथा पन्त के आँसू वीचिविलास, अनंग, स्वप्न शिशु छाया और परिवर्तन हिन्दी साहित्य के उत्कृष्टतम सम्बोध गीत हैं। सम्बोध गीतों में कवि अपनी कल्पना शक्ति का विशेष रूप से अवलम्ब लेता है और इस प्रकार वह एक ऐसी सृष्टि को चित्रित करता है जिसके उपादान भाव और भाषा सांसारिक उपादान भाव और भाषा से बिलकुल ही अभिन्न रहते हैं। कवि की यह सृष्टि इतनी अधिक सुन्दर होती है तथा उसमें विविध गुणों की इतनी अधिक बहुलता रहती है कि बाह्य सृष्टि के सदृश उसकी सत्वता को भी स्वीकार ही करनी पड़ती है। सम्बोध गीतों में कभी-कभी प्राकृतिक वस्तुएँ अपनी कथा अपने भाव और विचार तथा अपनी सुन्दरता आदि का वर्णन स्वयं ही आत्मकथा के रूप में करती हैं। पन्त जी के बादल तथा श्री गुरुभक्त सिंह की 'ओस' उसी प्रकार के सम्बोध गीत हैं। सम्बोध गीतों में जब अतीत के गौरवपूर्ण दृश्य स्मरण किये जाते हैं तब उनकी मर्मस्पर्शिता और भी अधिक बढ़ जाती है। 'यमुना के प्रति' नामक कविता में निराला ने उन विगत दिवसों को स्मरण किया है, जब कि श्रीकृष्ण यमुना के तटपर गोपियों के साथ रासलीला किया करते थे और इस प्रकार कवि ने यमुना और वृन्दावन के अतीत कालीन चित्रों को अंकित किया है—

यमुने तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान
पथिक प्रिया सी जगा रही है
किस अतीत के गौरव गान

वीर गीत को युद्ध गीत भी कहते हैं तथा योरपीय साहित्य में उन्हें (Ballads) कहा जाता है। वीर गीत वस्तुतः प्रबन्ध काव्य या आख्यानक गीत के अन्तर्गत माना जा सकता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल में गीतिकाव्य के अनुकूल वातावरण न होते हुए भी वीसल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव रासो और आल्हाखण्ड जैसे वीरगीत लिखे गये हैं। वीसलदेव रासो की रचना यद्यपि वीर गाथा काल में हुई है, परन्तु उसमें वीररस की अपेक्षा शृंगार रस की ही प्रधानता है। आल्हा खण्ड तो अब अपने मूल रूप में कहीं भी उपलब्ध नहीं है तथा उसका सर्वप्रथम संग्रह सं० १८६५ में फरुखाबाद के तत्कालीन कलेक्टर इलियट ने कराया था। पाँच सौ वर्ष से भी अधिक मौखिक रहने के कारण कालानुसार उसकी कथा, भाषा और वस्तु वर्णन में परिवर्तन होता चला गया। कदाचित वीर पूजा की भावना से ही वीर गीतों की रचना की गयी है और इस प्रकार प्राचीन महाकाव्यों का विकास भी वीर गीतों द्वारा ही माना जाता है। आधुनिक हिंदी काव्य के कई राष्ट्रीय गीत भी वीर गीतों के अन्तर्गत, माने जाते हैं। दिनकर, नवीन, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सोहनलाल द्विवेदी तथा श्री सुभद्राकुमारी चौहान ने कई ओज पूर्ण वीर गीतों की रचना की है।

गीतिनाट्य वस्तुत: नाटकीय प्रणालीपर आधारित गीतिकाव्य को कहा जाता है। यों तो नाटक काव्य (Dramatic poetey) की परम्परा बहुत प्राचीन है तथा आधुनिक हिन्दी नाटकों में भी गीतों की बहुलता देख पड़ती है, परन्तु उन नाटकीय गीतों में और गीतिनाट्य में निभिन्नता सी रहती है गीतिनाट्य तो वास्तव में गीतिकाव्य का एक कलात्मक रूप ही है परन्तु नाटकीय गीत वस्तुत: गीति काव्य के ही अंग है गीति नाट्य को ही भावनाट्य भी कहते हैं, यद्यपि उनके समान भाव नाट्य में प्रारम्भ से अन्त तक रागात्मकता आवश्यक नहीं मानी जाती। श्री विनयमोहन शर्मा ने लिखा है—नीति नाट्य में गीतात्मकता के अतिरिक्त एक गुण और चाहिय। वह है नारी पात्रों का बाहुल्य; साथ ही उसमें प्रधानपात्र नारी होती है और उसका रस होता है रसराज शृंगार। रचना तन्त्र की दृष्टि से यही गीति या भावनाट्य कहलाता है।" गुप्त जी का अनघ, प्रसाद का करुणालय तथा महाराणा का महत्व, निराला का पंचवटी प्रसंग, श्री आनन्दी प्रसाद श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तव की झांकी तथा श्री उदयशंकर भट्ट की विश्वामित्र, मत्स्यगंधा और राधा आदि कृतियों वस्तुत: गीतिनाट्य या भावनाट्य के ही अंतर्गत मानी जाती है । इधर रेडियो द्वारा भी बहुत से गीतिनाट्य प्रसारित किये गये हैं जिनमें श्री गोपाल शर्मा के गीतिनाट्य विशेष उल्लेखनीय हैं। 'पंचवटी प्रसंग' में सूर्पनखा राम से कहती है—

धिक् है नराधम तुझे,
वंचके कहीं का शठ
विमुख किया तूने उसे
आई जो तेरे पास
चाव से
अर्पण करने के लिये जीवन—यौवन नवीन।

इसी प्रकार भट्ट जी की 'राधा' में राधा कृष्ण से कहती है—

चाहती, क्या चाहती हूँ, कुछ नहीं, पर चाहती हूँ ।
एक तुम हो, एक बश मैं सुनूँ सुनती रहूँ निशि—
दिवस, पल-पल पक्ष ऋतु, वर्ष, युग, कल्पान्त भी ।

सानेट तो वास्तव में योरोपीय साहित्य की ही देन है क्योंकि अंग्रेजी शासन के पूर्व भारत में इसका तनिक भी प्रचार न था । साथ ही वास्तविकता तो यह है कि हिन्दी गीतिकाव्य में सानेट का शुद्धतम रूप दृष्टिगोचर भी नहीं होता । हिंदी में जो चतुर्दशपदी गीत लिखे गये हैं वस्तुत: वे सानेट नहीं है बल्कि उसका एक अनुकरण मात्र है। कदाचित सानेट का प्रचार हिन्दी गीतिकाव्य में इसीलिए द्रुतगति से न हो सका क्योंकि वह हिन्दी की प्रकृति के पूर्ण रूप से अनुकूल नहीं है । श्री प्रभाकर माचवे को अवश्य सानेट की रचना में विशेष सफलता मिली है ।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो हिंदी गीतिकाव्य के अतिरिक्त और भी कुछ विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं । आधुनिकयुग वास्तवमें गीतिकाव्य का ही युग कहा जाता है, क्योंकि वैयक्तिक स्वातन्त्र्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की भावना के प्राधान्य से काव्य में भी निजी भावनाओं और अनुभूतियों का ही चित्रण विशेष रूप से होने लगा है तथा इस प्रकार हिंदी गीतिकाव्य निरंतर विकसित होता जा रहा है। ज्यों-ज्यों वह विकसित होता जाता है त्यों-त्यों उसमें शैलियों और भावों की विविधता भी आती जाती है और इसीलिये उसके विविध रूप भी दृष्टिगोचर होते हैं। अंगरेजी साहित्य में गीतिकाव्य के जो प्रकार प्रचलित हैं, वे तो हमारे हिन्दी गीतिकाव्य में देख पड़ते ही हैं तथा साथ ही साथ नूतन भावनाओं की प्रधानता होने से कुछ अन्य नवीन तम रूप भी झलक उठते हैं। आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में यथार्थवाद, छायावाद, रहस्यवाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद नामक विभिन्नवाद प्रचलित हैं अतः इन वादों से प्रभावित होने से हिंदी गीतिकाव्य के रूपों में विविधता का स्वाभाविक ही आविर्भाव हुआ है और इस प्रकार हिन्दी गीतिकाव्य अपनी सर्वांगीण उन्नति में पूर्णरूप से सफल रहा है।

साहित्य में गंगा

आर्य-धर्म के शैव, शक्ति और वैष्णव नामक तीनों प्रधान सम्प्रदायों में गंगा का महत्व समान रूप से पाया जाता है। वे सम्प्रदाय उतने ही प्राचीन हैं जितने की पुराण। इनमें एक दूसरे के प्रति स्पर्धा की भावना भी देख पड़ती है तथा प्रत्येक ही अपने को दूसरे मतावलम्बियों से श्रेष्ठ मानता है। देवी भागवत में जहाँ शक्ति के सामने और समस्त दूसरे देवता निम्न माने जाते हैं वहाँ ब्रह्मवैवर्त पुराण, विष्णु पुराण, जैसे वैष्णव पुराणों में विष्णु ही सब कुछ हैं। परन्तु गंगा का महत्व इन तीनों संप्रदायों में स्वीकार किया जाता है। यदि यह कहा जाय कि गंगा के तट पर आकर ये तीनों एक हो जाते हैं तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो कोई अत्युक्ति न होगी। जिस प्रकार देवी भागवत में गंगा के विषय में कहा गया है—

त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम्।

अर्थात्, तुम्हारा स्पर्श करनेवाली वायु से पवित्र हुए मानव मेरे लोक को प्राप्त होंगे। साथ ही—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादि कानि च।
जन्म संज्ञार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम्।

अर्थात्, तुम्हारा स्पर्श करनेवाली वायु से पवित्र हुए मानव मेरे लोक को प्राप्त होंगे। साथ ही—

उसी प्रकार ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी गंगा की महिमा स्वीकार करते हुए कहा गया है—

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

अर्थात्, जो सैकड़ों योजन दूर से भी गंगा, गगा बोलता है वह सब पापों से मुक्त होकर अंत में विष्णु रूप को प्राप्त होता है।

परन्तु इन पुराणों के पूर्व ही वेदों तक में गंगा का उल्लेख हो चुका था। देखिए—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं स च ता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥
—ऋग्वेद १०। ७५। ५

इस प्रकार गंगा वेदों तक में विराजमान है और भिन्न भिन्न अवतारों की उपासना के पूर्व ही गंगा की उपासना प्रारम्भ हो चुकी थी। वेद ही हमारे साहित्य के मूलस्रोत हैं अतएव वैदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक गंगा का महत्व किसी न किसी रूप में स्वीकार किया गया है। धार्मिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ साथ साहित्यिक दृष्टिकोण से भी गंगा का महत्व है। संस्कृत,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी, फारसी, बंगाली, गुजराती और कर्नाटकी आदि सभी भाषाओं के साहित्य में गंगा का महत्व वर्णन किया गया है।

संस्कृत कवियों का गंगा-वर्णन

संस्कृत के आदि कवि 'वाल्मीकि रामायण' में राम-वनवास के अवसार पर सत्रह श्लोकों में गंगा का सजीव चित्रण किया है। गंगा का रूपवर्णन करते समय आदि कवि ने बड़ी ही सुन्दर भाव-व्यंजना की है। वह लिखते हैं—"कहीं तो जल की टक्करों के रूप में अट्टहास के कारण गंगाजी उग्र प्रतीत होती हैं और कहीं कहीं फेनों के रूप में निर्मल हँसो हँस रही हैं। कहीं पर जल की वेणी और कहीं पर लहरों के घूमने के फलस्वरूप भँवर शोभायमान हो रहे हैं। प्रवाह की स्थिरता से कहीं पर गम्भीरता और कहीं पर वेग होने से आकुलता प्रतीत होती है। कहीं कहीं गम्भीर ध्वनि और कहीं कहीं भयानक अवाज सुनाई देती है।" देखिए:—

जलाघाताट्टहासोग्रां फेन निर्मलहासिनीम्
क्वचिद्वेणी कृत जलां क्वचिदावर्तशोभिताम् ॥
क्वचिन् स्तिमितगम्भीरां क्वचिद्वेगसमाकुलाम्
क्वचिदगंभीरनिर्घोषां क्वचिद् भैरवनिःस्वनाम् ॥

महर्षि व्यास ने 'महाभारत' में गंगा का वर्णन विशेषत: दो स्थलों पर किया है। प्रथम् तो आदिपर्व में शान्तनु की कथा का वर्णन करते समय और दूसरे वनपर्व में सगर पुत्रों के उद्धार के अवसर पर। कवित्व की दृष्टि से वनपर्ववाला वर्णन विशेष सुन्दर बन पड़ा है। गंगावतरण का इतना सुन्दर वर्णन बहुत कम कवियों ने किया है। गंगावतरण की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

ईशानं च स्थितं दृष्ट्वा गगनात्सहसा च्युता।
तां प्रच्युतामथो दृष्ट्वा देवाः सार्द्धं महर्षिभिः ॥
गन्धर्वोरगयक्षाश्च समाजग्मुर्दिदृक्षवः।
ततः पपात गगनाद्गंगा हिमवतः सुता ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समुद्धतमहावर्ता मीनग्राहसमाकुला ।
तां दधार हरो राजन् गंगा-गगन-मेखलाम् ॥
ललाटदेशे पतितां मालां मुक्तामयीमिव ।

अर्थात—"शंकर अपनी जटा फैलाकर खड़े हो गए। उन्हें खड़े देख व्योममंडल से अचानक गंगाजी गिरीं। अन्तरिक्ष से उन्हें गिरते देख उस दृश्य की सुषमा निहारने के हेतु देवगण, महर्षि, गंधर्व, सर्प, यक्ष आदि एकत्र हुए। गंगाजी में उस समय बड़े बड़े भँवर पड़ रहे थे। बहुत सी मछलियाँ और ग्राह बड़े जोरों की आवाज़ कर रहे थे। गगन की मेखला के सदृश प्रतीत होनेवाली गंगा को शंकर ने इस प्रकार जटाओं में धारण कर लिया जैसे कोई मोतियों की माला हो।"

कालिदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'रघुवंश' में तीर्थराज प्रयाग के गंगा-यमुना-संगम का बड़ा ही मुन्दर वर्णन किया है। सजीवता और मर्मस्पर्शता के साथ साथ उपमाओं की छटा भी दर्शनीय है।❀ 'उत्तर राम चरित' में भवभूति ने भी गंगाजी का महत्व वर्णन किया है। राम गंगा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं:—

❀ कालिदास का गंगा-यमुना, संगम, वर्णनदेखिए:—

क्वाचित्प्रभालेपिभिरिन्द्र नीलै मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सित पंकजानामिन्दी वरैरुत्खचितान्तरेव ॥
क्वचित्खगानां प्रिय मानसानां कादम्ब संसर्गवतीव पङ्क्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्ति र्भुवश्चन्दन कल्पितेव ॥
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा ॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्न प्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥

(रघुवंश)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुरग विचय व्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे
कपिलमहसामर्षात् प्लुष्टान् पितुश्चत पितामहान्
अगणिततनूतापं तप्त्वा तपांसि भगीरथो
भगवति तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरम्।

अर्थात्, सागर के यज्ञ में अश्व को खोजने में व्यग्र, वसुधा को ाद डालनेवाले, महर्षि कपिल के भयंकर क्रोध से भस्म हुए मेरे पितरों को भागीरथ ने अगणित शारीरिक व कष्टों को सहन करने हुए, तप करके तेरे सलिल से स्पर्श कराकर मुक्ति प्रदान की थी।

'किरातार्जुनीय' जैसे प्रसिद्ध महाकाव्य के रचयिता भारवि ने संक्षेप में ही गंगा का बड़ा सुन्दर रूप वर्णन किया है—"ऊँची-ऊँची शिलाओं से टकरानेवाली गंगा का जल जब रुककर पीछे की ओर लौटता है और बिखरे हुए जलकण ऊपर की ओर उछलते हैं, उस समय ऊँचे शिखरों से टकराने के कारण कवि को गंगा ऐसी प्रतीत होती है मानो वह चँवर डुला रही हो। देखिए:—

वितत शीकर राशि भिरुच्छ्रतै—
रुपलरोध विवर्ति भिरम्बुधिः।
दधत मुन्नत सानुसमुद्धतां
धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम्॥

'रसगंगाधर' के रचियता पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' संस्कृत साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है। श्री शंकराचार्य के 'गंगाष्टक' में कुछ कम सरसता नहीं।

हिंदी-कवियों का गंगा वर्णन

हिंदी साहित्य का आदिकाल तो संघर्षों के मध्य प्रारम्भ होता है और इसलिए युद्ध तथा प्रेम ही उस काल के प्रमुख काव्य-विषय रहे। भक्तिकाल के कवियों ने अवश्य गंगा का वर्णन किया है। सूर और तुलसी दोनों ने ही गंगा के वर्णन में अपनी उत्कृष्ट कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। कृष्ण भक्तिशाखा के प्रसिद्ध कवि सूर ने यमुना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तटवासी होते हुए भी गंगा का ❀ गुणगान किया है। तुलसी के गंगा वर्णन में बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण भी दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण देखिए—

हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीरवर,
मध्य धाराविशद, विश्व-अभिरामिनी।
नील पर्यंककृत-शयन सर्पेश जनु,
सहस-सीसावली स्रोत सुर स्वामिनी॥
—विनय पत्रिका

मैथिल कोकिल विद्यापति तथा रसखान की उक्तियों में भी कमनीयता है और प्रसिद्ध आचार्य केशवदास ने भी त्रिवेणी वर्णन के प्रसंग में गंगा की मनोहारिणी सुषमा भी चित्रित की है। केशवदास के पश्चात् तो रीति कालीन कविताओं के प्रभाव से भक्ति से विमुख हो विलासिता की ओर अग्रसर होने लगी। रीति काल में लक्षण मूलक ग्रन्थों के सृजन की ओर ही कवियों की दृष्टि रही और नायिका भेद आदि के चित्रण में ही कवित्वशक्ति व्यय की जाने लगी। वर्ण्य विषय की अपेक्षा वर्णन शैली पर ही विशेष ध्यान दिया जाने लगा। फलस्वरूप कविता में भावुकता की अपेक्षा चमत्कार पर विशेष जोर दिया जाने लगा। मतिराम ने यद्यपि गंगा का वर्णन अवश्य किया है परन्तु उसमें अलंकारों का ही समावेश विशेष रूप से† पद्माकर की गंगा-

---

❀ देखिए :—
गंग तरंग बिलोकत नैन।
अति पुनीत बिष्णु पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुन चैन।
परम पवित्र मुक्ति की दाता, भागीरथी भई बर दैन।
त्रिभुवन-हार-सिंगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन॥
'सूरदास' विधना के तप ते, प्रकट भई संतत सुख दैन॥

† मतिराम के पूर्व ही सेनापति ने भी कवित्तरत्नाकर की पाँचवी तरंग 'रामरसायन' में लग भग पन्द्रह सोलह छंदों में गंगा का वर्णन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लहरी अवश्य हिंदी साहित्य में गंगाविषयक साहित्य के अन्तर्गत अपना अद्वितीय स्थान रखती है। यद्यपि श्री कृष्णविहारी मिश्र ने माधुरी वर्ष ८, खंड १, संख्या १ में संपादकीय विचार के अन्तर्गत 'महा कवि पद्माकर' नामक निबन्ध में लिखा है कि ग्वाल कवि की 'यमुना लहरी' का पद्माकर की गंगालहरी पर विशेष प्रभाव पड़ा है, परन्तु वास्तव में पद्माकर को गंगालहरी ने ही ग्वाल कवि की यमुनालहरी, लाहीराम की सरजू लहरी, और रघुराज के गंगाशतक को प्रभावित किया है। यह तो हम भी स्वीकार करते हैं कि पद्माकर ने भावों की बार बार पुनरावृत्ति की है और कहीं कहीं अनुप्रास प्रियता के फलस्वरूप व्रजभाषा की निजता को भी नष्ट कर दिया है किन्तु बहुत से छन्द ऐसे भी उनकी लेखनी से प्रसूत हुए हैं जोकि हमारे इस कथन के अपवाद हैं। पद्माकर ने गंगा का गुणगान विस्तार के साथ किया है तथा वे गंगा को कल्पवृक्ष से भी श्रेष्ठ मानते हैं और उन्हें गंगा पर इतना अधिक विश्वास है कि वे अपने पापों तक को चुनौती देते हैं—

चलो चलु, चलो चलु, बिचल न बीच ही तें,
कीच बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।

किया है जिनमें प्रकृति वर्णन की अपेक्षा कवि के हृदगत भक्ति-वाभी नाओं की ही विशदता है। एक छंद देखिए—

काल तैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै,
ब्याल उरमाल, आगि भाल-सब ही समैं।
ब्याधि के अरंग ऐसे, ब्यापि रह्यौ आधौ अंग,
रह्यौ आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं॥
ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,
पैयती न बाकी तिल एकौ कहूँ ईस मैं।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
जो पै गंगा रानी कौं न पानी होतौ सीस मैं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा को कछार में पछारि छार करिहौं।

पद्माकर ने शिव के महत्व का कारण गंगा को ही माना है तथा उनकी 'गंगालहरी' में भक्ति भावना की अधिकता के साथ साथ काव्यगत विशेषताओं की भी विशदता है। लेखराज के 'गंगा भरण' में तो गंगा पर ही अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।* आधुनिक काल के प्रसिद्ध कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से युक्त रमणीय भाषा में 'गंगावतरण' का भावपूर्ण वर्णन किया है। अँग्रेजी कवि टेनीसन की भाँति कविता के कलापक्ष की सुघरता प्रदर्शित करने वाले व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि 'रत्नाकर' ने व्रजभाषा में 'गंगावतरण' नामक खंड काव्य की रचना कर यह सिद्ध कर दिया कि व्रजभाषा में भी सफलता पूर्वक खंड काव्य और प्रबन्ध-काव्य की रचना हो सकती है। गंगा विषयक हिंदी कविताओं में 'गंगावतरण' को विशेष महत्व दिया जाता है तथा उसे श्रेष्ठतम भी माना जाता है। गंगा को व्योममंडल से भूमि पर उतरते समय घमंड हो गया, और वे मन ही मन विचार करने लगीं—

---

*लेखराज की अलंकार पूर्ण सूक्ति देखिए—

पच्छी पटुकीर नीको, फूल कासमीर नीको,
सीरो सो उसीर नीको, रूप जो अनंगा को।
मंत्री मति धीर नीको, मित्र दिलगीर नीको,
रतनन हरि, चीर पीट पीत रंगा को॥
कहै लेखराज लखौ लच्छनी सुबीर नीको,
प्रकट फकीर नीको बिन रस-रंगा को।
सज्जन को तीर नीको, पच्छिम समीर नीको,
सुरभी को छीर नीको, नीर नीको गंगा को॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंग कह्यो उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं॥
लै सबेग-चिक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्म लोक कौं बहुरि पलटि कन्दुक इव आऊँ॥

परन्तु गंगा ने जब शिव का मनोहर स्वरूप देखा तब उनकी कुछ और ही दशा हो गई—

भयौ हुतौ भ्रूभंग-भाव जो भव-निदरन कौं।
तामैं पलटि प्रभाव परयौ हिय हेरि हरन कौं॥
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरे सुखकारी।
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी॥

ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' ने भी सुमधुर शब्दावली में गंगा का वर्णन किया है—

किधौं भेद-पाषाण भेदि, नित द्रवत सुधा कौं।
बहति हिलोरति बोरति, सुरसरि-हिय बसुधा कौं॥

आधुनिक हिंदी साहित्य के दोनों प्रसिद्ध महाकवियों (हरिऔधजी और गुप्तजी) ने खड़ी बोली में गंगा का वर्णन किया है। गुप्तजी के साकेत में कई स्थलों पर गंगा का वर्णन हुआ है। एक स्थल पर वे कहते हैं—

यह थी एक विशाल मोतियों की लड़ी।
स्वर्ग कंठ से छूट धरा पर गिर पड़ी॥
सह न सकी भवताप अचानक गल गई।
हिम होकर भी द्रवित रही कल जलमई॥

श्री सुमित्रानंदन पंत ने 'नौका विहार' करते समय गंगा का मनोहारी रूप देखा है। पंत जी के इस वर्णन में भाषा की मृदुलता और भावों की सुकुमारता दर्शनीय है—

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तापस बाला गंगा निर्मल, शशिमुख से दीपित मृदु करतल
लहरें उर पर कोमल कुन्तल !
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर—
चंचल अंचल सा नीलाम्बर !
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल मृदुल लहर !

दिनकर ने 'पाटलि पुत्र की गंगा' को विगत वैभव की स्मृति दिलाई है और वर्तमान परिस्थितियों का भी ज्वलंत चित्रण किया है। इसी प्रकार अन्य कई हिन्दी कवियों ने भी सफलता के साथ गंगा का वर्णन किया है।

अन्य साहित्य में गंगा-वर्णन

बंगभाषा के प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने भी भक्तिभावनापूर्ण एक पद गंगा के प्रति लिखा है तथा श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी गंगा का गुणगान कर अपनी भक्ति व्यक्त की है। वे कहते हैं—

जाह्नवी जमुना विगलित करुना।
पुराय पियूषस्तन्यवाहिनी ॥

वंग साहित्य की भाँति कर्नाटक साहित्य में भी गंगा का सुन्दर वर्णन किया गया है। भारतीय संस्कृति से उत्तर भारत ही नहीं दक्षिणभारत भी प्रभावित हुआ है। प्रसिद्ध कवि लिंगण्ण के 'केलदि-नृप-विजय-काव्य' में भी गंगा का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमें आदि कवि की सी अलंकारिकता, व्यास की सी विभवता, भवभूति और भारवि की भावुकता, कालिदास की सी कमनीयता, सूर की सी सरसता और पद्माकर का सा प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। लिंगण्ण का गंगावर्णन कर्नाटक साहित्य में विशेष प्रसिद्ध है। फारसी साहित्य-कार भी गंगा के प्रति उदासीन नहीं रहे हैं। कल्पना, भावुकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भाषा-की मधुरता से उनका भी गंगावर्णन उत्कृष्ट बन पड़ा है। फारसी भाषा के प्रसिद्ध कवि शेख़अली हर्जी ने जो ईरान से काशी आए थे, गंगा नदी का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

परीरूख़ाने बनारस बसद करश्मः व रंग,
बराये करदन अश्नान चूँ कुनन्द आहंग।
कुनंद सिज़दह ब महदेव तन देहन्द ब आब,
ज़हे शराफते संग व ज़हे लताफ़ते गंग॥

अर्थात्, अप्सराओं के समान मुखाकृतिवाली बनारस की युवतियाँ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो जब गंगा-स्नान करने के हेतु जाती हैं तब पहले शंकर जी के सामने सिर झुकाती हैं और फिर जल में गोते लगाती हैं। उस समय महादेव की मूर्ति का गुणगान और गंगा ही जी के जल की गरिमा का वर्णन भला कौन कर सकता है।

'शेरो शायरी' के सम्राट गालिब ने भी बनारस की प्रशंसा बड़े ही सुंदर शब्दों में की है। गालिब का कहना है कि गंगा के कारण बनारस का महत्व माना जाता है। देखिए—

सु खुनरा नाज़िशे मीनो कमाशी,
ज़ गुल बाँगे सितायश हाय काशी।
तआलल्लाह बनारस चश्म बद दूर,
बिहिश्ते खुरम्मो फ़िरदौस मामूर॥
बनारस रा कसे गुफ्ता चुनीनस्त,
हनोज़ अज़ गंग चीनश बर जबींनस्त।
बगंगंश अक्सता पर तो फगन शुद,
बनारस खुद नज़ीरे खेश्तन शुद॥

फारसी के प्रसिद्ध कवि लाला मित्तनलाल 'आफरी' ने भी गंगा की महिमा का वर्णन किया है। उनका कथन है कि आकाश गंगा तो इस गंगा की समता करने का साहस ही नहीं कर सकती क्योंकि यह गंगा स्वयं ही भक्तों को स्वर्ग प्रदान करती है। देखिए—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिहश्ते गंग गर मीनू सरिशतस्त,
कुजा मानिन्द इ गंगे विहिश्तस्त।
बहारश रौ कशे गुलजार मीनू,
कि अज गंगास्त आंरा शक्ले कमानस्त,
जे बरना ता असी शक्ले कमानस्त,
चो चिल्लह आवे गंगा दरमियानस्त।

अङ्गरेजी साहित्य में गङ्गा वर्णन

भारतीय साहित्य में ही नहीं विदेशी साहित्य में भी गंगा का वर्णन किया गया है। अंग्रेज कवियों ने जिस प्रकार टेम्स का वर्णन किया है उसी प्रकार गंगा का वर्णन भी किया है। अँग्रेजी के प्रसिद्ध कवि एच० एच० विलसन ने, जिन्होंने कि अँग्रेजी में कालिदास के मेघदूत का अनुवाद किया है, गंगा का बड़ा ही सुन्दर कवित्वपूर्ण वर्णन किया है। वे कहते हैं—"गंगा के विशाल वक्ष पर एक ऐसी छाप पड़ी है, जो कि प्रकृति में सत्यं, शिवं, सुन्दरं के सम्मिश्रण करने की ईश्वरीय अनुकम्पा को प्रकट करती है।" देखिए—

Upon Gange's ample breast
The signet is a like imprest,
That manifests the will divine
Ever in Nature to combine—
The fair and good, and use and grace
For all the haunts of human race

इसी प्रकार रेजिनाल्ड हेबर, रैटर, एटकिंसन, एच० एम० पारकर आदि कवियों ने भी गंगा पर अपनी मनोभावनाएँ प्रकट की हैं। डब्ल्यू० एफ० थाम्पसन ने भी विलसन की भांति गंगा के विषय में कई कविताएँ लिखी हैं। एक स्थल पर उन्होंने गंगा जी का दर्शन प्राप्त करने के हेतु अपने हृदय की आतुरता व्यक्त करते हुए लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

In every haunted spot,
I've sought thee till my spirit sunk,
For oh ! I found thee not.

अर्थात्, जहाँ मैं गया वहाँ प्रत्येक स्थान पर मैंने तुम्हें ढूँढ़ा और आशा की अंतिम क्षण तक तुम्हें ढूँढ़ता ही रहा, लेकिन हाय। मैं तुम्हें नहीं पा सका।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गंगा का वर्णन प्रायः प्रत्येक भाषा के काव्य साहित्य में किया गया है तथा गंगा के वर्णन में कवियों ने भक्ति-भावना के साथ साथ प्रकृति-निरीक्षण का भी परिचय दिया है।

आचार्य शुक्ल का निबन्ध कृतित्व

प्रसिद्ध विद्वान जे० बी० प्रीस्टले का कथन है कि "निबन्ध वह साहित्यिक रचना है जिससे एक निबन्धकार ने रचा हो।" वस्तुतः निबन्ध की कोई निश्चित परिभाषा निर्धारित करना आसान नहीं है। विवरण, वक्तृता, शास्त्रार्थ तथा तर्क-वितर्क आदि भी निबन्ध ही कहे जाते हैं तथा उनका विषय धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक सभी कुछ मान लिया जाता है। परन्तु जीवन और समाज के समस्त क्षेत्रों में प्रचलित विचारों का प्रकाशन जिस शैली की कृतियों द्वारा होता है उन सबको निबन्ध कहना उचित नहीं है। इस प्रकार राजनैतिक वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और अर्थ-शास्त्रीय विषयक निबन्धों को वस्तुतः निबन्ध न कहकर लेख ही कहना उचित है क्योंकि उनका उद्देश्य अपने विषय का प्रतिपादन और उसकी स्पष्टता मात्र रहता है तथा साहित्यिकता और रोचकता से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। उच्चकोटि के रोचक और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्यिक निबन्ध का क्षेत्र परिसीमित तो रहता ही है तथा उसके लक्षण भी कुछ अंशों तक निर्धारित से रहते हैं। डा० सूर्यकान्त शास्त्री के शब्दों में—"निबन्ध से हमारा आशय होता है साहित्य की उस विद्या विशेष से, जिसका लक्ष्य साहित्यिक मूल्य विशेष होता है और जो भाषा को अपनी दृष्टि के अनुसार जीवन के व्याख्यान के लिए, माध्यम के रूप में उपयोग करती है।"

हिंदी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल को वस्तुत: गद्य का युग ही समझना चाहिए क्योंकि उसमें गद्य-रचनाओं की ही बहुलत रही है। यह अवश्य है कि इस युग के पूर्व भी कुछ गद्य कृतियों का निर्माण हुआ था परन्तु पद्य-रचनाओ की प्रधानता के फल स्वरूप उनकी प्रभा आलोकित न हो सकी और इस प्रकार भावों को नि:सृत करने के लिए पद्य का ही अवलम्ब विशेष रूप से लिया जाता रहा। प्राचीन धार्मिक पुस्तकों, सूत्रों, भाष्यों और टीकाओं में उपयोगी बातों के होते हुए भी रस प्रवाह और साहित्यिकता का अभाव ही है। वर्तमान युग में यद्यपि पद्य-रचनाएँ भी लिखी गई हैं परन्तु प्रधानता गद्य कृतियों की ही है तथा कहानी, उपन्यास, नाटक और निबन्ध आदि विभिन्न साहित्यांगों की सहायता से गद्य युग की स्थापना में विशेष सहायता मिली है। निबन्ध तो साहित्य का सबसे अधिक आधुनिक रूप है और उसका विकास भी अभी हाल ही में हुआ है।

साधारणत: निबन्ध साहित्य का इतिहास भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और आधुनिक युग नामक तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। चूँकि भारतेन्दु युग गद्य का प्रारम्भिक काल था अत: इस युग के निबन्धों में गंभीरता और साहित्यिकता की अपेक्षा राजनैतिक और सामाजिक सुधारों की भावनाएं ही विशेष रूप से थीं। भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बद्री नारायण चौधरी, बालमुकुन्द गुप्त आदि हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक युग के निबन्ध-कारों में हैं। द्विवेदी युग में विशेषत: भाषा के परिमार्जन पर ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष ध्यान दिया गया तथा तथा निबन्धों का क्षेत्र राजनीति और समाज तक ही सीमित न रहा बल्कि ऐतिहासिक पुरातत्त्व सम्बन्धी और समालोचनात्मक निबन्धों का सृजन भी हुआ। द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से बहुत से नवीन लेखक प्रकाश में आए। डा० श्याम सुन्दर दास और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी यद्यपि द्विवेदी युग में ही लिखना प्रारम्भ किया था किन्तु उनकी प्रतिभा के विकास में द्विवेदी जी का कोई सक्रिय सहयोग न था। आचार्य शुक्ल जी से ही वस्तुतः निबन्ध साहित्य का आधुनिक युग प्रारम्भ होता है और इस क्षेत्र में उनके पदार्पण करने से निबन्धों को नवजीवन भी प्राप्त हुआ है। यद्यपि शुक्ल जी की प्रतिभा बहुमुखी थी तथा उन्होंने साहित्य के जिस क्षेत्र में भी कार्य किया उसी को अपनी प्रौढ़ प्रतिभा द्वारा समृद्ध बनाने का प्रयास किया किन्तु उनका महत्व समालोचक और निबन्धकारों के रूप में ही विशेष रूप से माना जाता है। इस प्रकार नवीनतम विषयों, नूतन शैलियों तथा मौलिक विचारों द्वारा उन्होंने हिंदी निबन्ध साहित्य को जो समृद्धि प्रदान की है वह सराहनीय ही है। श्री शिवनाथ एम० ए० के शब्दों में—"हिंदी में निबन्ध के साहित्यिक और सत्स्वरूप पर जिन दो चार निबन्धकारों की दृष्टि गई उनमें आचार्य शुक्ल को अग्रणी समझना चाहिए। वस्तुतः उनके द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत किए गए निबन्ध ही श्रेष्ट कोटि के ठहरते हैं—निबन्ध के सच्चे अर्थ में। + + + हिंदी निबन्ध साहित्य को उनके निबंधों द्वारा जो समृद्धि प्राप्त हुई है—उसका अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि यदि उसमें से उनके निबन्ध निकाल लिए जायँ तो उसका एक भाग ही सूना हो जाए।"

हिंदी साहित्य जगत में यद्यपि शुक्ल जी के निबन्धों के संग्रह 'चिन्तामणि प्रथम भाग' और 'चिन्तामणि द्वितीय भाग' के नाम से प्रकाश में आए हैं किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि इन संग्रहों के निबन्धों में जो प्रौढ़ता और परिष्कृति लक्षित होती है वह सहसा ही नहीं आ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ई है बल्कि इनके द्वारा उनकी निबन्ध रचनाशक्ति का विकास स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। शुक्ला जी ने अपने साहित्यिक जीवन को प्रारम्भ में ही साहित्य, भाषा की शक्ति, उपन्यास, भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिंदी, प्राचीन भारतीयों का पहरावा तथा मित्रता नामक निबंधों का सृजन किया था। 'साहित्य' नामक निबन्ध तो सन् १९०४ की सरस्वती में ही प्रकाशित हो चुका था। इन निबन्धों के विषयोंको तथा शैलियों को देखने से स्पष्ट विदित होता है कि जिन विषयों पर लिखे गए निबन्ध चिन्तामणि में दृष्टिगोचर होते हैं और जिन्हें कि न केवल शुक्ल जी के बल्कि समस्त हिंदी साहित्य के निबंधों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है वस्तुतः उस प्रकार के विषयों पर विचार करने की प्रवृत्ति शुक्ल जी में प्रारम्भ से ही विद्यमान थी। हो सकता है कि उन के प्राचीन निबंधों में निबन्ध के समस्त तत्वों का पूर्ण रूप से संनिवेश न भी हो सका हो यद्यपि यह संभव भी नहीं था तो भी इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि तत्कालीन युग में भी इस प्रकार के विचारात्मक साहित्यिक निबन्धों की ओर कदाचित ही किसी को दृष्टि गई हो। इस प्रकार चिंतामणि के निबन्धों को उनके प्राचीन निबन्धों का विकसित स्वरूप ही समझना चाहिये।

चिन्तामणि प्रथम भाग के निबन्धों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी में उनके भाव या मनोविकार सम्बंधी निबन्ध रखे जा सकते हैं और दूसरी श्रेणी में समीक्षात्मक निबन्ध। समीक्षात्मक निबन्ध भी सैद्धांतिक समीक्षा तथा व्यावहारिक समीक्षा नामक दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं। कविता क्या है, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, साधरणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद तथा रसात्मक बोधके विविध रूप नामक चार निबंधों में साहित्य-शास्त्र के सिद्धांतों की विवेचना प्रस्तुत की गई है यद्यपि इनमें शुक्लजी का व्यक्तिगत दृष्टिकोण भी कहीं-कहीं देख पड़ता है। सैद्धांतिक समीक्षा सम्बन्धी इन निबंधों को काव्यशास्त्रीय निबन्ध भी कहा जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतेन्दु हरिश्चंद्र, तुलसी का भक्तिमार्ग और मानस की धर्मभूमिनामक निबन्ध व्यावहारिक समीक्षा के अन्तर्गत आते हैं। चिंतामणि प्रथम भाग के शेष निबन्ध भाव या मनोविकार विषयक हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—भाव या मनोविकार, उत्साह, श्रद्धाभक्ति, करुणा, लज्जा और ग्लानि, लोभ और प्रीति, घृणा, ईर्ष्या, भय और क्रोध। चिन्तामणि भाग २ के तीनों निबन्ध भी वस्तुतः सैद्धांतिक समीक्षा के ही अन्तर्गत आते हैं। संग्रह का प्रथम निबन्ध 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' है जिसमें प्रकृतिके विविधरूपोंकी काव्य जगत् में उपादेयता या अनुपादेयता का शास्त्रीय पद्धति से विवेचना किया गया है। संग्रह का द्वितीय निबन्ध 'काव्य में रहस्यवाद' है जिसमें शुक्ल जी ने रहस्यवाद और छायावाद को एक ही समझते हुए रहस्यवादी कविताओं पर कठोर प्रहार किए हैं। संग्रह को अंतिम निबन्ध 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' है जो कि वस्तुतः हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में साहित्य परिषद् के सभापति पद से दिया गया शुक्ल जी के भाषण का परिवर्धित रूप ही है।

इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी यदि हम यह कहें कि हिंदी साहित्यमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लने प्रथम बार भाव या मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण पद्धति से इतना सुन्दर मर्मस्पर्शी विश्लेषण किया है। शुक्ल जी के पूर्व हिंदी के कुछ निबन्धकारों को भावों या मनोविकारों को अपने निबन्ध का विषय तो अवश्य बनाया था किंतु उनका साहित्यिक दृष्टि से विवेचन नहीं किया था। श्री बालकृष्ण भट्ट के 'आत्म निर्भरता' श्री प्रतापनारायण मिश्र के 'मनोयोग' तथा श्री माधवप्रसाद मिश्र के 'धृति और क्षमा' नामक निबन्धों में मनोवेगों की उत्पत्ति, उनके लक्षण और विकास पर विचार नहीं किया गया केवल उनसे होने वाले हानि लाभ पर ही विचार किया गया है। किन्तु शुक्ल जी ने मनोभावों की उत्पत्ति, उनके लक्षण और विकास का अध्ययन व्यवहारिक दृष्टिकोण से किया है तथा समाज में उनकी उपादेयता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुपादेयता पर भी प्रकाश डाला है। श्री गुलाबराय जी के शब्दों में—"शुक्ल जी का मनोविज्ञान शुद्ध विज्ञान नहीं है जिसमें औचित्य की अवहेलना की जाती है। उन्होंने जिन मनोवृत्तियों और मनोवेगों को अपनी विवेचना का विषय बनाया है, उनका लोक संग्रह और सामाजिक उत्थान से विशेष सम्बन्ध है।" चूँकि शुक्ल जी को भावों का सामाजिक और व्यवहारिक अनुभव भी था अतएव उन्होंने अपनी अनुभव शीलता के बल पर ही उनकी विवेचना की है। क्षात्र धर्म को अत्यधिक महत्त्व देते हुए उन्होंने उत्साह को सर्वप्रथम स्थान दिया है और—"कर्म सौंदर्य के सच्चे उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं" लिखकर जीवन में कर्म को ही प्रधानता दी है। शुक्ल जी की दृष्टि भावों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अङ्गों और स्वरूपों पर भी गई है तथा मनोविकारों के रूपों को स्पष्टता प्रदान करने के लिए उन्होंने उनसे मिलती-जुलती मनोवृत्तियों का अन्तर भी सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत किया है। लोभ और प्रीति, श्रद्धा और भक्ति, लज्जा और ग्लानि का अन्तर बड़ी ही कुशलता के साथ दिखाया गया है। इसी प्रकार प्रधान भावों पर विचार करते समय आवश्यकतानुसार गौण भावों पर भी विचार किया गया है; उदाहरणार्थ 'भय' पर विचार करते समय 'आशंका' पर तथा 'क्रोध' पर विचार करते समय 'प्रतीकार' पर भी प्रकाश डाला गया है। शुक्ल जी ने मनोविकारों को श्रेणीबद्ध भी किया है तथा विभिन्न आधारों से उठी हुई मनोवृत्तियों को विभाजित भी कर दिया है। उन्होंने मनोविकारों के भी प्रेष्य और अप्रेष्य नामक दो भेद माने हैं। मनोविकारों और भाववृत्तियों में भी अन्तर मानते हुए उन्होंने लिखा है—"मनोविकार तीव्र अधिक किन्तु क्षणिक और गतिमय होते हैं। भाववृत्तियों में तीव्रता अपेक्षाकृत कम किन्तु स्थायित्व अधिक होता है।"

चूँकि शुक्ल जी एक साहित्यकार थे तथा उनका व्यापक दृष्टिकोण भी विशेष रूप से साहित्यिक ही था अत: स्वाभाविक ही उन्होंने भावों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या मनोविकारों का विवेचन एक साहित्यकार के रूप में किया है केवल मनोवैज्ञानिक के रूप में ही नहीं। उन्होंने जिन मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर प्रकाश डाला है वे सभी भारतीय रस विधान से सम्बन्धित हैं तथा उनके उदाहरण साहित्य और जीवन में उपलब्ध भी होते हैं। उत्साह, प्रीति, करुणा, क्रोध, घृणा और भक्ति क्रमशः वीर, शृंगार, करुणा, रौद्र, वीभत्स और शांतरस से सम्बंधित से हैं। लोभ और प्रीति' में वस्तुतः जायसी के प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य 'पद्मावत' के नायक रत्नसेन के प्रेम की ही टीका की गई है तथा 'लज्जा और ग्लानि' में भरत की आत्मग्लानि को आधार माना गया है। शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में दुरूहता और नीरसता भी नहीं है बल्कि सरलता, सरसता और साहित्यिकता है। इस प्रकार श्री विनयमोहन शर्मा ने उचित ही लिखा है—"मनोविकारों पर तर्कमय चिन्तन के साथ हिन्दी में प्रथम बार ये निबन्ध लिखे गए हैं। सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेजी में 'बेकन' ने मनोविकारों पर लघु निबन्धों के रूप में अवश्य चिन्तन किया है, पर जितनी पूर्ण विवेचना शुक्ल जी के निबन्धों में पाई जाती है उतनी उनमें कहाँ है।"

यह तो हम प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं कि समीक्षात्मक निबन्धों से हमारा अभिप्राय सैद्धांतिक समीक्षा और व्यावहारिक समीक्षा पर लिखे गए निबन्धों से है। यद्यपि ये साहित्य विषयक निबन्ध ही हैं तथा इस प्रकार के निबन्धों की रचना बराबर होती रही है किन्तु शुक्ल जी के इन निबन्धों का हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। साहित्य सिद्धांत सम्बन्धी निबन्धों में शुक्ल जी ने प्रायः काव्य की ही पूर्ण विस्तार के साथ विवेचना की है तथा साहित्य के अन्य अङ्गों पर विशेष प्रकाश नहीं डाला है। शुक्ल जी ने कविता को भी कर्मयोग की भाँति भावयोग माना है क्योंकि उसमें भावों की ही प्रधानता रहती है। उनकी दृष्टि में काव्य जगत् और जीवन से विलग या दूर की वस्तु नहीं है। उनका विचार है कि—"जिस प्रकार आत्मा की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।" यद्यपि शुक्ल जी कल्पना और भावुकता को कवि का वास्तविक गुण मानते थे परन्तु उन्होंने यह भी लिखा है कि "सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक हृदय में लीन होने की दशा रसदशा है।"

शुक्ल जी विविध प्राकृतिक दृश्यों का आलम्बन रूप में वर्णन करने के पक्ष में हैं तथा वे जगत की सीमा केवल मानव संबद्ध वस्तु व्यापार तक ही सीमित नहीं मानते। उनमें प्रकृति के प्रति असीम प्रेम था तथा काव्य में प्राकृतिक दृश्यों की उपादेयता प्रतिपादित करते समय उनके करुणा कलित हृदय की झाँकी भी दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने लिखा भी है—"मैं पहाड़ों पर या जंगलों में घूमते समय बहुत से ऐसे देश हैं जहाँ लहराते हुए हरे भरे जंगलों में एवं शिलाओं पर चाँदी से ढलते हुए झरनों, चौकड़ी भरते हुए हिरनों और जल को झुककर चूमती हुई डालियों पर कलरव कर रहे विहंगों को देखकर मुग्ध हो गया हूँ। काले मेघ जब अपनी छाया डालकर चित्रकूट के पर्वतों को नीलवर्ण कर देते हैं तब नाचते हुए नीलकंठों (मोरों), को देखकर सभ्यताभिमान के कारण शरीर चाहे न नाचे, पर मन अवश्य नाचने लगता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे दृश्यों के प्रति आकर्षण है।" शुक्ल जी प्रकृति वर्णन में अर्थ ग्रहण की अपेक्षा बिम्ब ग्रहण के अधिक पक्ष में हैं तथा प्रकृति के केवल सौम्य रूप को ही देखना पसंद नहीं करते। उसका उग्र रूप भी देखना चाहते है। उनका विचार है कि—"जो केवल अपने विलास या शरीर सुख की सामग्री ही प्रकृति में ढूंढ़ा करते हैं, उनमें उस रागात्मक-सत्व की कमी है जो व्यक्त सत्तामात्र के साथ एकता की अनुभूति में लीन करके हृदय के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यापकत्व का आभास देता है।" शुक्ल जी कविता के क्षेत्र को संकुचित नहीं समझते तथा कविता का उद्देश्य केवल मनोरंजन या चमत्कारोत्पादन ही नहीं मानते बल्कि उनका विचार है कि कविता का ध्येय जगत् के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण कर उनके साथ मानव हृदय का सामंजस्य स्थापित करना ही है। अलंकारों को वे भाव या भावनाओं के उत्कर्ष साधन के ही लिए आवश्यक मानते हैं तथा उन्होंने कविता में सौंदर्य का महत्व भी विशेष रूप से माना है। शुक्ल जी यद्यपि रहस्यवाद को कविता की एक शाखा अवश्य मानते थे किन्तु रहस्यवाद के प्रति वे उदार नहीं थे। उन्होंने लिखा भी है—"जिस तथ्य का हमें ज्ञान नहीं, जिसकी अनुभूति से वास्तव में कभी हमारे हृदय में स्पंदन नहीं हुआ उसकी व्यंजना का आडम्बर रच कर दूसरों का समय नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं जो कोई यह कहे कि अज्ञात और अव्यक्त की अनुभूति से हम मतवाले हो रहे हैं, उसे काव्य क्षेत्र से निकालकर मतवालों के बीच अपना हावभाव और नृत्य दिखाना चाहिए।" शुक्ल जी अज्ञात् और अव्यक्त की दार्शनिक जिज्ञासा का विरोध नहीं करते हैं किन्तु रहस्यवादी कवियों की भाँति उसको प्रेम या भावना का विषय बनाना उन्हें पसंद न था। इसी प्रकार वक्रता या वैचित्र्य को काव्य के लिए उपयुक्त मानते हुए भी उसे काव्य में प्रधानता देना उन्हें पसन्द न था क्रोचे के अभिव्यंजनावाद तथा 'कला कला के लिए' नामक सिद्धांत पर भी शुक्ल जी ने कटु व्यंग्य किए हैं। उन्होंने काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था को दृष्टि में रखकर काव्य के दो विभाग किए हैं—

(१) आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले।

(२) आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलनेवाले॥

शुक्ल जी सदौंर्य को केवल श्रृंगाररस से अभिसिंचित कविताओं में ही नहीं बल्कि क्रोध, जुगुप्सा और जीवन की अन्य विषय परिस्थितियों में भी देखना चाहते हैं। वे सौंदर्य में भौतिकता और आध्यात्मिकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों का समावेश देखना चाहते हैं। 'साधरणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद' नामक निबन्ध में उन्होंने व्यक्तिवैचित्र्यवाद को रसबोध में बाधक माना है। काव्य में व्यक्ति विशेष का सुख दुःख व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत ही होना चाहिए जिससे कि कविता व्यापक रूप धारण कर सके और स्थायित्व प्राप्त कर सके। साधारणीकरण और मूर्तविधान का समन्वय स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं—"साधरणी करण का अभिप्राय: यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्तिविशेष या वस्तु आती है वह जैसे काव्य में वर्णित आश्रय के भाव का आलम्बन होती है वैसे ही सब सहृदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलम्बन होती है।" 'रसात्मक बोध के विविध रूप' में शुक्ल जी ने लिखा है कि काव्य का विभाव पक्ष विविध रूपरंगों से चित्रित रूप विधानों में मिलता है। उन्होंने प्रत्यक्षरूप विधान, स्मृति रूप विधान तथा कल्पित रूप विधान नामक तीन प्रकार के रूप-विधान माने हैं तथा वे अप्रत्यक्ष रूप व्यापारों द्वारा ही रसानुभूति नहीं मानते बल्कि प्रत्यक्ष द्वारा भी मानते हैं। व्यक्तित्व का विस्मरण करने पर साधारणीकरण द्वारा ही रसानुभूति संभव है शुक्ल जी के इन काव्य-शास्त्रीय निबंधों में सैद्धांतिकता की निर्वैयक्तिकता नहीं है बल्कि उनका एक व्यक्तिगत दृष्टि कोण है और वह उनके प्रबल व्यक्तित्व के साथ प्रतिपादित हुआ है। साथ ही इनमें शुक्ल जी की तथ्य ग्रहण की निर्मल दृष्टि तथा विवेचन की तीक्ष्ण बुद्धि भी दृष्टिगोचर होती है।

शुक्ल जी की सैद्धांतिक समीक्षा पर विचार करने के पश्चात् उनकी व्यावहारिक आलोचना पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। शुक्ल जी के समीक्षात्मक निबंधों पर विचार करते समय सर्वदा ही यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उनकी आलोचना अपने विकसित रूप में ही हमारे सामने प्रस्तुत हुई है अर्थात केवल एक या दो वर्ष की साधना के उपरान्त ही किसी लेखक, कवि या विषय के प्रति उन्होंने तत्क्षण ही अपने विचार व्यक्त नहीं कर दिए हैं। चूँकि उनमें, अध्ययन, मनन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और चिंतन की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही रही है अतः अपनी कृतियों में साहित्य के सम्बन्ध में विचारपूर्वक सिद्धान्तों के विश्लेषण और स्थापना में वे प्रारम्भ से ही सजग रहे हैं। इस प्रकार उनके साहित्य सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तों, विचारों तथा व्यावहारिक आलोचना में प्रौढ़ता का क्रमिक विकास ही देख पड़ती है। चिन्तामणि प्रथम भाग के केवल तीन निबन्ध ही व्यवहारिक समीक्षा के अंतर्गत आते हैं किन्तु प्रौढ़ता उनमें भी विद्यमान है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक प्रकार से परिचयात्मक निबन्ध ही है जिसमें भारतेन्दु की साहित्यिक विशेषताओं पर विहंगम दृष्टि डालते हुए भारतेन्दु की विशेषता एक ही वाक्य में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है—"प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।" शुक्ल जी ने भारतेन्दु के प्रकृति वर्णन के प्रति अपना असन्तोष भी व्यक्त किया है। 'तुलसी का भक्ति मार्ग' और 'मानस की धर्म भूमि' में उन्होंने तुलसी के कृतित्व की उन मूल विशेषताओं पर प्रकाश डाला है साधारणतः जिन पर पाठकों का ध्यान कभी नहीं जाता। शुक्ल जी का विचार है कि—गोस्वामी जी के भक्ति क्षेत्र में शील, शक्ति और सौंदर्य तीनों की प्रतिष्ठा होने के कारण मनुष्य की सम्पूर्ण भावात्मिका प्रकृति के परिष्कार और प्रसार के लिए मैदान पड़ा हुआ है। तुलसी की राम भक्ति से जीवन में शक्ति, सरसता, प्रफुल्लता और पवित्रता सभी कुछ प्राप्त हो सकता है तथा उनका यह अनुभूति मार्ग या भक्ति मार्ग लोक कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। 'मानस की धर्म भूमि' में गृह धर्म, कुल धर्म, समाज धर्म, लोक धर्म और विश्व-धर्म या पूर्ण धर्म नामक धर्म की ऊँची नीची भूमियों की चर्चा कर पूर्ण धर्म को ही श्रेष्ठतम माना गया है। शुक्ल जी का विचार है कि भक्त को लोक कल्याण विधायक धर्म का अवलम्ब ग्रहण कर धर्म मूर्ति भगवान श्रीराम की शरण में जाना चाहिए।

शुक्ला जी के निबन्धों पर समीक्षात्मक दृष्टि डालने के उपरान्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी भाषाशैली की विशेषताओं पर भी विचार करना नितान्त आवश्यक है। स्वयं शुक्लजी के मतानुसार "भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों में ही सबसे अधिक संभव होता है" तथा निबन्ध में व्यक्तित्व की छाप और व्यक्तिगत विशेषता के भी वे समर्थक हैं। अंग्रेजी साहित्य में भी निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप तथा निजी पन आवश्यक माने गए हैं किन्तु विधान की सरलता पर भी जोर दिया गया है। पाश्चात्य समीक्षकों का मत है कि वैयक्तिक निबंधों का विधान इतना सरल हो कि उनको समझने और पढ़ने में पाठकों को किसी भी प्रकार के श्रम का अनुभव न हो। किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबन्धों में विधान की सरलता के समर्थक नहीं हैं क्योंकि उनका विचार है कि विचारों की प्रधानता होने पर विधान की सरलता असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य हो जाती है। उन्होंने लिखा भी है—"शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है जहाँ एक एक पैराग्राफ में विचार दबा दबा कर कसे गए हों और एक ही वाक्य किसी संबद्ध विचार-खड को लिए हो!" इस प्रकार शुक्ल जी ने अपने निबन्धों से संघटित विचार-परम्परा को निहित और पारस्परिक अन्विति पर विशेष ध्यान रखा है। उनकी शैला विशेषतः विवेचनात्मक हो है जिसमें समास प्रणालो के अनुरूप विषय की मर्मस्पर्शी व्याख्या के साथ साथ भावों तथा विचारो की सुसम्बद्ध व्यवस्था भो है। यद्यपि कहीं कहीं अध्ययन, चिंतन और मनन के फलस्वरूप दुरूहता भो झलक उठती है परन्तु उसे अस्पष्टता नही कहा जा सकना। शुक्ल जी की यह समास शैली ही जिसे कि निगमन शैली (Inductive style) भी कहा जा सकता है प्रायः उनके सभी निबन्धों में दृष्टिगोचर हाती है और इस प्रकार वे पहले सूत्र रूप में थोड़े में ही कुछ कह देते हैं तथा बाद में उसकी व्याख्या करते हैं। मनोविकारों पर लिखे गए निबन्धों में उन्होंने अपनी अनुभव शीलता और रचना कौशल के बल पर कुछ अति विस्तृत अर्थ गर्भ सूत्रों का सृजन भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है। उनकी इस समास शैली का एक उदाहरण देखिए—"वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है। जिससे हमें दुःख पहुँचा है उस पर यदि हमने क्रोध किया और यह क्रोध यदि हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा तो वह वैर कहलाता है। इस स्थायी रूप में टिक जाने के कारण क्रोध का वेग और उग्रता तो धीमी पड़ जाती है पर लक्ष्य को पीड़ित करने की प्रेरणा बराबर बहुत काल तक हुआ करती है। क्रोध अपना बचाव करते हुए शत्रु को पीड़ित करने की युक्ति आदि सोचने का समय प्रायः नहीं देता, पर वैर उसके लिए बहुत समय देता है। सच पूछिए तो क्रोध और वैर का भेद केवल कालकृत है। दुःख पहुँचाने के साथ ही दुःखावस्था को पीड़ित करने की प्रेरणा करने वाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जाने पर प्रेरणा करने वाला भाव वैर है।"

शुक्ल जी के निबंधों में कहीं कहीं शैली का विश्लेषणात्मक रूप भी दृष्टिगोचर होता है और द्विवेदी युग की सी व्याख्यानात्मक प्रवृत्ति भी कहीं कहीं लक्षित होती है तथा निबंधों में स्पष्टता और रोचकता लाने के हेतु पौराणिक, ऐतिहासिक या अन्य कथाओं तथा निजी जीवन में घटित घटनाओं का उल्लेख या संकेत भी यथावसर किया गया है। यद्यपि 'चिंतामणी' प्रथम भाग के 'निवेदन' द्वारा स्पष्ट रूप से यही जान पड़ता है कि शुक्ल जी ने इन निबन्धों में बुद्धि का ही प्रधान रूप से उपयोग किया है किन्तु हृदय भी बुद्धि के साथ रहा है अतएव बुद्धि और हृदय का समन्वय हो जाने से इन विचारात्मक निबन्धों में भावात्मकता का भी समावेश हुआ है। चाहे शुक्ल जी का मस्तिष्क समीक्षक रहा हो किन्तु उनका मानस तो कवित्व पूर्ण ही था अतः बौद्धिक तत्वों की विवेचना में मर्मस्पर्शिता का प्रादुर्भाव स्वाभाविक ही हुआ है। यद्यपि डा० श्रीकृष्णलाल ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल की शैली को शुष्क तथा नीरस माना है और उनका विचार भी यही है कि "उनकी शैली बड़ी गंभीर है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा जान पड़ता है मानों कोई बहुत ही विद्वान अनुभवी और अध्ययन शील पुरुष अच्छी तरह खाँस-खूँस कर अपने शुष्क पांडित्य का प्रदर्शन कर रहा हो" किन्तु यह उचित और तर्क संगत नहीं है। वस्तुत: शुक्ल जी की शैली नितान्त शुष्क और नीरस ही नहीं है बल्कि भावपूर्ण तथा सरस है। हास्य व्यंग्य की मीठी चुटकियों की तो भरमार सी है। 'लोभ और प्रीत' नामक निबन्ध में एक स्थल पर वे लिखते हैं—"रसखान तो किसी की 'लकुटी अरु कामरिया' पर तीनों पुरों का राजसिंहासन तक त्यागने को तैयार थे पर देश प्रेम की दुहाई देनेवालों में से कितने अपने थके-माँदे भाई के फटे पुराने कपड़ों और धूल भरे पैरों पर रीझकर या कम से कम न खीझकर, बिना मन मैला किए कमरे की फर्श भी न मैली होने देंगे? मोटे आदमियों, तुम जरा सा दुबले हो जाते—अपने अँदेसे से सही—तो न जाने कितने ठठरियों पर माँस चढ़ जाता।"

शुक्ल जी की भाषा में अभिव्यंजना शक्ति की प्रबलता, भव्यता तथा विशालता भी है। विचारों को संघटित रखने के उद्देश्य से उन्होंने भाषा में इस प्रकार का गठन रखा है कि प्रत्येक वाक्य का निजी महत्व है तथा वह अपने स्थान से किसी भी भाँति विलग नहीं किया जा सकता। कहीं कहीं वाक्य की व्यवस्था इतनी दीर्घ हो गई है कि एक ही वाक्य कई पंक्तियों को घेर लेता है तथा उसमें भावों की विविध तरंगें भी उठती हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित वाक्य देखिए—"वहाँ जिस प्रकार लोक-व्यवहार से अपने को अलग करके आत्म कल्याण की ओर अग्रसर होनेवाले काम, क्रोध आदि शत्रुओं से बहुत दूर रहने का मार्ग पा सकते हैं, उसी प्रकार लोक-व्यवहार में मग्न रहनेवाले अपने भिन्न भिन्न कर्त्तव्यों के भीतर ही आनन्द की वह ज्योति पा सकते हैं जिससे इस जीवन में दिव्य जीवन का आभास मिलने लगता है और मनुष्य के वे सब कर्म, वे सब वचन और वे सब भाव-क्या डूबते हुए को बचाना, अत्याचारी पर शस्त्र चलाना, क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तुति करना, क्या निन्दा करना, क्या दया से आर्द्र होना, क्या क्रोध से तमतमाना—जिनसे लोक का कल्याण होता आया है, भगवान् के लोक पालन करने वाले कर्म, वचन और भाव दिखाई पड़ते हैं।" शुक्ल जी ने अपने भावों को मूर्त-रूप-प्रदान करने के हेतु सादृश्य कथन, सामाजिक शब्द योजना, अनुप्रास-रूपक आदि का आलंकारिक प्रयोग भी किया है। अलंकारों के द्वारा मूर्ति योजना करते समय विशेष रूप से अनुप्रास या रूपक का ही अवलम्ब लिया गया है। जैसे—"पर्वत की ऊँची चोटियों में विशालता और भव्यता का, वातविलोड़ित जलप्रसार में क्षोभ और आकुलता का; विकीर्ण घन-खंड मंडित, रश्मि-रंजित सांध्य दिगंचल में चमत्कार पूर्ण सौंदर्य का; ताप से तिलमिलाती धरा पर धूल झोंकते हुए अंधड़ के प्रचंड झोंकों में उग्रता और उच्छृङ्खलता का; बिजली की कँपाने वाली कड़क और ज्वालामुखी के ज्वलन्त स्फोट में भीषणता का आभास मिलता है।" शुक्ल जी की भाषा में यद्यपि तत्समता ही विशेष रूप से पाई जाती है किन्तु तद्भव और विदेशी शब्दों का भी निरा अभाव नहीं है। यद्यपि अरबी फारसी शब्दों को तो उन्होंने शुद्ध रूप में ही ग्रहण किया है लेकिन अँग्रेजी शब्दों के तो पारिभाषिक शब्द भी दिए गए हैं। जैसे अभिव्यंजनावाद (Expressionism) प्रभाववाद (Impressionism) इन्द्रिया शक्ति (sensualism) आदि। किन्तु कहीं कहीं उनके पारिभाषिक शब्द उपयुक्त भी नहीं जान पड़ते हैं और उनसे अर्थ-बोध भी नहीं होता है। इस प्रकार शुक्ल जी का हिंदी गद्य शैली के निर्माण में महत्वपूर्ण योग रहा है तथा उनके निबन्धों में लेखन कला अपने पूर्ण विकसित रूप में ही दृष्टिगोचर होती है।

वस्तुत: शुक्ल जी हिंदी साहित्य के न केवल एक उत्कृष्टतम निबन्धकार हैं बल्कि उन्हें हिंदी में आधुनिक निबन्ध-साहित्य का जन्मदाता ही समझना चाहिए। उनके निबन्धों को प्राय: शुष्क भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा जाता है। किन्तु वास्तव में वे शुष्क नहीं हैं; हाँ गंभीर विषयों पर लिखे जाने के कारण उनमें गांभीर्य अवश्य आ गया है। साहित्यिकता, हास्य-व्यंग्य विनोद, वैयक्तिकता आदि के योग से उनके निबन्धों में सरसता और रोचकता की ही प्रधानता रही है। चूँकि शुक्ल जी के निबन्ध विचारात्मक हैं अतः हो सकता है कि संबुद्धि की अक्षमता के फलस्वरूप कुछ कम विद्या बुद्धि वाले व्यक्ति इन निबन्धों पर शुष्कता का आरोप लगावें परन्तु उनका यह आरोप उचित नहीं माना जा सकता। शुक्ल जी के निबन्ध प्रायः विषय प्रधान ही माने जाते हैं क्योंकि उनमें संघटित विचार परम्परा की ही विशेष रूप से अभिव्यक्ति हुई है यद्यपि 'चिंतामणि प्रथम भाग' के निवेदन में तो उन्होंने अपनी पाँच सात पंक्तियों की भूमिका में इस बात का निर्णय विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ दिया है कि उनके 'ये निबन्ध विषय प्रधान है या व्यक्ति प्रधान।' यह तो स्पष्ट है कि विचारात्मक होने के कारण उनके निबन्ध विषय प्रधान ही माने जाएँगे परन्तु उनमें शुक्ल जी के व्यक्तित्व की छाप भी स्पष्ट रूप से झलकती हैं। विषय प्रधान निबन्धों में वैयक्तिकता का सर्वथा अभाव नहीं रहता क्योंकि सच्चा निबन्धकार निबन्धों में अपने व्यक्तित्व का भी योग देता है। किसी भी विषय के प्रतिपादन में उसकी निजी रुचि, अध्ययन, मनन की आवश्यकता तो पड़ती ही है तथा उसकी शैली भी उसके निजी व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। अतएव शुक्ल जी के निबन्धों में भी विषय की प्रधानता के साथ साथ उनकी निजी वैयक्तिकता भी है। साथ ही उनके निबंधों में लोक संग्रह की भावना का स्पन्दन भी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के निबन्धों के प्रति उचित ही लिखा है—"उनके निबन्ध केवल हिंदी भाषा की ही अमूल्य निधि नहीं हैं प्रत्युत वे समूचे भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान पाने के योग्य हैं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'प्रसाद' का गीति-काव्य

गीत-काव्य को अंग्रेजी में 'लिरिक' (Lyric) कहा जाता है तथा साधारणत: उससे उस गीत का बोध होता था, जो 'लायर' (Lyre) पर गाया जा सके। 'लायर' वीणा के सदृश एक वाद्य यन्त्र होता था, अत: 'लिरिक' का अनुवाद 'वैणीक' किया जा सकता है। परन्तु भारती साहित्य में 'वैणीक' शब्द प्राचीन ही है और यहाँ 'वैणीक' एक प्रकार के चित्रों को कहा जाता है, अत: उसे गीत-काव्य ही कहना अधिक उपयुक्त है। यद्यपि भारतीय साहित्य में गीत-काव्य का कोई भिन्न स्थान नहीं है; क्योंकि काव्य स्वयं ही गेय होता है परन्तु ग्रीक साहित्य में अवश्य गीति-काव्य को स्वतन्त्र स्थान प्राप्त है। ग्रीक साहित्य में काव्य को Fpic एपिक (वीर काव्य), Flegy एलेजी (शोक कविता) और Lyric लीरिक (गीति-काव्य) नामक तीन भागों में विभाजित किया गया है। Fpic या वीर काव्य भारतीय साहित्य के महाकाव्य के सदृश्य होता है—अर्थात अपने यहाँ महाकाव्य में जिन लक्षणों का होना आवश्यक माना गया है, ग्रीक साहित्य में उसी प्रकार के लक्षणों का होना 'एपिक' में आवश्यक समझा गया है। 'एलिजी' Elegy (शोक कविता) अपने नाम के अनुरूप ही करुणासिक्त और तीव्र वेदना पूर्ण होती है। 'लीरिक' जैसा कि अभी-अभी हम लिख चुके हैं 'लायर' पर गाये जाने वाले गीतों को कहते थे, परन्तु शनैः शनैः इसका मूल अर्थ विलुप्त होता गया और गेयका तात्पर्य एकमात्र यही रह गया कि उसमें शब्द माधुरी और लय हो। शनैः शनैः गीति-काव्य में अन्तर्जगत का ही अत्यधिक चित्रण होने लगा और आत्माभिव्यक्ति ही उसका प्रधान गुण रह गया। इस प्रकार शब्द-माधुरी, लय और भावों की वास्तविक अभिव्यक्ति की अपेक्षा गीति-काव्य का प्रधान गुण भावावेश ही रहा। भारतीय साहित्य में गीत-काव्य में भावावेश के साथ-साथ स्वर साधना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् संगीत को भी प्रमुख माना गया है। वास्तव में गीत-काव्य का सृजन ही संगीत के उच्च आदर्शों पर होता है। श्री गुलाबराय जी एम० ए० के शब्दों में गीति-काव्य की प्रमुख विशेषाताएँ इस प्रकार इस प्रकार है—"संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमलकान्त पदावली, निजी रागात्मकता (जो प्राय: आत्मनिवेदन के रूप में प्रकट होती है), संक्षिप्तता और भाव की एकता। यह काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अन्त: प्रेरित (Spontaneous) होता है और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है।"

हिन्दी गीति-काव्य उतना ही अधिक प्राचीन है; जितना कि वेद क्योंकि वेदों में भी भावमय संगीत दृष्टिगोचर होता है। सामवेद तो आर्य जाति का आदि गान कहा जाता है तथा वेदों की ऋचाएँ भी संगीतमय ही हैं। जैसा कि हम प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं भारतीय साहित्य में जो काव्य हैं उन्हें गेय ही माना गया है और गान इस प्रकार काव्य ही है—अर्थात् वैदिक साहित्य में काव्य और गीत में कोई भेद नहीं था तथा संगीत के अनुसार गाने के ही लिये काव्य की रचना होती थी। अतएव इस प्रकार समस्त प्राचीन काव्य गेय हैं। परन्तु गीति-काव्य का वास्तविक रूप जयदेव के 'गीत-गोविन्द' में दृष्टिगोचर होता है। 'गीत-गोविन्द' के गीत राग रागनियों के अनुरूप ही हैं। इस प्रकार बारहवीं शताब्दी में रचित जयदेव के 'गीति-गोविन्द' ने भारतीय गीत-काव्य में उत्क्रान्ति-सी मचा दी। अत: जयदेव को ही स्पष्टत: भारतीय गीति-काव्य का जन्मदाता माना जा सकता है, क्योंकि गीति-काव्य की स्वतन्त्र परम्परा उनके ही समय से प्रारम्भ होती है।

हिन्दी गीति-काव्य पर जयदेव का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है और विशेषकर विद्यापति तो उनके चिरऋणी हैं। हिन्दी में गीति-काव्य का प्रारम्भ संत कवियों द्वारा हुआ, यद्यपि अपभ्रन्श काल में भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ गीत लिखे गये हैं, परन्तु गीति-काव्य का शुद्ध निश्चित रूप उनमें दृष्टिगोचर नहीं होता। कबीर, सूरदास और मीरा आदि ने हिन्दी गीति-काव्य को विकसित किया तथा उनके गीत हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। रीति-काल के प्रारम्भ में गीति-काव्य की परा-प्राय; छिन्न-भिन्न सी रही परन्तु आधुनिक काल में गीतों की परम्परा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और सत्यनारायण कविरत्न के पदों में झलक उठी। द्विवेदी युग में भी थोड़े से स्फुट गीत प्रकाश में अवश्य आये परन्तु उनमें तीव्रधारा का प्रवाह छायावाद-युग में ही आया। आधुनिक काल में गीति-काव्य का प्रारम्भ वास्तव में 'प्रसाद' जी से हुआ और उनके गीतों में भाव, भाषा, शैली तथा संगीत आदि सभी दृष्टिकोणों से महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी गीति-काव्य की काया ही परिवर्तित-सी हो गयी और इस प्रकार 'प्रसाद' जी तथा उनके परवर्ती कवियों के गीतों में अंग्रेजी 'लिरिक' के समस्त गुण दृष्टिगोचर होते हैं। अतएव हिन्दी साहित्य में 'प्रसाद' जी से ही आधुनिक हिन्दी गीत-काव्य का प्रारम्भ माना जाता है तथा परम्परागत पदशैली एवं ब्रजभाषा के प्रभाव से हिन्दी गीति-काव्य को उन्मुक्त करके उसे सर्वथा नूतन रूप प्रदान करने का श्रेय उन्हें ही है।

यद्यपि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से माना जाता है, परन्तु 'प्रसाद' के समय में ही युग की नूतन प्रवृत्तियों का उसमें दर्शन होता है। प्रसाद, पंत और निराला ने हिन्दी साहित्य में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन और नूतनता ला दी तथा छन्द के बन्धनों को विच्छिन्न करके नूतन प्रवृत्तियों का सूत्रपात्र किया। द्विवेदी युग में जहाँ इतिवृत्यात्मकता और उपदेशात्मकता की ही प्रधानता थी वहाँ अब मानस की कोमल भावनाओं को चित्रित करने का प्रयास आधुनिक कवियों ने किया है। अज्ञात की अनुभूति में 'प्रेम की पीड़ा' को अब वे चित्रित करने लगे और आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रेम साधना का पावन स्रोत प्रवाहित हो उठा। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार छायावाद और रहस्यवाद के गीतों का सृजन हिन्दी साहित्य में प्रारंभ हुआ। छायावादी तथा रहस्यवादी गीतों में अन्तर्जगत का विशेष रूप से चित्रण रहता है और बाह्य स्थूल दृश्यों की प्राय: उपेक्षा ही की जाती है। बाह्य प्रकृति भी आभ्यन्तरिक रूप में ही चित्रित की जाती है अर्थात प्राकृतिक व्यापारों का एक विशेष ढंग से मानवीकरण कर लिया जाता है। रहस्यवाद में भावना और अनुभूति की बहुलता रहती है, तथा छायावाद में कल्पना की। श्रीमती महादेवी वर्मा रहस्यवाद को छायावाद की दूसरी मंजिल मानती है तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहस्यवाद को छायावाद का विषयगत पक्ष मानते हैं। यद्यपि छायावाद के विरोध में कहा जाता है कि विश्व के संघर्षों से विलग होकर सौंदर्यानुशीलन की प्रवृत्ति का चित्रण उसमें अधिकतर रहता है, परन्तु वास्तव में छायावाद भी जीवन संग्राम के प्रति उदासीन नहीं हैं। छायावाद बुद्धिवाद की अपेक्षा भावुकता पर ही आधारित रहा है तथा उसने भाषा में मधुरता और लाक्षणिकता का अविर्भाव किया है और खड़ी बोली की खरखराहट को दूर कर उसमें स्वाभाविकता और सरलता ला दी है। इस प्रकार छायावाद और रहस्यवाद के इन गीतों का महत्व अत्यधिक है। अँग्रेजी 'लिरिक' के समस्त गुण इन आधुनिक शैली के गीतों में दृष्टिगोचर होते हैं। चूँकि हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम 'प्रसाद' जी ने आधुनिक शैली के गीतों का सृजन किया है, अत: निस्सन्देह ही उन्हें खड़ी बोली का सर्वप्रथम गीति-काव्य रचियता स्वीकार करना चाहिये।

स्वतन्त्र गीत-काव्य के रूप में 'प्रसाद' जी की एक मात्र कृति 'आँसू' ही है। 'आँसू' आधुनिक हिन्दी-साहित्य का सर्व श्रेष्ठ गीति काव्य है। डा० श्री कृष्णालाल के शब्दानुसार—"'आँसू' के सम्पूर्ण काव्य के अन्तर में वेदना की एक लहर-सी दिखायी पड़ती है।" 'आँसू' एक छोटा-सा सुन्दर प्रेम-विरह काव्य है जिसमें आध्यात्मिकता भी दृष्टिगोचर होती है। 'आँसू' की कथावस्तु संक्षिप्त ही है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उससे यही प्रतीत होता है कि कवि ने किसी से प्रेम किया था और उसका अनुराग परिस्थितियों के अनुसार बहुत दिनों तक चलता रहता है, परन्तु अचानक ही उसे वियोग सहन करना पड़ता है। न जाने क्यों 'प्रिय' ने अब प्रेमी को अपनाना छोड़ दिया है और इस प्रकार मिलन की सुखपूर्ण घड़ियों के स्थान पर उसे अब विरह की कठोर दु:खदायक घड़ियों को झेलना पड़ रहा है। 'आँसू' एक श्रेष्ठ विरह काव्य है। अत: विरहावस्था का उसमें बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण किया गया है। कुछ पंक्तियाँ देखिये--

जब नील निशा अंचल में
हिम कर थक सो जाते हैं।
अस्ताचल की घाटी में,
दिन कर भी खो जाते हैं।

नक्षत्र डूब जाते हैं,
स्वर्गंगा की धारा में।
बिजली बन्दी होती जब,
कादम्बिनि की कारा में॥

मणिदीप विश्व-मन्दिर की,
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो मेरी ज्वाला।

उत्ताल—जलधि—वेला में
अपने सिर शैल उठाये
निस्तब्ध गगन के नीचे
छाती में जलन छिपाये।

संकेत नियति का पाकर
तन से जीवन उलझाये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब सोती गहन गुफा में
चंचल लटको छिटकाये।
यह ज्वालामुखी जगत की
वह विश्ववदना वाला
तब भी तुम सतत अकेली
जलती हो मेरी ज्वाला।

'आँसू' में इस प्रकार प्रेम और विरह का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। कवि ने अपने अतीत की रस भरी घड़ियों का स्मरण किया है। और उनके अभाव में रुदन किया है, पर वह रो-रो कर अपने जीवन का अन्त नहीं कर देता, बल्कि इस अभाव को एक कठोर सत्य समझता है। आँसू' में स्थूल के प्रति आसक्ति भी प्रकट की गयी है और 'स्थूल शरीर' का नखशिख वर्णन भी किया गया है। एक छोटा सा चित्र देखिये—

शशि-मुख पर घूंघट डाले
अंचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में
कौतूहल - से तुम आये।

यद्यपि विरह से कवि अत्यधिक व्यथित हो उठा है, परन्तु तो भी उसे विश्वास-सा है कि मानव जीवन में विरह और मिलन क्रमानुसार होते ही रहते हैं—यह तो मन का खेल मात्र है। सुखमय मिलन और दुःख पूर्ण विरह दोनों ही क्रमशः जीवन में आते जाते रहते हैं, अतएव वह उस दिन की प्रतीक्षा में है जब समय के प्रवाह वश मन स्वाभाविक ही दुःख और सुख के आवर्त्तो विवर्तो के ऊपर उठकर उसके हृदय को शान्ति प्रदान करेगा और विरह की समाप्ति होकर यह वियोग अनन्त मिलन के रूप में परिवर्तित हो जायेगा:—

चेतना लहर न उठेगी,
जीवन समुद्र थिर होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्ध्या हो सर्ग प्रलय की,
विच्छेद मिलन फिर होगा।

'आँसू' के अतिरिक्त 'प्रसाद' जी का कोई स्वतन्त्र गीति-काव्य उपलब्ध नहीं है, पर हाँ—कवि ने स्फुट गीतों का सृजन अवश्य किया है। झरना, लहर और कामायनी में कई उच्च कोटि के प्रथम श्रेणी के गीत दृष्टिगोचर होते हैं। 'लहर' प्रसाद जी के स्फुट गीतों का संग्रह है, जिसमें आशा, उल्लास, हर्ष और सुप्रसन्नता की ऊर्मियाँ हिलोरें ले रही है। 'लहर' का प्रकाशन 'आँसू' के उपरान्त हुआ है, अतः आँसू में जहाँ निराशा-पूर्ण मानस की झाँकी दिखलायी गयी थी, वहाँ उसकी प्रतिक्रिया 'लहर' में होती है, जिसमें अतीत के प्रति तीव्र आग्रह व्यक्त किया गया है और पिपासित हृदय का बड़ा ही मधुर चित्रण कवि ने किया है:—

चिर-तृषित कण्ठ से तृप्ति-विधुर
वह कौन अकिंचन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ-सदृश
धीरे-से कह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

'आँसू' के सदृश इसमें भी कभी-कभी कवि की प्राचीन स्मृतियाँ उभर उठती हैं। जैसा कि अभी-अभी हम लिख चुके हैं, 'लहर' में अतीत के प्रति तीव्र आग्रह प्रदर्शित किया गया है। वर्तमान अवस्था में भी उनके लोचनों के सम्मुख बार-बार वे चित्र आते हैं, जिन्हें कि समय धुंधला-सा कर डालना चाहता है। यद्यपि कवि शान्त होना चाहता है और अतीत को विस्मरण कर देना चाहता है, पर विद्युत की भाँति विगत घटनाएँ चमक उठती हैं और उसके मानस में टीस सी उत्पन्न होने लगती है।

उस दिन जब जीवन के पथ में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छिन्न पात्र ले कम्पित कर में,
मधु-भिक्षा की रटन अधर में,
इस अनजाने निपट नगर में,
आ पहुँचा था एक अकिंचन।

'लहर' के गीतों में अन्य रहस्यवादी और छायावादी कविताओं के सदृश विश्व के संघर्षों से हटकर किसी सुरभित सौन्दर्य लोक में बैठकर सुख स्वप्न विलोकने की पालायनवादी प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। एक उदाहरण देखिये—

ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अम्बर के कानों से गहरी
निश्चल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे।

रूप और यौवन के कवि 'प्रसाद' जी ने एक भावुक चित्रकार के सदृश बड़ा ही कलापूर्ण रूप चित्रण किया है। प्रकृति और सौन्दर्य का जैसा सुन्दर वर्णन उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम कवि कर सकते हैं। इन प्रकृति-गीतों में कहीं तो उन्होंने प्रकृति का सुमधुर वास्तविकतापूर्ण वर्णन किया है और कहीं प्रकृति का अवलम्ब ले जीवन-मरण के रहस्य को दिखलाया है। विलास, ऐश्वर्य और मादकता के कुशल चित्रकार कवि 'प्रसाद' ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में भी चित्रित किया है और इस प्रकार उनकी भाव मूर्ति विधायनी कल्पना निस्सन्देह सराहनीय कही जा सकती है। छायावाद सौन्दर्यानुभूति के साथ-साथ जीवन-संघर्ष के प्रति निरा उदासीन नहीं है। 'प्रसाद' जी की निम्नांकित पंक्तियों में जीवन-संघर्ष में प्रवेश करने को प्रेरित किया गया है:—

अब जागो जीवन के प्रभात!
रजनी की लाज समेटो तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलरव से उठकर भेंटो तो !
अरुणाचल में चल रही बात
अब जागो जीवन के प्रभात !

'कामायनी' महाकाव्य की कथावस्तु यद्यपि आदि कालीन वैदिक उपाख्यानों से ही ली गयी है परन्तु उसमें सर्वथा नूतनता ही दृष्टि-गोचर होती है। कामायनी में मानवी सृष्टि का प्रारम्भ, उसका विकास और उसके चरमोत्कर्ष की झलक देख पड़ती है। उसमें श्रद्धाविहीन बुद्धिवाद के परिणामों की झाँकी दिखलायी गयी है तथा बुद्धि के साथ साथ श्रद्धा का अवलम्ब लेना आवश्यक माना गया है। श्री इलाचन्द्र जोशी के शब्दानुसार "कामायनी की रचना मानवात्मा की उस चिरन्तन पुकार को लेकर हुई है, जो आदिकाल से चिर अमर आनन्द और चिर अमर शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा से व्याकुल है। इस घोर अहमन्यतापूर्ण दुर्दम आकांक्षा के चरितार्थ के प्रयत्न में मानव को जिन संकट संकुल गिरि-पथों, जिन जटिल जाल जड़ित गहन अरण्य प्रान्तरों तथा घोर अन्धकाराच्छन्न कराल रात्रियों का सामना करना पड़ता है, उनके संघात की 'वेदना 'कामायनी' में बिजली के शब्द से कड़कती हुई बोल उठी।" यद्यपि 'कामायमी' महाकाव्य है, पर उसमें भी कुछ सुन्दर-सुन्दर मधुर गीतों का समावेश है और ये गीति हिन्दी गीति-काव्य की स्थायी सम्पत्ति हैं।

'प्रसाद' जी के नाटकों में भी गीति-काव्य की मौलिक छटा दृष्टि-गोचर होती है। इसके पूर्व नाटकों में एकमात्र तड़क-भड़क के बाह्य आडम्बर युक्त गाने हीं रखे जाते थे, जिनमें न तो सुन्दर-सुन्दर भावों का ही संगुम्फन होता था और न भाषा में ही लालित्य होता था परन्तु 'प्रसाद' जी के नाटकों के गीतों में राग-रागनियों की आदर्श योजना के अतिरिक्त काव्य-सौन्दर्य भी विद्यमान है। संगीतात्मकता और साहित्यिकता का बड़ा ही वाञ्छनीय सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'अजातशत्रु' आदि नाटकों के गीत हिन्दी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीति-काव्य के उत्कृष्ट गीतों में गिने जाते हैं। इन गीतों में कहीं तो प्रेम-प्लावित नारी हृदय की आकुल पिपासा का मर्मस्पर्शी चित्रण है, कहीं विरह व्यथित मानस की झाँकी दिखलायी गयी है और कहीं आशा के हिंडोले पर झूलनेवाले मानव-हृदय की अनुपम छटा प्रस्तुत की गयी है। कहीं-कहीं प्रकृति-वर्णन भी अद्वितीय बन पड़ा है। जैसा कि हम प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं, सौन्दर्यानुभूति छायावाद की प्रमुख विशेषता रही है और इन गीतों में सौन्दर्यानुभूति का सहज सामंजस्य है। यौवनावस्था में असंख्य अभिलाषाएँ मानस में उठा करती हैं और शनैः शनैः विकसित होती रहती हैं। युवावस्था मानव जीवन का वसन्त काल है और इस यौवन में के माधवीकुञ्ज में कोई कोकिल बोल रहा है। यौवन में और रोम-रोम में प्रविष्ट कोकिल मधुपान करके उन्मादित सा हो रहा है तथा अनुराग के वशीभूत हो आप ही आप शिथिल होता जा रहा है। लज्जा के बन्धन विच्छिन्न हो गये हैं, रजनी मंजुल छवि के कारण उन्मादिनी सी बन गयी है, चाँदनी छिटक सी रही है और कम्पित अधर बहकाने की बातें कर रहे हैं। युवावस्था में अभिलाषों के अंकुरित होने का चित्रण कवि इस प्रकार करता है और उपर्युक्त भावों की कलापूर्ण अभिव्यक्ति उसने निम्नांकित पंक्तियों में की है।

आज इस यौवन के माधवी कुन्ज में कोकिल बोल रहा है!

मधु पीकर पागल हुआ करता प्रेम प्रलाप
शिथिल हुआ जाता हृदय जैसे अपने आप
लाज के बन्धन खोल रहा। आज............
बिछल रही है चाँदनी छवि मतवाली रात
कहती कंपित अधर से, बहकाने की बात।
कौन मधु-मदिरा घोल रहा। आज.........

इस प्रकार के कई सुन्दर-सुन्दर गीत 'प्रसाद' के नाटकों में दृष्टि-गोचर होते हैं। यद्यपि काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से 'प्रसाद' के नाटकीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीत सुन्दर अवश्य हैं, पर व्यवहारिकता के दृष्टिकोण में रंगमंच पर कहीं-कहीं बड़े-बड़े गाने जैसे कि 'स्कंदगुप्त' से देवसेना और 'अजातशत्रु' में मागंधी गाती है, बड़े ही अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनमें कहीं-कहीं अस्पष्टता और भद्दापन तो आ ही गया है तथा साथ ही नेपथ्य से लम्बे लम्बे गानों का गाना भी अनुपयुक्त ही है। किसी-किसी नाटक के सभी स्त्री पात्र गान-प्रिय प्रतीत होते हैं और परिणाम स्वरूप संगीत भी कहीं-कहीं अत्यन्त अरुचिकर प्रतीत होता है। परन्तु तो भी ये नाटकीय गीत साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण अवश्य हैं और गीति-काव्य की अधिकांश विशेषताएँ उनमें दृष्टि-गोचर होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिव्यंजना की दृष्टि से 'प्रसाद' का गीत-काव्य पूर्ण सफल कहा जा सकता है। अब हम कला की दृष्टि से विचार करें। भावों की अभिव्यंजना भाषा द्वारा होती है। भाषा और भाव का अभिन्न सम्बन्ध है। यदि भाव कविता की आत्मा है, तो भाषा निश्चय ही उसका कलेवर है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में काव्य-भाषा का स्थान ब्रजभाषा से खड़ी बोली ने ले लिया। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में ही वह साधारणत: गद्य की भाषा हो चुकी थीं और कुछ कविताएँ भी उसमें लिखी जाने लगी थीं, परन्तु उसको परिष्कृत और परिमार्जित कर काव्य के हेतु उपयुक्त बना देने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी को ही है। परन्तु द्विवेदी युग में भी भाषा का शब्द भंडार संकुचित सा रहा और छायावाद काल में जब काव्य के विषय, उपादान, रूप और शैली में आश्चर्यजनक उन्नति हुई तब खड़ी बोली की शुष्कता को दूर कर उसमें सरसता लाने का प्रयत्न किया गया और बहुत से नूतन शब्द काव्य भाषा में आए। 'प्रसाद' जी ने संस्कृत से तो शब्द ग्रहण किये ही पर साथ ही उर्दू, अँगरेजी और बंगला से भी काव्य-भाषा की नूतन गतिविधियाँ उधार लीं। कुछ बोलचाल के शब्दों को भी ग्रहण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया। इस प्रकार एक समृद्ध भाषा-शैली का विकास 'प्रसाद' जी द्वारा हुआ। यही कारण है कि उसके गीतों में तत्सम संस्कृत तथा ध्वनि-व्यंजक शब्दों की बहुलता देख पड़ती है।

'प्रसाद' के इन छायावादी गीतों की काव्य-भाषा में कई नूतन-नूतन शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। ये नूतन शब्द दो प्रकार के थे। प्रथम तो ध्वन्यर्थ व्यंजक और दूसरे विशेषण तथा भाव वाचक संज्ञा। 'प्रसाद' की काव्य-भाषा में स्पन्दन, स्तम्भित, उत्तालतरंग, उल्लास, लोल-हिलोर, झूम झूम, रोक, निर्झर, झर झर, आह, बुद् बुद्, कलख, कल-कल, मुखरित, छल-छल, मर्मर, सन-सन, टल-मल, कलरव, कंपन, उभार, गुन-गुन, हहर-हहर, चंचल आदि कई इसी प्रकार के ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार कोमल कान्त पदावली के प्रयोग से भाषा में मधुरता का आविर्भाव हुआ और गीतों में स्वाभाविक ही संगीतात्मकता आ गयी।

इसके अतिरिक्त इन गीतों की भाषा में चमत्कारपूर्ण तथा आलोकमय विश्लेषणों का प्रयोग भी हुआ है। अनेक नये विशेषण हिन्दी और संस्कृत शब्दों से बनाये गये तथा कहीं-कहीं भाषा अत्यधिक समृद्ध और संस्कृत गर्भित प्रतीत होती है। इस प्रकार 'प्रसाद' के गीति काव्य की भाषा में उत्तम भाषा के समस्त गुण दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी भाषा में अभिव्यंजना शक्ति, संगीत, माधुर्य और चित्रात्मकता देख पड़ती है। भाषा में अलंकारों का भी सफल प्रयोग हुआ है। 'छिल-छिलकर छाले फोड़े मल-मलकर मृदुल चरण से' जैसी अनुप्रासमयी पंक्तियों के अतिरिक्त उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी उनकी भाषा में दृष्टिगोचर होते हैं। 'प्रसाद' जी ने मानवीकरण नामक अलंकार का भी प्रयोग किया है, जिससे कि गीतों में व्यंजना-शक्ति और प्रभाव शीलता की वृद्धि हो गयी है, जैसे—'अम्बर पनघट में डुबो रही, ताराघट ऊषा नागरी' में ऊषा को 'नागरी' का रूप दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'प्रसाद' जी के गीति काव्य में शैलियों की विविधता भी दृष्टिगोचर होती है। गीति काव्य की अधिकांश प्रचलित शैलियों को उन्होंने अपनाया है तथा कुछ नूतन शैलियाँ भी उनकी कृतियों में देख पड़ती हैं। हिन्दी साहित्य में शोक गीतों का सर्वथा अभाव-सा रहा है और एकमात्र 'आँसू' ही शोक गीत काव्यों के अभाव को पूर्ण करता है। 'आँसू' का प्रभाव अन्य कवियों पर भी पड़ा और हिन्दी में भी 'आँसूवाद' या दुःखवाद का प्रारम्भ हुआ तथा कई कवियों ने विरह का मर्मस्पर्शी चित्रण किया।

आधुनिक हिन्दी गीति-काव्य की सर्व प्रधान विशेषता अभ्यान्तरिकता है। यह गीति काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। अभ्यान्तरिक गीति-काव्य में कवि अपने अन्तर्गत की भावानुभूति का चित्रण करता है। इसमें कवि अपनी अतः प्रवृत्तियाँ और मनोवृत्तियों का काव्यमय रूप चित्रित करता है, जो उसकी प्रकृति के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। व्यक्ति की लौकिक भावनाओं में ही अनन्त का दर्शन और असीम की व्यंजना करने का प्रयत्न किया जाता है। अभ्यान्तरिक गीति-काव्यों में भी कुछ विभिन्न शैलियाँ देख पड़ती हैं। प्रथम शैली में कवि अपने व्यक्तिगत अनुभवों और भावानुभूति का ही चित्रण करता है। अर्थात् इन गीतों में कवि अपनी अभ्यान्तरिक भावनाओं, मनोवृत्तियों और रसानुभूति का अनेक रूपों में चित्रण करता है, जिसमें कि इस वेदनामय विश्व में आशा का उज्ज्वल सन्देश प्रस्तुत किया गया है।

निम्नांकित पंक्तियों में भी कवि अपने निराशपूर्ण मानस की झांकी कलापूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है—

रे मन !
न कर तू कभी दूर का प्रेम !
निष्ठुर ही रहना अच्छा है, यही करेगा क्षेम।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देख न,
 यह पतझड़ वसन्त एकत्रित · मिला हुआ संसार;
 किसी तरह से उदासीन ही कट जाना उपकार।
या फिर
 जिसे चाह तू उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर
 मिला रहे मन-मन से, छाती-छाती से भरपूर।

अभ्यान्तरिक गीति काव्य का दूसरा भेद सम्बोध गीत है; जिसे कि अंगरेजी में Odd कहा जाता है। इन गीतों में कवि किसी भी प्राकृतिक वस्तु, किसी भी दृश्य या भावों और विचारों को संम्बोधित कर सकता है। हिन्दी में सम्बोध गीतों की बहुलता-सी है तथा प्रसाद, पन्त और निराला ने कई उत्कृष्ट सम्बोध गीतियों का सृजन किया है। 'प्रसाद' जी किरणों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

किरण! तुम क्यों बिखरी हो आज?
रंगी हो तुम किसके अनुराग?
स्वर्ण · सरसिज - किंजल्क समान
उड़ाती हो परमाणु-पराग।

गीति—काव्य में कभी कभी वर्ग विशेष की भावनाओं का चित्रण किया जाता है और अधिकांश राष्ट्रीय कविताएँ इसी प्रकार की श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। प्रसाद जी ने भी राष्ट्रीय गीत लिखे हैं; जिनमें जातीय गर्व, ओज और शालीनता विशेष रूप से चित्रित की गयी है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में ग्रीक सेनापति सेल्यूकस की पुत्री 'कार्नेलिया' द्वारा गाया गया राष्ट्रीय गीत हिन्दी गीति-काव्य के सर्व श्रेष्ठ राष्ट्रीय गीतों में गिना जाता है, जिसमें छायावाद की कोमलता और शालीनता के साथ-साथ भारत की गौरव भावनाओं को भी चित्रित किया गया है। अब 'प्रसाद' जी के एक अभियान गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिये, जिसमें स्वतंत्रता मानों स्वयं ही पुकार-पुकार कर कह रही है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिमाद्रि तुङ्ग शृंगसे
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'प्रसाद' जी के गीतिकाव्य में गीति-काव्य की समस्त विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। उत्तम-उत्तम भावों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ कला की दृष्टि से भी उनके गीत श्रेष्ठ ही कहे जायेंगे। 'प्रसाद' के गीतों में संगीतात्मकता भी है। यह अवश्य है कि उनका गीति-काव्य संगीत की कसौटी पर कसने से पूर्णतः निर्दोष ही प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उन्होंने संगीत के नियमों को ध्यान में रखकर गीति-काव्य का सृजन नहीं किया था और यदि वे ऐसा करते भी तो कावित्व का ह्रास होने का भय था। अतएव राग रागनियों की आदर्श योजना के साथ-साथ उन्होंने गीतों के कवित्व को भी अक्षुण्ण रखा है। गीतों में संगीत और साहित्य का संस्कृत (क्लासिल) रूप प्रस्तुत कर उन्होंने हिन्दी गीति-काव्य का स्तर ऊँचा उठा दिया। इस प्रकार आधुनिक शैली के गीतों की रचना प्रसाद जी ने ही सर्व प्रथम की। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि अन्य छायावादी कवियों के गीतों के सदृश 'प्रसाद' के गीतों को उतनी अधिक लोक प्रियता न प्राप्त हो सकी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 'प्रसाद' के गीति-काव्य ने हिन्दी काव्य में युगान्तर सा उपस्थित कर दिया और हिन्दी काव्य को समृद्ध बना दिया। श्री रामनाथ 'सुमन' ने प्रसाद' के गीति-काव्य की प्रशंसा करते हुए उचित ही लिखा है—

गीति-काव्य के लिये कवि में जो सौन्दर्य-वृत्ति (aesthetic sense) होनी चाहिये, वह कवि प्रसाद के जीवन में ओत-प्रोत थी। इस प्रकार के काव्य के लिये स्वानुभूति दूसरा गुण है, जिसकी मात्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'प्रसाद' में पर्याप्त रूप से हम पाते हैं। मतलब यह कि कवि में गीति-काव्य के सम्पूर्ण उपादान वर्तमान थे और यह क्षेत्र उसकी प्रतिभा के बहुत अनुकूल था।"

हिंदी साहित्य-समीक्षा के विविध मानदंड

समीक्षा को आलोचना भी कहते हैं और 'सिद्धान्त कौमुदीनामक संस्कृत के प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ के 'नन्द ग्रहपचादिभ्यो ल्युणिन्यच:' नामक सूत्रानुसार आलोचना शब्द संस्कृति की 'लुच' धातु से निर्मित हुआ है। 'लुच' धातु के आगे 'ल्यु' प्रत्यय लगाया जाता है और 'लशक्वतद्धिते तस्य लोप:' नामक सूत्रानुसार 'लू' विलुप्त हो जाता है और केवल 'यु' अवशिष्ट रहता है जिस पर 'अन्' के प्रभाव से 'लोच' बनता है और इस प्रकार 'अन्' से सम्मिलित हो जाने पर 'लोचन' शब्द बनता है जिसे कि साधारणत: नेत्र या दृष्टि कहा जाता है। लोचन के पूर्व 'आ' को संयुक्त कर देने से 'आलोचन' बनता है और-अंत में 'टापू' प्रत्यय लगाकर 'आलोचना' शब्द बनता है जिस का अर्थ साधारणत: देखना ही होता है। श्री० विनयमोहन शर्मा ने भी उचित ही लिखा है—"साहित्य के यथार्थ का नाम ही समालोचना है।" इस प्रकार किसी भी वस्तु या कृति की आलोचना करते समय उसका सांगोपांग बाह्य और आंतरिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्यवेक्षण करने के उपरान्त जो मत निर्धारित किया जाता है उस ही आलोचना या समीक्षा कहा जाता है। डा० श्यामसुन्दरदास के शब्दों में—"साहित्य क्षेत्र में, ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। यह आलोचना काव्य, उपन्यास नाटक, निबंध आदि सभी की हो सकती है, यहाँ तक कि स्वयं आलोचनात्मक ग्रंथों की आलोचना हो सकती है। यदि हम साहित्य का जीवन की व्याख्या मानें, तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"

वस्तु: समीक्षा का उद्भव तो उसी समय हो गया जब कि मानव रुचि का विकास हुआ होगा। अत्यंत प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में समालोचना का प्रसार होता आ रहा है क्योंकि मनुष्य मात्र में वस्तु निरीक्षण और उस के गुण दोष परीक्षण के साथ साथ अपना निजी विचार व्यक्त करने की प्रवृत्ति सर्वदा ही स्वाभाविक रूप में वर्तमान रहती है तथा वह अपनी रुचि के अनुरूप गुण-दोष जाँच कर उसे उत्तम या हीन श्रेणी के अंतर्गत रख देता है। इस प्रकार मनुष्य में समालोचना की प्रवृत्ति जन्म काल से ही रहती है और उसकी रुचि का विकास ही समीक्षा के उद्भव तथा विकास का इतिहास है। ऐसे पाठकों का भी नितान्त अभाव नहीं है जोकि साहित्य समीक्षा की उपादेयता पर संदेह प्रकट करते हैं और आलोचक के महत्व को तनिक भी स्वीकार नहीं करते क्योंकि उनका विचार है कि जितना समय विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी गई आलोचनाओं के अध्ययन में व्यय होता है उतने में ही वल्कि उससे भी न्यून समय में मूल रूप से रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है। उनका मत है कि सूर कवीर तुलसी आदि के विषय में समीक्षकों द्वारा लिखी गई समीक्षाएँ पढ़ने की अपेक्षा उनकी काव्य कृतियों का मूल रूप से आनन्द प्राप्त करना अधिक उत्तम है। यह अवश्य है कि आज मौलिक साहित्य समालोचनात्मक पुस्तकों और व्याख्याओं के कारण विलुप्ता सा होता जा रहा है तथा मूल रचनाओं की अपेक्षा समीक्षाओं तथा व्याख्याओं का ही अध्ययन कर साहित्य के विद्यार्थी संतोष प्राप्त कर लेते हैं और इस प्रकार यह आक्षेप कि समालोचनाएँ साहित्य के अध्ययन में बाधाएँ प्रस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर रही हैं निरा उपेक्षणीय ही नहीं माना जा सकता किन्तु इस प्रकार के आक्षेपों के होते हुए भी समालोचना की महत्ता और उपादेयता को विस्मरण नहीं किया जा सकता। मूल साहित्य और समालोचना के पारस्परिक सम्बन्ध को यदि हृदयंगम कर लिया जाय तो समीक्षा के प्रति इस प्रकार की शंकाएँ और आक्षेप आप ही आप भ्रमपूर्ण तथा निराधार से प्रतीत होंगे। सौंदर्यानुभूति ही मनुष्य की सबसे बड़ी पिपासा है और 'सत्यप्रिय' जाव होते हुए भी वह प्रारम्भ से ही सौंदर्य का उपासक रहा है। जीवन में उसे जो रुचिकर प्रतीत होता है उसी सौंदर्य से वह आकर्षित भी होता है और इस प्रकार साहित्य में उन्हीं आदर्शों का चित्रण किया जाता है जिनके कि वह प्रभावित होता है। मानव जीवन ही साहित्य का मूलविषय माना जाता है तथा समीक्षा का क्षेत्र भी वस्तुतः मानव जीवन ही है और इस प्रकार समालोचना साहित्य में अभिव्यक्त कलाकार के महान् व्यक्तित्व की ही व्याख्या करती है। साहित्य के अन्य विविध अंगों में जिस प्रकार मानव जीवन की व्याख्या होती है उसी प्रकार समीक्षा में भी उन विविध अंगों में अभिव्यक्त मानव जीवन की व्याख्या की जाती है। इस प्रकार साहित्य तथा समीक्षा के क्षेत्र में विभिन्नता नहीं है बल्कि उचित तो यह होगा कि यदि हम यह कहें कि समालोचना रूपी वातायन से ही हम साहित्यगगन की सुषमा निहार सकते हैं। इसलिए मनुष्य में प्रारंभिक काल से लेकर आधुनिक काल तक आलोचनात्मक अभिरुचि उसी प्रकार बनी हुई है चाहे उसके दृष्टिकोण में विभिन्नता अवश्य आ गई हो। मानव रुचि में विभिन्नता का आविर्भाव होने से स्वाभाविक ही समीक्षा शैलियों में भी विभिन्नता आ गई होगी और इसीलिए हिंदी के समालोचना साहित्य में समीक्षा के भिन्न-भिन्न मानदंड प्रचलित भी हैं।

साहित्य समीक्षा की शैलियों के भेद हमारे हिंदी साहित्य के लिए सर्वथा नवीन ही नहीं है क्योंकि यह तो सर्वविदित ही है कि भामह के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्यालंकार, दंडी के काव्यादर्श, मम्मट के काव्य प्रकाश, आनंदवर्धन के ध्वन्यालोक, विश्वनाथ के साहित्यदर्पण और राजेश्वर के काव्य मीमांसा आदि ग्रंथों में शब्द अर्थ और रस की जितने विस्तार और गहनता के साथ विवेचना की गई है उतनी अन्य किसी देश के प्राचीन साहित्य में नहीं की गई। पाश्चात्य समालोचकों के बहुत पूर्व हमारे प्राचीन आचार्यों ने न केवल साहित्य समीक्षा के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है बल्कि अपनी उत्कृष्ट विवेचना-शक्ति के द्वारा समालोचना को विज्ञान और दर्शन की पारिधि में पहुँचाने की चेष्टा भी की है। 'काव्य मीमांसा' में तो राजशेखर ने संस्कृत आलोचना पद्धति के भेद भी अंकित किए हैं। इन प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों का अवलोकन करने से स्पष्ट रूप में ज्ञात होता है कि साहित्य समीक्षा को शास्त्र और परीक्षण नामक दो भेदों में विभाजित किया जा सकता है। शास्त्र के अन्तर्गत समीक्षा के सिद्धांतों कोनिर्धारित किया जाता है और उसमें साहित्य के अन्य अंग उपांगों-काव्य, उपन्यास आदि के रचनातंत्र के नियमों को भी अंकित किया जाता है तथा 'परीक्षण' में तो निर्धारित समीक्षा-सिद्ध के आधार पर साहित्य की विभिन्न कृतियों का मूल्यांकन किया जाता है। यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि 'परीक्षण' करते समय शास्त्रीय मापदंड को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं कर लिया जाता बल्कि आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन भी कर दिया जाता है। पाश्चात्य जगत में तो शास्त्रीय मापदंड को किस रूप में और कितने अंश ग्रहण किया जाय इस प्रश्न को लेकर ही समीक्षा की विविध शैलियों की उत्पत्ति हुई है और होती जा रही है। पाश्चात्य जगत् के सर्व प्रथम साहित्याचार्य प्लेटो ने कला का सत्य से अभिन्न सम्बन्ध माना है। प्लेटो की समीक्षा पद्धति आदर्शवादी कही जाती है। यद्यपि उसने यथार्थ वाद पर भी जोर दिया है। उसके पश्चात् अरस्तू लांगीनस होरेस, आदि ने काव्य साहित्य और सामान्य साहित्य में विभिन्नता प्रदर्शित करते हुए महाकाव्य और दुःखान्त नाटकों के नियम निर्धारित किए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे जो कि उनके उपरांत भी बहुत दिनों तक प्रचलित रहे। यद्यपि शेक्सपियर आदि ने इन नियमों की प्रायः उपेक्षा ही की है किन्तु आगे चलकर पुनरुत्थान के युग में बौद्धिकता के प्रभाव से समीक्षा के नियमों में निश्चित रूप से परिवर्तन होने लगा। ट्यूडर काल म ही एलीजा बेथ के शासन काल में समालोचना का समयानुकूल मापदंड उपस्थित न होने के कारण समीक्षकों को ग्रीक तथा लैटिन के साहित्य नियमों का अनुसरण करना पड़ता था। शनैः शनैः इङ्गलैंड में इन शास्त्रीय नियमों को शिथिल करने की प्रवृत्ति बलवती होने लगी। यद्यपि अठारहवीं सदी में भी ड्रायडन, एडीसन रेनाल्डस और जॉनसन ने प्राचीन शास्त्रीय नियमों के आधार पर ही आलोचनाएँ की थीं किन्तु उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजनैतिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप इन नियमों का प्रभाव अवरुद्ध सा होने लगा और दि एडिनबरा रिव्यू, दिक्वार्टली और ब्लेक बुड्स में प्रकाशित होने वाली तत्कालीन समीक्षाओं में राजनैतिक विचार धारा की प्रधानता सी देख पड़ने लगी। जैफ्री इस युग का प्रसिद्ध समीक्षक है तथा मैकाले ने समालोचना के अनुशीलन में रस ग्रहण को ही आवश्यक माना है। कार्लाइल ने अपने युग के कवियों को जर्मन साहित्य के परिशीलन की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास किया है तथा आर्नल्ड ने सामान्य कोटि की कृतियों की अपेक्षा उत्कृष्टतम रचनाओं के अध्ययन की प्रेरणा तत्कालीन लेखकों को दी है। मौल्टन ने आधुनिक आलोचना की व्याख्यात्मक, निर्णयात्मक, दार्शनिक और स्वतंत्र अथवा आत्म प्रधान नामक चार प्रमुख प्रणालियाँ मानी हैं तथा व्याख्यात्मक आलोचना को ही शेष तीनों प्रकार की समीक्षाओं का आधार माना है। कालांतर में युग की प्रवृत्तियों के अनुरूप कुछ अन्य प्रकार के मानदंड भी समीक्षा क्षेत्र में प्रचलित हुए डा० श्यामसुन्दरदास ने तो 'साहित्यालोचन' में सैद्धान्तिक (Speculative) व्याख्यात्मक (Inductive); निर्णयात्मक (Judicial) और स्वतंत्र अथवा आत्म प्रधान (Free or Subjective) नामक चार प्रमुख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समीक्षा शैलियाँ मानी हैं। यहाँ इन चारों पर संक्षेप में प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा।

सैद्धांतिक समीक्षा—के अन्तर्गत समालोचना के सामान्य सिद्धांतों को निर्धारित किया जाता है तथा साहित्य के विभिन्न अंग-उपांगों काव्य-नाटक, उपन्यास, कहानी इत्यादि के रूपों की विवेचना कर उनके लक्षण भी निश्चित किए जाते हैं। किन सिद्धान्तों और नियमों का साहित्यालोचन में अनुसरण किया जाय तथा किसी भी कवि या कलाकार की कृतियों का परीक्षण करते समय समीक्षक किन सिद्धान्तों का आधार ले और नाटक, उपन्यास तथा कथा की विवेचना में कौन कौन से तत्त्व आवश्यक हैं; आदि प्रश्नों पर सैद्धांतिक समीक्षा के ही अन्तर्गत प्रकाश डाला जाता है। इस प्रकार सैद्धांतिक समीक्षा में सिद्धान्तों के निर्धारण को ही प्रधानता दी जाती है और वह साहित्य का मापदंड तो उपस्थित करती ही है साथ ही उसे समालोचना के शास्त्रीय पथ का चिरन्तन स्वरूप भी माना जाता है। अन्य प्रकार की समीक्षाएँ वस्तुत: भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से सैद्धांतिक समीक्षा के प्रयोगों के समान ही हैं। सैद्धांतिक समालोचना से विभिन्न युगों का न केवल साहित्यिक इतिहास बल्कि साहित्यिक वातावरण भी ज्ञात होता है। सैद्धांतिक समीक्षा के नियम व्यक्तिश: आलोचक अथवा लेखक पर अवलम्बित न रहकर साहित्य की परम्परा पर आधारित रहते हैं अत: उनको निर्धारित करते समय, समय तथा वर्ग का ध्यान प्राय: नहीं रखा जाता अतएव सिद्धांतों में यदि कोई अभाव या दोष प्रतीत हों तो उसके लिए मूलाधार पर ही दृष्टिपात करना उचित होगा। सैद्धांतिक समीक्षा के आधार पर आलोचना करते समय समीक्षक अपनी व्यक्तिगत रुचि को अधिक महत्व न देकर प्राचीन या अर्वाचीन शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर ही अपना मत प्रस्तुत करता है।

संस्कृत साहित्य में तो साहित्य शास्त्र पर किया गया सम्पूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेचन सैद्धांतिक समीक्षा के ही अन्तर्गत आता है। संस्कृत साहित्य में रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय तथा ध्वनि सम्प्रदाय नामक समालोचना शास्त्र के पाँच सम्प्रदाय थे। रस सम्प्रदाय में रस को ही काव्य की आत्मा माना जाता था, अलंकार सम्प्रदाय में अलंकारों को ही सर्वस्व माना जाता था; रीति सम्प्रदाय में गुण और रीति युक्त रचना को ही महत्व दिया जाता था तथा वक्रोक्ति सम्प्रदाय में वक्रोक्ति को और ध्वनि सम्प्रदाय में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से विभिन्न व्यंगार्थ को ही महत्व दिया जाता था। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में नाट्यशास्त्र, काव्यादर्श, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, ध्वन्यालोक, काव्य मीमांसा आदि ग्रंथों द्वारा सैद्धांतिक समालोचना को विकसित किया गया। हिंदी साहित्य में रीति कालीन कवियों ने अवश्य परीक्षण की अपेक्षा शास्त्रीय समीक्षा को प्रधानता दी यद्यपि उनके सिद्धान्त मौलिक न होकर विशेष रूप से संस्कृत ग्रंथों पर ही आधारित थे। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी में शास्त्रीय-समीक्षा का प्रारम्भ सत्रहवीं शताब्दी से ही माना जाता है और केशव, चिंतामणि, जसवंतसिंह, भूषण, मतिराम तथा देव आदि प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि वस्तुतः सैद्धांतिक समीक्षक भी थे। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में डा० श्यामसुन्दर दास की साहित्यालोचन, डा० सूर्यकांत शास्त्री की साहित्य मीमांसा, श्री गुलाबराय की सिद्धान्त और अध्ययन, तथा काव्य के रूप श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु की जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त तथा काव्य में अभिव्यंजनावाद, श्री बलदेव उपाध्याय की 'भारतीय साहित्य शास्त्र' श्री रामदहिन मिश्र की काव्यालोक, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'साहित्य का साथी' डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, की 'साहित्य विवेचन' का वाङ्मय विमर्श डा० भागीरथ मिश्र, की 'हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास' श्री सुमन और मल्लिक आदि कृतियाँ वस्तुतः सैद्धान्तिक समीक्षा के अन्तर्गत ही मानी जाती हैं। भानु, मिश्रबन्धु, लाला भगवानदीन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हरिऔध, रसाल, कन्हैयालाल पोद्दार आदि ने विभिन्न काव्यांगों—रस और अलंकार आदि—का शास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्री नंददुलारे वाजपेयी, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री विनय मोहन शर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, डा० नगेन्द्र, श्री नलिन विलोचन शर्मा, डा० सत्येन्द्र, श्री प्रभाकर माचवे, डा० देवराज, प्रभृति समीक्षकों ने अपने स्फुट निबंधों में साहित्य शास्त्र का विवेचन किया है। इन समीक्षकों के अधिकांश निबंधों में साहित्य के विभिन्न अंगों की समस्याओं और कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की प्रमुख प्रवृत्तियों पर तो प्रकाश डाला ही गया है तथा साथ ही साथ भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों का समन्वय करने का भी प्रयास किया गया है। अँग्रेजी साहित्य में भी मैथ्यू आर्नल्डि, गेनिंग और रिचार्डस् को सैद्धांतिक समीक्षक के रूप में ही ख्याति प्राप्त हुई है। सैद्धांतिक समीक्षा का एक उदाहरण देखिए—

"नाटक के कथानक को कथावस्तु कहते हैं। इसको अंग्रेजी में प्लाट (Plot) कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है—एक आधिकारिक अर्थात् मुख्य, दूसरी प्रासंगिक अर्थात् प्रसंग वश आई हुई या गौण। आधिकारिक उसे कहते हैं जिसमें प्रधान पात्रों से सम्बन्ध रखनेवाली कथा का मुख्य विषय हो। फल के स्वामी को अधिकारी कहते हैं। आधिकारिक कथा का सूत्र प्रारम्भ से फलप्राप्ति तक रहता है प्रासंगिक कथावस्तु का सम्बन्ध नायक और नायिका से न रहकर अन्य पात्रों से रहता है। वह कथा भाग मूल कथा की गति को बढ़ाने के लिए होता है।"

—(काव्य के रूप: श्री गुलाबराय)

व्याख्यात्मक समीक्षा-शैली—की प्रशंसा करते हुए डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है—"वास्तव में व्याख्या या विश्लेषण ही ऐसी प्रधान वस्तु है कि जिस पर चारों प्रकार की समालोचना अवलंबित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है।" मौल्टन ने भी व्याख्यात्मक आलोचना को ही प्रधानता दी है। इस प्रकार की समीक्षाशैली की विशेषता उसकी व्याख्या पर केन्द्रित रहती है और इसमें साहित्यिक रचनाओं के विश्लेषण तथा व्याख्या पर ही विशेष बल दिया जाता है। व्याख्या द्वारा न केवल हम सामान्य सिद्धान्तों तक पहुँचते हैं और किसी भी कृति के आभ्यंतरिक स्वरूप से अवगत हो सकते हैं बल्कि उसका महत्व भी आँक सकते हैं। व्याख्यात्मक समीक्षा में समीक्षक किसी भी कृति का अध्ययन एक न्यायाधीश अथवा वकील की भाँति न कर एक अन्वेषक के रूप में करता है और आलोच्यकृति की अन्तरात्मा में प्रविष्ट होकर सूक्ष्माति-सूक्ष्म भावों से परिचित हो जाता है तथा इस प्रकार वह न केवल रचना बल्कि रचयिता की शैली दृष्टिकोण और विचारों से अपनी बुद्धि का सामंजस्य स्थापित कर उदारता पूर्वक उस कृति की व्याख्या कर उसके प्रति एक सामान्य धारणा निर्मित करता है। व्याख्यात्मक समीक्षा इसीलिए व्यापक, समीचीन और श्रेष्ठतम मानी जाती है तथा उसे न्यायपूर्ण और बुद्धि संगत भी कहा जाता है। यद्यपि कुछ समालोचकों का यह भी मत है कि व्याख्यात्मक समीक्षा आलोच्य कृति के साहित्यिक सौंदर्य को विनिष्ट कर देती है परन्तु वास्तविकता तो यह है कि व्याख्यात्मक पद्धति द्वारा ही पाठक किसी भी कृति के बाह्य और आभ्यंतरिक रूप से परिचित हो पाता है अतएव यह कहना कि व्याख्यात्मक समालोचना साहित्यिक सौंदर्य का ह्रास करती है भ्रममूलक ही माना जायगा। यह अवश्य है कि समीक्षक की असावधानी के फलस्वरूप व्याख्यात्मक समीक्षा पद्धति कभी-कभी दोषपूर्ण भी हो जाती है; अतएव समालोचक के लिए वह आवश्यक है कि वाह्य वह साक्ष्यों या निजी साक्ष्यों का अवलम्ब न लेकर केवल आलोच्य कृति के आभ्यंतरिक साक्ष्यों के आधार पर ही व्याख्या करे। व्यक्तिगत अभिरुचि का परित्याग करने पर ही एक वैज्ञानिक अन्वेषक की भाँति व्याख्यात्मक समीक्षा की जा सकती है। समालोचक को आलोच्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृति के भिन्न-भिन्न भागों की समीक्षा न कर उसके समष्टि रूप की ही समालोचना करनी चाहिए।

हिंदी साहित्य के आधुनिक समालोचकों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल विशेष रूप से व्याख्यात्मक समीक्षक के रूप में ही प्रसिद्ध हैं और उनकी समीक्षाओं में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जो कि व्याख्यात्मक समीक्षा-शैली के लिए परमावश्यक मानी जाती हैं। शुक्ल जी ने 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका मे 'जायसी' की, 'गोस्वामी तुलसीदास' में तुलसी की और 'भ्रमर गीत सार' की भूमिका में सूरदास की व्याख्यात्मक समीक्षा ही की है। जैसा कि डा० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है—"रामचन्द्र शुक्ल ने किसी कवि पर समालोचना लिखने के पहले उसके काव्य के साथ ही साथ उसका जीवन चरित्र, वह समाज जिसमें वह रहता था, साहित्यिक परंपरा जिसे वह मानता था, वह समय और वातावरण जिसमें वह पैदा हुआ तथा उनके प्रभाव इत्यादि बातों का अध्ययन किया। संक्षेप में वे कवि और जनता के बीच एक माध्यम (Interpreter) के समान थे।" शुक्ल जी समीक्षा शैली में कुछ निजी विशेषताएँ भी थीं और इसीलिए उनकी समालोचना प्रणाली तत्कालीन परिस्थितियों में सर्वथा नवीन ही थी। उनके साहित्यादर्शों को कुछ आवश्यक संशोधनों और परिष्कारों के साथ अन्य दूसरे परवर्ती समीक्षकों ने भी ग्रहण किया है तथा इस प्रकार उनकी ही समीक्षा शैली जिसमें कि व्याख्यात्मक समालोचना का समुज्ज्वल रूप दृष्टिगोचर होता है आज भी प्रचलित है। डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री नंददुलारे वाजपेयी, श्री गुलाबराय, श्री विनयमोहन शर्मा, श्री रामनाथ 'सुमन' श्री ललिताप्रसाद शुक्ल, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र श्री, परशुराम चतुर्वेदी, श्री चंद्रवली पांडे, डा० रामकुमार वर्मा, डा० भगीरथ मिश्र, डा० सत्येन्द्र, डा० नगेन्द्र, डा० केशरीनारायण शुक्ल प्रकृति समालोचकों की कृतियों में व्याख्यात्मक समीक्षा का समुज्ज्वल रूप दृष्टिगोचर होता है व्याख्यात्मक समालोचना का एक उदाहरण देखिए—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा और साहचर्य्य दोनों का योग है। बाल क्रीड़ा के सखा सखी आगे चलकर यौवन-क्रीड़ा के सखी हो जाते हैं। गोपियों ने उद्धव से साफ कहा है—"लरिकाई को प्रेम कहौ, अलि कैसे छूटे"। केवल एक साथ रहते रहते भी दो प्राणियों में स्वभावत: प्रेम हो जाताहै। कृष्ण एक तो बाल्यावस्था से ही गोंपियों के बीच रहे, दूसरे सुन्दरता में भी अद्वितीय थे। अत: गोपियों के प्रेम का क्रमश: विकास दो प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से होने के कारण, बहुत ही स्वाभाविक प्रतीत होता है। बाल क्रीड़ा इस प्रकार क्रमश: यौवन क्रीड़ा के रूपमें परिणत होती गई है कि संधि का पता ही नहीं चलता। रूप का आकर्षण बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है! राधा और कृष्ण के विशेष प्रेम की उत्पत्ति सूर ने रूप के आकर्षण द्वारा ही कही है।"

(भ्रमरगीत सार: आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

निर्णयात्मक समीक्षा शैली—व्याख्यात्मक समीक्षा शैली के ठीक विपरीत होती है और उसमें साहित्य सम्बन्धी विभिन्न सैद्धान्तिक या शास्त्रीय नियमों के आधार पर आलोच्य कृति का गुण दोष विवेचन कर उसका साहित्यिक मूल्यांकन किया जाता है। निर्णयात्मक समीक्षा में समालोचक एक निष्णात न्यायाधीश के रूप में निर्णय करता है और व्याख्यात्मक समीक्षक की भाँति वह आलोच्यकृति में कला का रूप किस प्रकार का है इसका विश्लेषण न कर उसमें कला का रूप कैसा होना चाहिए था, इस पर प्रकाश डालता है। निर्णयात्मक समीक्षक अपनी निश्चित साहित्याभिरुचि के आधार पर ही किसी रचना की समीक्षा करता है और वह नवीनता को नियंत्रित करने की भी चेष्टा करता है। इस प्रकार की समीक्षा भ्रमपूर्ण ही मानी जाती है क्योंकि एक ही मापदंड पर समस्त कृतियों का या किसी एक सम्पूर्ण कृति का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। निर्णयात्मक समीक्षक बहुधा रूढ़िवादी ही होता है। यद्यपि किसी भी आलोच्य कृति पर निर्णय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देने के लिए किसी न किसी प्रामाणिक मापदंड की आवश्यकता होती है किन्तु इस दिशा में भी मतों में विभिन्नता पाई जाती है। पाश्चात्य समीक्षकों में कोर्टहोप जैसे विद्वान इस प्रकार की समीक्षा में अंतःकरण का सहयोग आवश्यक मानते हैं और कलाकार की आत्मा तथा स्वयं की अंतरात्मा दोनों को दृष्टि में रखकर साहित्याभिरुचि का एक प्रामाणिक मानदंड निर्धारित कर किसी भी कृति पर निर्णय देना उचित समझते हैं परन्तु जैसाकि कोर्टहोप का मत है कि इस प्रकार की समीक्षाओं से कलाकार की मौलिकता और प्रतिभा के विकास में बाधा भी पड़ सकती है अतः इनका अनुसरण करना उचित है। वस्तुतः निर्णयात्मक समीक्षा व्याख्या के अभाव में न्यायपूर्ण और उचित नहीं मानी जाती क्योंकि समीक्षक अपने निजी दृष्टि कोण का जितना अधिक परिचय दे पाता है उतना आलोच्य कृति की विशेषताओं का नहीं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ में इसी प्रकार की आलोचनाओं की बहुलता थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, श्री कृष्ण बिहारी मिश्र और श्री पद्मसिंह शर्मा की समीक्षा शैली विशेष रूप से निर्णयात्मक ही है। मिश्रबन्धुओं के 'हिंदी नवरत्न' और 'मिश्रबन्धु विनोद' में निर्णयात्मक समालोचना का निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है। निर्णयात्मक समीक्षा के कुछ उदाहरण देखिए :—

"देव ने घनाक्षरियाँ सवैयों से अधिक रची हैं। उत्तमता में भी वे सवैयों से न्यून नहीं हैं। इनकी कविता में पृष्ठ के पृष्ठ पढ़ते चले जाइए, प्राय: कोई बुरा छंद न पाइयेगा।"

(हिंदी नवरत्न: मिश्रबन्धु)

और भी—

"देव ने नायिकाओं का वर्णन ऐसा उत्कृष्ट किया है कि पूरी तसवीर खींच दी है। ऐसी सची तसवीरें खींचने में बहुत कम कवि समर्थ हुए हैं। वरन् यह कहना चाहिए कि ऐसी निर्दोष तसवीरें कोई भी कवि नहीं खींच सका।" (हिंदी नवरत्न मिश्रबन्धु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वतंत्र अथवा आत्म प्रधान समीक्षा शैली—में भावावेश की प्रधानता रहती है तथा समीक्षक आलोच्य कृति को अपने ही निजी भावों का आलम्बन बना लेता है। इस प्रकार की समीक्षा में समालोचक किसी विशिष्ट विवेचना पद्धति को ग्रहण न कर अपनी निजी रुचि और निजी आदर्शों के अनुरूप ही आलोच्य कृति की समालोचना करता है। इस प्रकार की समालोचना व्यक्ति प्रधान रहती है तथा भावावेश के आवरण में ही परिवेष्टित रहने के कारण उसमें विवेचना का निरा अभाव ही रहता है और उसकी उपादेयता पर संदेह ही व्यक्त किया जाता है। परन्तु कुछ विद्वानों ने आत्मप्रधान समीक्षा शैली का साहित्यिक मूल्य भी स्वीकार किया है तथा उनका मत है कि किसी भी कृति के गुण दोष देखने के लिए व्यक्तिगत रुचि को मापदंड बनाना ही अधिक सुन्दर है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावनाओं का प्रसार हो जाने से साहित्य में आत्म प्रधान आलोचना की बहुलता सी देख पड़ती है तथा समीक्षक किसी भी शास्त्रीय मापदंड को स्वीकार न कर अपनी निजी रुचि को ही प्रधानता देते हैं। श्री पद्मसिंह शर्मा, श्री कृष्णबिहारी मिश्र, डा० नगेन्द्र, डा० देवराज और श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की समालोचनाओं में इस प्रकार की आलोचना की झलक देख पड़ती है। आत्मप्रधान आलोचना का एक उदाहरण देखिए—

"अब हम महादेवी जी की भावभूमि में पैठने का प्रयत्न करेंगे। महादेवी जी के गीतों का विषय अन्तर्गत है, अर्थात् प्रणय मूलक संकल्प और भावनाएँ। साहित्य केवल सिद्ध यथार्थ का उद्घाटन ही नहीं करता, यथार्थ से गृहीत तत्त्वों का भावना और रूप के अभिनव संविधानों में ग्रंथन करके वह हमारे भाव जगत को प्रसार देता है। प्रेमियों का सूक्ष्म-कोमल सम्बन्ध-पट विशेषतः सुकुमार भावना सूत्रों के ताने बाने से ही बुना जाता है, जिसके कारण उसमें अपार्थिव मृदुता और आलोकपूर्ण स्निग्धता का समावेश हो जाता है। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्ध सजीव एवं रमणीय जान पड़े इसके लिए उसका लोक संवेदना से संपृक्त रहना जरूरी है। महादेवी जी के अति परिष्कृत एवं बौद्धिक गीतों में इस अंतिम तत्त्व की कमी का अभाव कभी-कभी खलने लगता है।"

(साहित्य चिन्ता: डा० देवराज).

चूँकि वर्तमान काल में हिंदी साहित्य की बहुमुखी प्रतिभा दृष्टिगोचर हो रही है अत: समीक्षकों ने भी साहित्यिक-मूल्यांकन के हेतु विभिन्न शैलियों का आधार लिया है और इस प्रकार इन चार प्रमुख प्रणालियों के अतिरिक्त कुछ अन्य समीक्षा-शैलियाँ भी आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रचलित हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही पाश्चात्य समीक्षकों से प्रभावित होकर प्रभाववादी (Impressionist) सौंदर्यवादी .(Aesthetical) प्रशंसावादी (Appreciative) और मार्क्सवादी (Marxian) नामक परीक्षण प्रणालियों आधुनिक साहित्य जगत को प्रभावित करने लगी थीं। इनके अतिरिक्त तुलनात्मक (comperative), ऐतिहासिक (Historical) मनोवैज्ञानिक (Psychological) अध्ययनात्मक (Descriptive) आदि कुछ अन्य मानदंड भी विशेष रूप से प्रचलित हैं।

तुलनात्मक समीक्षा शैली—में दो विभिन्न कलाकारों की एक ही विषय की कृतियों की तुलनात्मक दृष्टिकोण से विवेचना की जाती है। यद्यपि डा० श्यामसुन्दर दास ने "साहित्य की आलोचना तभी वैज्ञानिक होती है जब तुलना और इतिहास के आधार पर उसकी भित्ति उठाई जाती है" नामक उक्ति द्वारा तुलनात्मक समीक्षा पद्धति को वैज्ञानिक माना है किन्तु प्राय: समीक्षक अपने विषय निरूपण के लिए किन्हीं भी दो कलाकारों की कृतियों का उचित मूल्यांकन न कर अपनी निजी रुचि विशेष के कारण पक्षपात भी कर बैठते हैं और किसी भी कलाकार के प्रति अन्याय करना उनके लिए सहज हो जाता है। तुलनात्मक-अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए उत्तम तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri.

यह होगा कि समीक्षक किसी को भी छोटा या बड़ा न सिद्ध कर एक विशिष्ट तुलनात्मक पद्धति को ही ग्रहण करे अन्यथा कटु विवादों की वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। साथ ही तुलना के लिए पृष्ठ भूमि पर विचार करने के साथ साथ देश तथा काल का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यह तो सर्व विदित है कि हिंदी साहित्य में बिहारी तथा देव को लेकर किस प्रकार का वाद-विवाद हुआ था और बिहारी के भक्तों ने बिहारी को तथा देव के भक्तों ने देव को बड़ा सिद्ध करने का प्रयास किया था। देव और बिहारी के वाद-विवाद में जहाँ श्री पद्मसिंह शर्मा ने 'सतसई संजीवन भाष्य' में लाला भगवान दीन, ने 'बिहारी और देव' में, सिलाकारी जी ने 'बिहारी दर्शन' में तथा मिश्रबन्धु ने 'हिंदी नवरत्न' में प्रभाववादी पद्धति का ही अनुसरण किया है वहाँ श्री कृष्णबिहारी मिश्र की 'देव और बिहारी' नामक कृति में शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से ही देव की गुरुता को प्रमाणित किया गया है तथा इस प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—"इस पुस्तक में बड़ी शिष्टता, सभ्यता और मार्मिकता के साथ दोनों बड़े कवियों की भिन्न भिन्न रचनाओं का मिलान किया गया है। इसमें जो बातें कही गई हैं, वे बहुत कुछ साहित्यिक विवेचन के साथ कही गई हैं।" तुलनात्मक समीक्षा शैली से एक लाभ यह भी माना जाता है कि साहित्य सृजन द्रुतगति से होता है तथा कला की विस्तृत विवेचना भी विशेष रूप से होती है। साधारणतः तुलनात्मक समीक्षाशैली में आंशिक तुलना या अर्धतुलना का ही उपयोग किया जाता है और कभी कभी एक ही कलाकार में दो विभिन्न समालोचक गुण और दोष प्रदर्शित करने के हेतु इस समीक्षा पद्धपि का आधार ले लेते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि समालोचना के क्षेत्र में वैज्ञानिक तुलनात्मक पद्धति आवश्यक है और अभी हाल ही में प्रकाशित श्रीमती शचीरानी गुर्टू की प्रसिद्ध कृति 'साहित्य दर्शन' में तो कुछ प्रसिद्ध प्राचीन और अर्वाचीत संस्कृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा हिंदी साहित्यकारों की तुलना पाश्चात्य साहित्यकारों से की गई है। तुलनात्मक समीक्षा शैली का एक उदाहरण देखिए—"कहने की आवश्यकता नहीं कि क्रिस्टिना की कृतियों में कुमारीत्व की अमल-धवल मादकता, भोली सरलता और यत्किंचित् अल्हड़पन भी है, जिसमें विराग की धूमिल अरुणिमा यत्र तत्र बिखरी हुई है। महादेवी के काव्य में नारीत्त्व का क्रन्दन, असफल पत्नीत्व की खोज और द्विविधाग्रस्त अभाव जन्य उपराग है, जिसमें नारी-सुलभ समर्पण भावना और जीवन की गुत्थी न सुलझने के कारण दुर्भेद्य सघनता व्याप्त हो गई है। क्रिस्टिना नियति के क्रूर थपेड़ों से मर्माहित हो वेदना, अविश्वास और अदृष्ट की आशंका में डूबी हुई विरह के दर्दीले गीत गाती है, जिनमें हृदय की तड़पन, भावों की लड़खड़ाहट, आकुल प्राणों की कसक और आन्तरिक आवेगों का संघात है,—महादेवी के भावोद्वेगों में मीठी कचट होते हुए भी बचन-विदग्धता अमूर्त्तव्यंजना और बिखरती, मचलती भाव प्रवणता है, जो हृदय की गहराई में उतरती चलती है और जिसमें उठती-गिरती विपुल तरंगावलियों की सी अविराम धड़कन सुन पड़ती है। इन सब विषमताओं के बावजूद इन दोनों के ही काव्य विषाद की हल्की, झीनी धूमिलता से आच्छन्न हैं, जो उत्तरोत्तर सघन होती जाती है और जिसके अनल में न जाने कितने अन्तः स्वर अवाक होकर उनके अन्तर के मूक हाहाकार में एकाकार होने के लिए छटपटा रहे हैं।"

(साहित्यदर्शन: श्रीमती शचीरानी गुर्टू)

ऐतिहासिक समीक्षाशैली:—का विशेष महत्व इसीलिए माना जाता है क्योंकि किसी भी कृति के परीक्षण के पूर्व ऐतिहासिक आधारों पर दृष्टिपात करना नितान्त आवश्यक है चूँकि साहित्य समाज का प्रतिबिंब है अतः उस पर राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का स्वाभाविक ही प्रभाव पड़ता है। समालोचना के लिए ऐतिहासिक अनुशीलन की विशेष आवश्यकता होती है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि किसी भी कृति की समीक्षा करते समय उसकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि से अपरिचित रहने पर बहुत सी त्रुटियाँ हो सकती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि कोण से किसी कृति का परीक्षण करते समय इस प्रकार की त्रुटियाँ कदापि न हो सकेंगी। ऐतिहासिक समीक्षाशैली का आधार न लेने पर अन्य प्रकार की प्रणालियाँ अपूर्ण ही मानी जाती हैं। व्याख्यात्मक समीक्षा में विश्लेषण करते समय ऐतिहासिक तथ्यों का भी आधार लिया जाता है और तुलनात्मक तथा निर्णयात्मक प्रणालियों में भी उन तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है। सैद्धांतिक समीक्षा में तत्कालीन लोक रुचि तथा आदर्शों को ही ध्यान में रखकर सिद्धांत निर्धारित किए जाते हैं और मनोवैज्ञानिक तथा आत्मप्रधान समालोचना पद्धति में भी ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जाती। मनोवैज्ञानिक समीक्षा शैली का क्षेत्र अंतर्जगत माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक समीक्षा से प्रभावित बाह्य जगत का अनुभूत ज्ञान ही आभ्यंतरिक जगत का मूलाधार है। ऐतिहासिक समीक्षाशैली में युग विशेष की परिवर्तित होती हुई भावनाओं, धारणाओं और परिस्थितियों के आलोक में ही किसी कृति की विवेचना की जाती है तथा उस पर तुलनात्मक दृष्टिकोण और चिंतन पद्धति का प्रभाव पड़ने से उसमें वैज्ञानिकता का भी समावेश हो जाता है। ऐतिहासिक समीक्षा शैली का निखरा हुआ रूप हिंदी साहित्य के कई समालोचकों की कृतियों में दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण देखिए—

"इस प्रकार सूफी मत का उदय अरब में और विकास फारस में बहुत कुछ भारतीय संस्कृति के प्रभाव से हुआ। उनका अद्वैत मूलक सर्वात्मवाद भारतीय दर्शन का दान है। नियोप्लेटौनिक सिद्धांतों ने उनकी दार्शनिक तृषा को उभाड़ा अवश्य होगा, परन्तु उनके सिद्धान्तों के अध्ययन से जान पड़ता है कि उसकी शांति भारतीय सिद्धान्तों से ही हुई। जन्मांतरवाद, विरक्त जीवन, फरिश्तों के प्रति पूज्य भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(बहुदेववाद) ये सब इस्लाम के विरुद्ध हैं और सूफी संप्रदाय को बाहरी संसर्ग से प्राप्त हुए हैं। इनमें से विरक्त जीवन तथा फरिश्ता पूजन में ईसाई प्रभाव मानना ठीक है परन्तु जन्मांतरवाद स्पष्ट ही भारतीय है। उनका 'फना' भी बौद्ध 'निर्वाण' का प्रतिरूप है। परन्तु बौद्ध निर्वाण की तरह स्वयं साध्य न होकर वह 'मन मारण' के द्वारा द्वैतभावना का नाशकर 'बका' अथवा 'अपरोक्षानुभूति' का साधन है। प्रसिद्ध सूफी फकीर वायजीद ने 'फ़ना' का सिद्धान्त अबू अली से सिंध में सीखा था। अबू अली को प्राणायाम की विधि भी मालूम थी, जिसे वे पास-ए-अनफास कहते थे। सूफियों पर भारतीय संस्कृति का इतना प्रभाव पड़ा था कि उनको दिल की मूर्ति के लिए भी विरोध न रह गया था और वे 'बुत' के परदे में भी खुदा को देख सकते थे। प्रभाव चाहे जहाँ से आया हो, इतना स्पष्ट है कि हिंदू विचार परंपरा और सूफी विचार परंपरा में अत्यंत समानता है।"

—(हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय: डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)

मनोवैज्ञानिक समीक्षा शैली—में मनोविज्ञान की प्रधानता रहती है तथा इसमें कवि और काव्य या किसी अन्य कृति के मूल में स्थित उन भावों, आदर्शों और उद्देश्यों की विवेचना की जाती है जिनसे प्रभावित होकर उनका सृजन हुआ है। बाह्यजगत की आभ्यंतरिक जगत को प्रभावित करनेवाली परिस्थितियों का भी यह पद्धति विश्लेषण करती है। वर्तमान युग मनोवैज्ञानिक युग कहा जाता है और फ्रायड, युंग तथा एडलर के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तो अब बहुत अधिक प्रचलित हो गए हैं। वर्तमान युग में पाश्चात्य समीक्षक तो विशेष रूप में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही साहित्य का मूल्यांकन करते हैं और इस प्रकार व्यक्तिगत स्वभाव तथा सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और पारिवारिक परिस्थितियों से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं के आलोक में ही कवि या कलाकार की कृतियों को देखा जाता है। हिंदी साहित्य में डा० रामविलास शर्मा, श्री इलाचन्द्र जोशी, श्री अज्ञेय, श्री शांतिप्रिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्विवेदी आदि की समीक्षाएँ इसी कोटि की हैं। मनोवैज्ञानिक समीक्षा शैली का एक उदाहरण देखिए—

"पंत में वह आत्मस्थता है जो बाहरी तूफानों में भी प्रकृतिस्थ रहती है। इसीलिए उनमें उद्वेलन नहीं, सुस्पन्दन है। गर्जन तर्जन और कोलाहल उनके स्वभाव में नहीं। उपवन में तूफान के आने पर बड़े-बड़े वृक्षों की जो चरमराहट होती है वह एक कलित कोमल कुसुम की नहीं, उसका तो हिल भर जाना काफी है। 'वह्नि' बाढ़, झंझा के भूपर' पंत का भी 'कोमल मनुज कलेवर' हिलडुल गया है। जहाँ मानसिक संघर्ष उनकी चेतना को आलोड़ित कर गया है, वहाँ उनकी अभिव्यक्ति में तीव्रता भी आ गयी है, यथा 'परिवर्तन' में तथा यत्र तत्र नवीन रचनाओं में। किन्तु उत्क्रांति को अंगीकार करके भी वे सृजन के प्रति तन्मय हैं। अन्य प्रगतिशील कवि जब कि क्रांतमुख हैं, पंत निर्म्माणोन्मुख भी क्रांति के बाद जो उत्तरदायित्व कवि पर आता है, पंत ने उसे सँभाला है।"

—(सामयिकी: श्री शांतिप्रिय द्विवेदी)

प्रभाववादी समीक्षा शैली—वस्तुतः स्वतंत्र अथवा आत्मप्रधान आलोचना का ही परिवर्द्धित रूप है और इस प्रकार उसमें भी व्यक्तिगत भावनाओं तथा रुचि को ही प्रधानता दी जाती है। इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि यदि समीक्षक की निजी भावनाएँ और अभिरुचि व्यापक हुई तो वह अपने समीक्षात्मक विचारों को सुन्दरतम प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्त कर सकता है परन्तु यदि उसकी रुचि और भावनाएँ संकुचित हुई तो फिर न तो शैली ही प्रभावपूर्ण हो सकती है और न विवेचना ही गंभीर जान पड़ती है। इस प्रकार एक आंग्ल आलोचक ने प्रभाववादी समीक्षा पद्धति को 'अपनी ही भावनाओं की ओज पूर्ण गद्य में विशद अभिव्यक्ति' (Eloquently exhibiting his own sensibilities in animated prose) मानकर उचित ही किया है। सौन्दर्य वादी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समीक्षा शैली में समालोचक केवल साहित्य के सुन्दरम् पर ही प्रकाश डालता है चाहे फिर वह सौंदर्य कल्पना, भाव और शैली किसी का भी क्यों न हो। इसी प्रकार प्रशंसावादी समालोचना में न तो सिद्धान्तों को ही निर्धारित किया जाता है और न कृति का विश्लेषण ही किया जाता है बल्कि स्वानुभूति को अंकित करने का प्रयास किया जाता है। अध्ययनात्मक समीक्षा शैली वस्तुत: कोई नवीन शैली नही है बल्कि व्याख्यात्मक समीक्षा शैली का ही परिवर्तित और परिवर्द्धित रूह हैं।

मार्क्सवादी समीक्षा शैली—को प्रगतिवादी या समाजवादी समालोचना भी कहा जाता। है श्री अमृतराय के शब्दों में—"मार्क्स वादी आलोचना साहित्य की वह समाज शास्त्रीय आलोचना है जो साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या करते हुए समाज और साहित्य के अन्योन्याश्रय तथा गतिशील सम्बन्ध का उद्घाटन करती है और सचेतन रूप में समाज को बदलने वाले साहित्य की सृष्टि की ओर लेखक का ध्यान आकर्षित करती है।" मार्क्सवाद को वस्तुत: जीवन का एक सर्वांग सम्पूर्ण गतिशील दर्शन माना जाता है। मार्क्स ने साहित्यानुशीलन में सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक माना है और मानव जीवन तथा समाज की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की है। मार्क्सवादी व्याख्या चाहे एकांगी और अपूर्ण अवश्य हो तथा उसमें मानव-मनोवृत्तियों और उसके विभिन्न रूपों की कल्पना भी उचित ढङ्ग से न की गई हो, परन्तु इतना अवश्य है कि मार्क्सवादी समीक्षकों ने समालोचना के लिए साहित्य की कसौटी जीवन ही मानी है और जीवन रूपी कसौटी पर जो साहित्य खरा उतरे उसे ही वे सत्सहित्य मानते हैं। मार्क्सवादी समीक्षक किसी भी कवि या कलाकार की समालोचना करते समय उसको उसकी सम सामायिक सामाजिक पृष्ठ भूमि में रख कर यह जानना चाहते हैं कि उसने अपने युग द्वारा उठायी गयी मानवीय समस्याओं को समझाने या सुलझाने का प्रयत्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है या नहीं और यदि वह कवि या कलाकार अपने युग की मूलभूत समस्याओं की उपेक्षा करता है तो वे उसे निम्नस्तर का तथा हीन कोटि का समझते हैं।

मार्क्सवादी समालोचना की इधर बहुत से साहित्यकारों ने कटु आलोचना भी की है। सामाजिक जीवन की जटिलता स्वीकार करते हुए भी बहुत से विद्वान इस बात से सहमत नहीं हैं कि सामाजिक जीवन की व्याख्या में केवल आर्थिक तत्वों को ही महत्त्व दिया जाय तथा अन्य सांस्कृतिक, धार्मिक और बौद्धिक तत्वों की निरी उपेक्षा ही की जाय। मार्क्स वादी समीक्षक बहुधा आलोच्य कृति में केवल यही देखने का प्रयत्न करते हैं कि उसमें शोषक और शोषित वर्गों का संघर्ष चित्रित किया गया है या नहीं तथा शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है या नहीं और शोषक वर्ग पर उसकी विजय चित्रित की गई है या नहीं। यदि इन सबका उत्तर उसे 'हाँ' में मिलता है तो वह उसे साहित्य की श्रेष्ठतम कृति समझता है। परन्तु इस प्रकार के दृष्टि कोण से समीक्षक का निष्पक्ष बना रहना असंभव रहता है और इसी का कारण है कि बहुत से प्रगतिवादी आलोचकों की समालोचनाओं में 'टीटोवाद' 'ट्राटस्कीवाद' स्टालिनिस्ट पद्धति' आदि शब्दावलियों का प्रयोग देख पड़ता है तथा कई प्रसिद्ध प्रसिद्ध साहित्यकारों की चाहे फिर उनकी कृतियाँ शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति क्यों न रखती हो 'टीटोवादी' और ट्राटस्कीवादी' मानकर उपेक्षा की जा रही है। इस प्रकार मार्क्सवादी समीक्षक साहित्य की भावात्मक और कलात्मक दृष्टि से मूल्यांकन करना तो दूर रहा केवल अधूरे या एकांगी दृष्टिकोण से ही राजनैतिक धरातल पर किसी भी कवि या कलाकार की कृतियों का परीक्षण करते हैं और उनकी प्रगतिशीलता तथा अप्रगतिशीलता का निर्णय किया करते हैं। बर्ट्रेंडरसेल ने तो मार्क्स की भौतिक वादी ऐतिहासिक व्याख्या की भी आलोचना की है और उसे त्रुटि पूर्ण मानते हुए लिखा भी है। "न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो यंत्र और उससे उत्पन्न अर्थ तंत्र को ही इतिहास में निर्णयात्मक स्थान प्राप्त हो सकता है और न ही व्यक्ति तथा उसकी विभिन्न मनोवृत्तियाँ उसकी दास बनायी जा सकती हैं।" इस प्रकार मार्क्सवादी समीक्षक जब कला और कलाकार को अर्थ तंत्र का दास मानकर उसकी समालोचना केवल मात्र भौतिक और आर्थिक आधार पर करते हैं तो उनकी आलोचना स्वाभाविक ही एकांगी तथा अपूर्ण ही रहती है। अध्ययन और आलोचना में जीवन के विशाल रूप पर दृष्टिपात करना ही उचित है, केवल एकांगी रूप पर नहीं। इसी लिए श्री नंददुलारे वाजपेयी ने भी मार्क्सवादी समीक्षा शैली को अनुपयोगी मानते हुए लिखा है—"जिस प्रकार हम क्रिश्चियन धर्म के बिना भी धार्मिक और सभ्य बने रहे, उसी प्रकार मार्क्स-दर्शन के बिना दार्शनिक और प्रगतिशील बने रह सकते हैं, यदि हम अपनी प्रगतिशील परम्परा को पहचान सकें और अपनी दार्शनिक और संस्कृति विरासत के प्रति ईमानदार रह सकें।" मार्क्सवादी समीक्षकों में श्री शिवदान सिंह चौहान, डा० रामविलास शर्मा, श्री अमृतराय तथा श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त का उल्लेखनीय स्थान है। मार्क्सवादी समीक्षा शैली का एक उदाहरण देखिए—

"कोई भी लेखक अगर अपनी कला के प्रति ईमानदार बनना चाहता है तो उसे शोषित वर्ग का बनना होगा। वरना उसका समाजवाद पर, मजदूर पर, किसान पर, शोषण पर कलम चलाना अनधिकार चेष्टा छोड़ और कुछ नहीं है। यदि कोई लेखक या कवि अपनी ईमानदारी के बावजूद शोषितों के बीच नहीं जा पाता तो उसे अपने मध्यवित्त वाले लोगों के विषय में लिखना चाहिए। उसके सामने चेखोव की बहुत बड़ी मिसाल रहेगी। वह लिखे निम्न मध्यवर्ग की रोज-ब-रोज बढ़ती हुई दरिद्रता पर, दिखलाये कि कैसे ऐतिहासिक कारणों से, निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक और सामाजिक अवनति हो रही है और वह उत्तरोत्तर सर्वहारा की श्रेणी में समाता जा रहा है। उसे चाहिए कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह इस श्रेणी के लोगों की एक रस और नीरस जिन्दगी की ऊब और थकान के बारे में लिखे, उस बेमतलब सी जिन्दगी के बारे में जिससे आह्लाद कभी का विदा हो चुका, जिसमें औत्सुक्य की जगह अहर्निशि नोचनेवाली व्यर्थता ने ले ली। वह तसवीर खींच सकता है निम्न मध्यवर्ग के एक किरानी की जिसके जीवन का प्रत्येक पल जैसे एक भारी लाश की तरह उसके काँधों पर बैठा रहता है। ऐसे ही अनेक विषय किसी भी प्रगतिशील लेखक को सहज ही मिल जायेंगे।"

(नयी समीक्षा श्री अमृतराय)

इस प्रकार हिंदी साहित्य में समालोचना के विविध मानदंड प्रचलित हैं तथा अपने अपने क्षेत्र में वे सभी उपयोगी भी प्रमाणित हो रहे हैं। किन्तु आजकल प्रायः अधिकांश समीक्षकों की समीक्षा-पद्धति में इन सभी विविध शैलियों का आवश्यकतानुसार सम्मिश्रण सा पाया जाता है और उनकी समालोचना में अन्य सभी समीक्षाओं के विविध आवश्यक तत्त्वों का समावेश हो जाता है। व्याख्यात्मक दृष्टि से कृतियों का विश्लेषण करना, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कवि या कलाकार की मानसिक स्थिति और उसकी कृतियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना; तुलनात्मक दृष्टि से देश तथा काल की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का आलोच्य कलाकार या कृति का पूर्ववर्ती और समसामयिक कलाकारों या कृतियों के साथ तुलनात्मक विवेचना करना ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों, प्रचलित विभिन्न आदर्शों और उद्देश्यों पर प्रकाश डालना, सैद्धांतिक दृष्टिकोण से प्राचीन तथा अर्वाचीन सिद्धान्तों के आधार पर किसी भी कृति या कलाकार का मूल्यांकन करना तथा इस प्रकार अपने अध्ययन में व्यापकता एवं समीचीनता लाकर किसी एक निर्णय पर पहुँचना अब प्रत्येक समालोचक का कार्य हो गया है। अतएव साहित्य समीक्षा के इन विविध मानदंडों का सम्मिश्रण स्वाभाविक ही प्रायः प्रत्येक समालोचना में देख पड़ता है यद्यपि कभी कभी 'अपनी व्यक्तिगत रुचि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के फलस्वरूप समीक्षक किसी एक प्रणाली को ही प्रधानता दे देता है जिससे कि उसकी समीक्षा में संतुलन का अभाव दृष्टिगोचर होने लगता है।

'आँसू' में प्रेमतत्व

रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि बिहारी ने वस्तुत: उचित ही लिखा है—

गिरि तैं ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन को प्रेम पयोधि पगार॥

प्रेमतत्त्व का निरूपण करना कोई सरल कार्य नहीं है, क्योंकि प्रेम की कोई निश्चित परिभाषा ही अभी तक निर्धारित नहीं हो सकी। प्रेम की प्राय: सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है और विश्व की सभी भाषाओं में उसकी महत्ता स्वीकार की गयी है। एक विद्वान ने तो ध्वंस का कारण वर्तमान होने पर भी जो सर्वथा ध्वंस रहित है, इस प्रकार के परस्पर के भाव को प्रेम माना है।※ परन्तु इसे प्रेम की परिभाषा नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: यह तो प्रेम का एक लक्षण मात्र है। प्रिय चाहे कैसी भी अवस्था में क्यों न हो उसके प्रति प्रेम भाव का रहना आवश्यकीय है। प्रेम में तो स्वार्थ रहता ही नहीं है और जो क्षण मात्र में घटता और क्षण मात्र में बढ़ता है वह कभी भी प्रेम नहीं कहला सकता।±

※ सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनो: स प्रेमा परिकीर्तित:॥

± छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेम में वासना नहीं रहती, वह तो वासना जनित आकर्षण के ऊपर उठा हुआ रहता है।†

संस्कृत साहित्य में प्रेम प्राय: नाटकों का प्रधान विषय होता था और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' 'विक्रमोर्वशी' 'स्वप्नवासवदत्ता' 'मालती माधव' तथा 'रत्नावली' आदि संस्कृत के सभी प्रसिद्ध नाटकों में प्रेमवर्णन की ही प्रधानता है संस्कृत काव्य ग्रंथों में भी प्रेम का प्रवाह प्रवाहित हुआ है। संस्कृत ग्रंथों में स्वच्छन्द प्रेम (Romantic Love) का ही चित्रण किया गया है। यद्यपि हिंदी साहित्य की रीतिकालीन काव्य धारा में प्रेम की ही प्रधानता रही और कवियों ने एक मात्र शृंगार रस को ही अपनाया, परन्तु उनका प्रेम वर्णन नायिका भेद के नियमों के अनुसरण करने से स्वच्छन्द नहीं रहा, बल्कि परम्परागत हो गया।

आधुनिक काल—के काव्य ग्रंथों में भी प्रेम की छटा दृष्टिगोचर होती है, पर वह रीतिकालीन कविता की भांति परम्परागत नहीं है, वरन् उस पर संस्कृत नाटकों और अंग्रेजी प्रेमाख्यानों का प्रभाव पड़ा है तथा इस प्रकार वर्तमान हिन्दी काव्य धारा में प्रेम का स्वच्छन्द और शुद्ध प्रवाह प्रवाहित हो रहा है।

आधुनिक काल में कई प्रेमाख्यानक काव्य लिखे हुए हैं। प्रसाद जी के 'प्रेम पथिक' और 'आँसू' पंत जी की 'ग्रंथि' तथा श्री राम नरेश त्रिपाठी के 'मिलन' और 'पथिक' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त स्फुट गीति काव्य और मुक्तकों में भी कवियों ने प्रेम की

---

† पंत जी ने भी वासना जनित्व प्रेम की भर्त्सना की है—

काम क्रोध मद भगा न जिससे,
पर उपकार लगा नहिं जिससे
विश्व प्रेम मन जगा न जिससे
वह सबने धिक प्रेम बताया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्झरिणी प्रवाहित की है। आधुनिक काल की काव्य कृतियों में प्रेम के दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। 'ग्रंथि का नायक अपनी नौका सहित डूब जाता है, पर उसे एक तरूणी डूबने से बचाती है। प्रथम दर्शन में ही दोनों के मानस में प्रेम उदय हो जाता है और शनैः शनैः वह विकसित होता रहता है। 'प्रेम पथिक' में भी दो बालहृदयों में प्रथम दर्शन में ही प्रेम उदय होता है। इन प्रेमाख्यानक काव्यों में संयोग और वियोग के कलापूर्ण चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। विरह का सुन्दर चित्रण प्रसाद के 'आँसू' में किया गया है। त्रिपाठी जी के 'पथिक' और 'मिलन' में हमें प्रेम का दूसरा स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। इन काव्य कृतियों में प्रेम का प्रारम्भ विवाह के उपरान्त होता है और उनके नायक पहले अपनी पत्नी से, पुनः प्रकृति से और फिर मातृभूमि से तथा अंत में पूर्ण विश्व से प्रेम करते हैं। प्रेम का उन काव्यग्रंथों में गतिशील रूप ही प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक काव्य कृतियों में प्रेम का यह गतिशील रूप बहुत ही न्यून मात्रा में दृष्टिगोचर होता है और अधिकतर कवियों ने स्थिर प्रेम का ही वर्णन किया है तथा 'स्थिर प्रेम जन्य दुःख भोग' और 'अश्रुस्राव' के ही चित्र प्रस्तुत किए हैं।

'आँसू' आधुनिक काल के उल्लेखनीय प्रेमाख्यानक काव्यों में है तथा उसकी गणना 'प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में की जाती है। श्री रामनाथ 'सुमन' ने 'कवि प्रसाद की काव्य साधना' में लिखा है—"आँसू में कवि ने मानव जीवन का वह सत्य जो जीवन की व्यथाओं के बीच दबकर कुंठित नहीं हो जाता प्रत्युत उन सबसे रस लेकर पुष्ट एवं जाग्रत होता है, व्यक्त किया है।" वस्तुतः आँसू एक श्रेष्ठ विरह-काव्य ही है तथा वियोगावस्था में प्रेमी की क्या दशा होती है, इसका सुन्दर चित्रण उसमें किया गया है। विरह के अंतर्गत 'आँसू' एक स्मृति काव्य है जिसमें कवि अपने अतीत की रसभरी घड़ियों का स्मरण करता है और उनके अभाव में रुदन करता है। परन्तु वह रो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रो कर अपने जीवन का अंत नहीं कर देता और उस अभाव को जीवन का एक कठोर सत्य मानता है। अपने विगत वैभव की स्मृति होते ही उसके नेत्रों से आँसू निकलने लगते हैं। कवि ने स्थूल के प्रति आसक्ति भी प्रकट की है तथा 'स्थूल शरीर' का नख शिख वर्णन भी किया है। कवि ने 'आँसू' में विरहावस्था का चित्रण करते हुए प्रेम-तत्व का जो निरूपण किया है, वह उसकी काव्य कला की कुशलता का द्योतक है।

यद्यपि 'प्रेमी' का 'प्रिय' से वियोग हो गया है पर तो भी उसे आशा है कि उसका 'प्रिय' उससे शीघ्रही भेंट करेगा। हृदय में पीड़ा हो रही है और अश्रुधारा भी प्रवाहित हो रही है, पर तो भी प्रेमी को यही विश्वास है कि 'प्रिय' शीघ्र ही उसके समीप आयेगा। 'प्रिय' का अंतिम-मिलन उसके लिए महामिलन है।

ये सब स्फुल्लिङ्ग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के।
कुछ शेष चिन्ह हैं केवल,
मेरे उस महामिलन के॥

'आँसू' Love at first sight (प्रथम दर्शन में ही प्रेम) का एक सुन्दर उदाहरण है। 'प्रेम पथिक' और ग्रंथि' के नायकों की भाँति इसमें भी प्रेमी प्रथम दर्शन में ही प्रिय की ओर आकर्षित हो जाता है। प्रेमी उस समय अपने आपको गौरवान्वित समझता है, जब उसका 'प्रिय' उससे भेंट करने के लिये आता है।

गौरव था, नीचे आये,
प्रियतम मिलने को मेरे।
मैं इठला उठा अकिंचन,
देखे ज्यों स्वप्न सबेरे॥

प्रथम दर्शन में ही प्रेमी प्रिय की ओर आकर्षित हो गया और उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों कि प्रिय उसका पूर्व परिचित ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तविक प्रेमी अपने प्रिय को पूर्व परिचित ही समझता है। जिस तरह उदधि की ऊर्मियों से सुधांशु की रश्मियों का सम्मिलन होते ही लहरों में मयंक के प्रति आकर्षण उत्पन्न होने लगता है उसी प्रकार प्रेमी का हृदय भी अपने प्रिय की ओर खिंच जाया करता है।

परिचय राका जलनिधि का
जैसे होता हिमकर से
ऊपर से किरणें आती,
मिलती हैं गले लहर से ॥

प्रिय के प्रादुर्भाव के पूर्व प्रेमी का हृदय शुष्क रहता है, परन्तु प्रिय का आविर्भाव होते ही शुष्कता दूर हो जाती है, हृदय प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठता है और रस से परिपूर्ण हो जाता है। प्रिय का रूप प्रेमी के दृगों में पूर्णत: समा जाता है और प्रेमी हृदय तथा मन में कोई स्पष्ट अंतर नहीं मानता।± प्रेमी के नेत्रों में प्रिय का यौवन कभी ढलता ही नहीं, वरन् सर्वदा ही विकसित रहता है। यह अवश्य है कि यौवन की भी सीमा होती है, पर प्रेमी की दृष्टि में तो सर्वदा ही प्रिय एक समान रहता है।

± देखिए, प्रिय का रूप प्रेमी के नेत्रों में किस प्रकार समा जाता है—

घन में सुन्दर बिजली-सी
बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली,
पुतली में श्याम झलक सी।
प्रतिमा में सजीवता सी
बस गयी सुछवि आँखों में
थी एक लकीर हृदय में
जो अलग रही लाखों में।
(आँसू)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माना कि रूप सीमा है,
सुन्दर! तव चिर यौवन में।
पर समा गये थे, मेरे,
मनके निस्सीम गगन म॥

प्रेम भी एक बंधन स्वरूप है, परन्तु यह बंधन प्रेमियों को सुखकर ही प्रतीत होता है! ज्यों-ज्यों प्रेमी का आकर्षण प्रिय की ओर बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसके मनको शांति मिलती है। यद्यपि प्रेमी अपने आपको प्रिय के हाथों में सौंप देता है, पर तो भी उसे आनन्द ही प्राप्त होता है। किन्तु संयोगावस्था के ये क्षण स्थायी नहीं रहते और वे सुखद घड़ियाँ समाप्त हो जाती हैं जब कि उसे प्रिय का संयोग प्राप्त हुआ था। समागम के वे क्षण उसके लिए चिर स्मरणीय ही हैं—

हिलते द्रुम दल किसलय,
देती गलबाहीं डाली।
फूलों का चुम्बन, छिड़ती,
मधुपों की तान निराली॥

परन्तु वियोगावस्था में प्रेमी इन सुखद घड़ियों को स्मरण कर व्यथित हो उठता है और प्रिय के दर्शनों के लिये आकुल हो जाता है। प्रिय के अभाव में उसे अपना मानस 'शून्य' प्रतीत होता है।

लहरों में प्यास भरी है,
है भँवर पात्र भी खाली।
मानस का सब रस पीकर,
लुढ़का दी तुमने प्याली॥

संयोगावस्था में प्रेमी को जो वस्तुएँ अपने अनुकूल प्रतीत होती थीं, वे ही वियोगावस्था में प्रतिकूल प्रतीत होती हैं।❀ संयोग के

❀ देखिए—
मणिदीप लिये निज कर में,
पथ दिखलाने को आये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय तो प्रेम हिम के समान शीतल प्रतीत होता है, पर वियोगावस्था में वह अंगारों के समान लगता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में प्रेम भी भिन्न-भिन्न प्रभाव उत्पन्न करने लगता है—

हीरे सा हृदय हमारा,
कुचला शिरीष कोमल ने।
हिम शीतल प्रणय अनल बन,
अब लगा विरह से जलने॥

जैसा कि महर्षि नारद ने लिखा है—

तत्प्राप्य तदेवालोकयति तदेव शृणोति तदेव चिन्तयति।

'आँसू' में भी प्रेमी प्रिय के विषय में ही सब कुछ श्रवण करना चाहता है और उसी का चिन्तन भी करता है। प्रेम भी एक प्रकार का नशा ही है और जिस प्रकार मदिरा से पूर्णपात्र अधरों में लगाते ही अधरों की पिपासा बढ़ने लगती है उसी प्रकार की दशा प्रेमी की भी होती है। प्रिय के सौन्दर्य रूपी रस का जो पान एकबार प्रेमी ने कर लिया था वह अब नशा बन गया। सौन्दर्य का अवलोकन करते समय उसका हृदय ऐसा विकल हुआ था मानो तीव्र गरल ही पान कर लिया गया हो परन्तु मनुष्य विषपान तो एक ही बार करना चाहता है किन्तु मदिरा पान की अभिलाषा बार-बार करता है। अत: प्रिय का सौंदर्य वास्तव में मदिरा के सदृश ही था और चूँकि अब उसे वह मदिरा प्राप्त नहीं हो रही है, अतएव वह पिपासित ही रह गया है। प्रेमी को जब अपने प्रिय का समागम प्राप्त नहीं होता और उसके दर्शनों की आशा भी नहीं रहती तब वह प्रकृति की सहायता से ही प्रिय का सान्निध्य सुख प्राप्त करना

वह पावक पुञ्ज हुआ अब,
किरनों की लट बिखराये॥

(आँसू)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहता है। शीतल समीर का स्पर्श होते ही वह सिहर उठता है, क्योंकि वह उसके प्रिय को स्पर्श करके आ रही है।❀

यह अवश्य है कि 'प्रिय' अपने प्रेमी को विरहावस्था में छोड़कर निष्ठुरता ही प्रदर्शित करता है, किन्तु प्रेमी कभी उसे विस्मरण नहीं करता। वह अपने आपको सर्वथा एकाकी भी स्वीकार नहीं करता, क्योंकि मिलन रूपी आशा ही उसका अवलम्बन है और उसी पर अवलम्बित रहकर वह जीवित भी है। यदि उसके हृदय में विरह ही न रहेगा तो फिर उसका जीवन ही तिमिरमय हो जायेगा—

मणिदीप विश्व मंदिर की,
पहने किरणों की माला।
तुम एक अकेली तब भी,
जलती हो मेरी ज्वाला॥

प्रेमरूपी रंग में प्रेमी का हृदय इतना अधिक अनुरंजित हो गया है कि वह अश्रु रूपी जल से धोने पर भी नहीं छूटता बल्कि वियोगावस्था में तो और भी अधिक निखर उठता है। हृदय की पीड़ा जब दिन प्रतिदिन तीव्र होने लगती है तब प्रेमी अपनी व्यथा सभी को दिखला देना चाहता है। उसके हृदय की व्यथा अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी और वह अधिक दिनो तक उसे रोक रखने में असमर्थ भी है—

चढ़ गयी और भी ऊँची
रूठी करुणा की वीणा।

❀ देखिए—

शीतल समीर आता है,
कर पावन परस तुम्हारा।
मैं सिहर उठा करता हूँ,
बरसा कर आँसू धारा॥

(आँसू)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीनता दर्प बन बैठी,
साहस से करती पीड़ा ॥

प्रेमी का मरुस्थल रूपी शुष्क मानस अश्रुरूपी पयोधिमें डूब चुका है। वह अब जिस मानसिक स्थिति में पहुँच चुका है उससे पीछे लौटने का मार्ग उसे सूझ नहीं रहा है। अश्रुधारा से अनुरंजित होने के कारण उसका हृदय शुष्क नहीं रहा बल्कि भावनामय हो गया और विरह-व्यथित होने पर भी उसके मानस में अभी भी प्रिय की स्मृति सुरक्षित है। प्रेमी अब इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आत्मोत्सर्ग करने पर ही प्रिय की प्राप्ति हो सकती है और वह उसके लिए प्रस्तुत भी हो जाता है किन्तु आत्मोत्सर्ग के पूर्व वह इस बात का विश्वास भी प्राप्त कर लेना चाहता है कि क्या प्रिय भी उसके विरह में दिन प्रतिदिन घुला जा रहा है। यदि ऐसा हो तो प्रेमी दूने उत्साह से अपना प्राणोत्सर्ग कर देना चाहता है।

बलने का सम्बल लेकर,
दीपक पतंग से मिलता।
जलने की दीन दशा में
वह फूल सदृश हो खिलता ॥

प्रेमी यह भी सोचता है कि कदाचित उसे व्यथित देखकर उसका प्रिय भी उसकी ओर आकर्षित हो जाये। इस प्रकार उसकी करुण भावना जब प्रिय को प्रभावित करती होंगी तब उसका रूप और भी अधिक खिल उठता होगा। प्रेमी को सर्वदा ही यह विश्वास रहता है कि उसका प्रिय उससे अवश्य भेंट करेगा। यह तो स्वाभाविक ही है कि यदि मनुष्य के हृदय की प्रेम रूपी ज्वाला ही सुप्त हो जायेगी तो फिर उसके मानस में कोमल भावनाएँ कहाँ से जाग्रत हो सकेंगी। यदि उसके हृदय में अनुराग ही न रहा तो फिर मानवता कहाँ रह सकेंगी। प्रेमरूपी अग्नि मानव हृदय से गंदे मनोविकारों का ह्रास कर देती है अतः प्रेमी कभी नहीं चाहता कि उसके मानस की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेम रूपी ज्वाला सुप्त हो जाये। प्रेम ही विश्व के समस्त संघर्ष मिटाता है और दो विरोधी भावनाओं को समाप्त कर देता है।

जगद्वन्द्वों के परिणय की,
हे सुरभिमयी जयमाला।
किरणों के केसर रज से
भवभर दो मेरी ज्वाला।

यदि हम किसी के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं तो वह अपने मानस की समस्त भावनाओं से हमें परिचित करा देता है। अनुराग ही तो समस्त व्यथाओं के दूर करने में सहायक होता है। यदि वास्तविक जीवन कहीं है, तो वह प्रेम के मधुर स्पन्दन में ही है। प्रेमी को यह पूर्ण विश्वास रहता है कि उसके हृदय में उठने वाली तीव्र वेदना उसके प्रिय को भी विचलित कर देगी और वह उससे भेंट करने को आतुर हो उठेगा।

उद्वेलित तरल तरंगे,
मन की न लौट जावेंगी।
हाँ, उस अनन्त कोने को,
वे सच नहला आवेंगी॥

जब प्रेमी के जीवन रूपी सागर में निराशा रूपी अंधकार छा जाता है तब यही वेदना उसका पथ प्रदर्शन करती है। प्रेमी को यह भी विदित है कि जीवन में मिलन और विरह दोनों का ही समावेश है। दुख और सुख दोनों ही जीवन में क्रम से आते-जाते रहते हैं। पंतजी ने लिखा भी है—

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का।
चिर हास अश्रुमय-आनन,
रे! इस मानव जीवन का।

'आँसू' के कवि को भी इसीलिए पूर्ण विश्वास सा है यदि आज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन में विरह है, तो कल अवश्य ही मिलन होगा। मिलन की आशा में ही तो प्रेमी जीवित भी रहता है। प्रेमियों के जीवन में तो सर्वदा ही मिलन और विरह होता रहता है।

मानव जीवन वेदी पर,
परिणय हो विरह मिलन का।
दुख सुख दोनों नाचेंगे,
है खेल आँख का, मन का॥

और भी—

चेतन लहर न उठेगी,
जीवन समुद्र थिर होगा
संध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा॥

इस प्रकार प्रसाद 'आँसू' में प्रेमतत्त्व का निरूपण करने में पूर्ण सफल रहे हैं। यद्यपि 'आँसू' में काव्यकला का भी सुंदर निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है किन्तु प्रस्तुत लेख में हमने केवल एकमात्र प्रेमतत्त्व पर ही प्रकाश डाला है। श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'साहित्यदर्शन' में गेटे के 'वेर्टेर' की तुलना प्रसाद के आँसू से कर आँसू की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए लिखा है—"ठीक जिस परिस्थिति में गेटे द्वारा 'वेंर्टेर' की रचना हुई उसी परिस्थिति में आँसू भी लिखा गया। किन्तु वेर्टेर में धधकती अग्नि सुलग रही है, जिसकी आँच दूसरों को भी दग्ध करती है और 'आँसू' में शीतल ज्वाला है, जिसका धुआँ अन्दर ही अन्दर उठकर रम जाता है। 'वेंर्टेर' में प्रचण्डता और दाह है, आँसू में रोदन और करुणा। 'वेंर्टेर' में मस्तिष्क की आँधी तूफान बनकर प्रकट हुई है—'आँसू' में प्रशांतभाव धारा अश्रुकणों में बिखर कर फूट पड़ी है।" 'आँसू' के विषय में श्री विनयमोहन शर्मा ने भी उचित ही लिखा है—"प्रसाद हिंदी के भावुक कवि और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुशल कलाकार हैं। इसे यदि कोई उनकी एक ही रचना में देखना चाहे तो उसे 'आँसू' की ओर ही इंगित किया जा सकता है।" वास्तव में 'आँसू' हिंदी साहित्य की अमरकृतियों में है और प्रेमतत्त्व का जैसा सुंदर निरूपण उसमें किया गया है वैसा बहुत कम देखने में आता है।

भक्तिकालीन कविता की सामान्य पृष्ठभूमि

ईसा की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में भारतवर्ष में तीव्र वेग से भक्ति का स्रोत प्रवाहित हो रहा था। कबीर, नानक, मीरा, सूर और तुलसी आदि अपने ढंग पर भक्ति के प्रवाह को प्रवाहित कर रहे थे। भक्ति का प्रधान तत्त्व है परमात्मा से अनुराग और उस अनुराग में तल्लीनता तथा आत्म समर्पण का भाव भी आवश्यकीय है 'भक्ति रसामृत सिंधु' में तो स्पष्ट रूप से लिखा है कि ईश्वर का अनुशीलन करते समय ज्ञान और कर्म की आवश्यकता नहीं है तथा भक्त के हृदय में तो भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई आकांक्षा भी न होनी चाहिए देखिए—

भक्ति रसामृत सिंधु १ ६

अन्याभिलषित-शून्यं ज्ञान-कर्मधनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

वेदों में भी भक्ति के महत्व का वर्णन किया गया है तथा वैदिक काल में तो भक्ति की महिमा विशेष रूप से स्वीकार की जाती थी। ऋग्वेद का यह मंत्र देखिए—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टम् देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

ऋग्वेद १०-१२५-५

इसी प्रकार अथर्वेद और सामवेद में भी भक्ति का महत्व वर्णन किया गया है—

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्य यदूषिम ।
अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ॥

अथर्वेद—७-१०-६-७

वेद तो ब्रह्म की वाणी ही कहे जाते हैं और उनमें आर्य धर्म के व्यापक सिद्धान्तों का समावेश है। ऋग्वेद में तो विभिन्न देवताओं की स्तुतियों की प्रचुरता है तथा साममेद में उपासना के विभिन्न तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। वेदों को भाँति उपनिषद भी भक्ति का महत्व स्वीकार करते हैं और 'छान्दोग्य उपनिषद' में तो प्राणोपासना आदि के रूप में भक्ति की श्रेष्ठता को ही स्वीकार किया गया है। 'मुण्डक उपनिषद' के निम्नांकित श्लोक में भी ईश्वर की प्राप्ति के हेतु भक्ति का महत्व स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि परमात्मा की प्राप्ति उसी को होती है जिस पर ईश्वर कृपा करते हैं—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूस्वाम् ॥

(तृतीय मुण्डक, द्वितीय खंड, श्लोक ३)

वेदों और उपनिषदों की भाँति श्रीमद्भगवद् गीता में भी भक्ति भावना का चरम विकास देख पड़ता है और गीता का तो यही प्रधान उपदेश है कि जीवन को परमेश्वर को अर्पित कर दो। गीता में सामान्य जनता के लिए ईश्वरोपासना ही श्रेष्ठ मानी गई है और स्पष्ट रूप में लिखा गया है कि दुराचारी मनुष्य भी यदि ईश्वर के प्रति भक्ति प्रदर्शित करता है तो उसे महात्मा ही समझना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवद्भक्ति का आश्रय पाकर शूद्र और पातकी तक भी परमगति को प्राप्त करते हैं। देखिए:—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
मां हि पार्थव्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रोस्तेऽपि यान्ति परांगतिम्॥
मन्मना भवमद्भक्तोमद्याजी मा नमस्कुरु।
मामेवैष्यासि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

श्री मद्भगवद् गीता अ० ६ श्लोक ३२, ३१, ३२, ३४।

बौद्धधर्म का महायान पंथ भी भगवान बुद्धि की भक्ति पर ही आधारित है और जैन धर्म में भी तीर्थाङ्करों की भक्ति पर ही विशेष जोर दिया गया है तथा पुराणों में भी भक्ति को जीवन का आवश्यक तत्त्व माना गया है। इस प्रकार भक्ति की यह धारा प्राचीन समय से अनवरतगति से प्रवाहित हो रही है और जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा है उसे ज्ञान, जप, तप, व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ आदि से श्रेष्ठ माना जाता रहा है—

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो व सुरोपि वा।
भक्तियुक्त मनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत्॥
न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञाने नापि कर्मणा।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः॥
नृणां जन्म सहस्रेणा भक्तौ प्रीतिर्हि जायते।
कलौ भक्तिः कलौ भक्ति भक्तया कृष्णः पुरः स्थितः॥
भक्ति द्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तिविनिन्दकः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलं वृतैरलं तीर्थैरलं योगरलं मखैः।
अलंज्ञानकथाला पैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा॥
—श्री मद्भागवत माहात्म्य अ० २ श्लो० १७—२१

इस्लाम धर्म में भी भक्ति पर विशेष जोर दिया गया है और मुहम्मद साहिब का तो यही उपदेश था कि परमेश्वर एक है। मुहम्मद ईश्वर के अनुराग में मस्त सा हो जाता था और आठवीं सदी में तो खुरासान आबू मुस्लिम आदि संत परमेश्वर के अनुराग में इस प्रकार तन्मय हो गए कि अपने आपको ईश्वर ही समझने लगे। ईश्वर को उन्होंने इस प्रकार अपनाया, उसे इस प्रकार आत्म समर्पण किया और उसमें वे इस प्रकार तन्मय हो गए कि समस्त भेदभाव ही विलुप्त हो गए। इसी भक्ति मार्ग को आगे चलकर फारस के धुनिया सन्त हल्लाज द्वारा सूफी धर्म का रूप दे दिया गया। हल्लाज का कथन है कि जो कोई भी तप द्वारा अपनी आत्मा को पवित्र कर सांसारिक कामनाओं से मुक्त हो जाता है उसमें ही परमात्मा का प्रवेश हो जाता है। जब वह इस आध्यात्म गति को प्राप्त होता है तब उसके समस्त कार्य ईश्वर के कार्य कहलाते हैं और जो कुछ वह चाहता है वही होता है।

सूफी धर्म द्रुतगति से समस्त मुस्लिम जगत में व्याप्त होने लगा। प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान और उपदेशक अलगज्जाली के समय तक सूफी धर्म मुस्लिम संसार में व्याप्त हो चुका था। सूफी धर्म में वेदान्त और भक्ति मार्ग का सामंजस्य सा पाया जाता है तथा वह ईश्वर को ही सर्वव्यापी मानता है और एकमात्र ईश्वर की ही उपासना पर जोर भी देता है। कुछ सूफियों को तो यह भी विश्वास था कि वे ईश्वर में सम्मिलित हो गए हैं तथा उन्होंने अपने लोचनों से परमेश्वर की छवि को निहारा भी है और उससे संभाषण भी किया है। जहां कि इस्लाम का कथन है कि परमेश्वर की प्रशंसा हो वहाँ इसकी अपेक्षा आबू यजीद विस्तामी का कहना है कि "मेरी प्रशंसा हो।" सफी महन्तों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने "हम ऐसा कहते हैं" के स्थान पर "परमेश्वर ऐसा कहते हैं" लिखना प्रारम्भ किया। इस प्रकार सूफियों का यह आदर्श सा हो गया कि उन्हें ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी दृष्टिगोचर न हो तथा उनके ज्ञात और कर्म ईश्वर की आराधना रूपी उदधि में मिल जायें।

सम्राट हर्षवर्धन के निधन के पश्चात भारतवर्ष में केन्द्रीय शक्ति का अभाव होने से समस्त भारत में अराजकता फैल गई और हर्ष के उपरान्त कोई भी सार्वभौमिक हिंदू सम्राट के न होने से देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। राष्ट्रीय एकता और संगठन के अभाव में इन छोटे छोटे राज्यों में फूट के बीज पल्लवित होने लगे तथा भारत की राजनैतिक दशा शोचनीय हो गई। इस प्रकार किसी भी विदेशी शक्ति को आक्रमण करने के लिए यह एक अनुकूल अवसर था। सभ्यता तथा बलवैभव का केन्द्र उत्तर भारत दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, धार तथा कालिंजर नामक छोटे छोटे राज्यों के रूप में विभाजित हो गया और तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य तथा चंदेल व्यक्तिगत प्रतिष्ठा-प्राप्ति की लोलुपता में परस्पर ही लड़ते-भिड़ते थे। यदि ये समस्त राजपूत वीर संगठित होकर आक्रांता से युद्ध करते तो कदाचित उन्हें पराधीनता की बेड़ियों में आबद्ध न होना पड़ता। यद्यपि राजपूत शूरवीर थे परन्तु अंध विश्वास और संकीर्णता की भी उसमें अधिकता थी। 'इतिहास प्रवेश' में लिखा है कि—"कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार सम्राटों के लिए कई ऐसे मौके आए जब वे मुलतान को आसानी से जीत सकते थे। किंतु जब अवसर आता तभी मुलतान के तुर्कशासक सूर्य मंदिर को तोड़ने की धमकी देते और कन्नौज की सेना लौट जाती।"

राजनैतिक दशा के साथ साथ भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा भी ध्यान देने योग्य हैं। सम्राट हर्षवर्धन के राज्य-काल में ही गान्धार, काश्मीर तथा पंजाब से लेकर मथुरा तक हीन-यान के स्थान पर महायान बौद्धधर्म की स्थापना हो चुकी थी। सातवीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आठवीं शताब्दी में ही बौद्ध धर्म विकृत होकर मंत्रयान, वज्रयान तथा सहजयान सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो चला था। भारतवर्ष के पूरवी प्रदेशों में वज्रयान सम्प्रदाय का प्रचार अधिकता से हो रहा था और ये बौद्ध तांत्रिक अब सिद्ध कहलाने लगे थे। सर्व सामान्य जनता पर इन सिद्ध-योगियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था और ये सिद्ध योगी प्रसिद्धि भी प्राप्त कर रहे थे। 'चौरासी सिद्ध' इन्हीं में से हुए हैं वज्रयान शाखा के इन सिद्धों ने अपने मत का प्रचार करने के हेतु संस्कृत, अपभ्रंश मिश्रित देश-भाषा में कुछ रचनाएँ भी प्रस्तुत की। डाक्टर विनयतोष जी भट्टाचार्य ने सिद्धों में से सबसे अधिक प्राचीन सिद्ध 'सरह' जिन्हें कि सरोज वज्र भी कहा जाता है कि समय वि० स० ६६० माना है। सिद्धों ने अंतस्साधना पर विशेष जोर दिया है और पंडितों को कड़ी फटकार सुनाई है।

चौरासी सिद्धों में गोरखनाथ की भी गणना की जाती है परन्तु वें इन सब सिद्धों से अलग हो गए थे और उन्होंने नाथ पंथ की स्थापना की थी। गोरख ने हठयोग की साधना की ओर जनता को नाथ पंथ की ओर प्रेरित किया। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"शुरू शुरू में हठयोग का उद्देश्य शरीर शुद्धि और मन का सम्मार्जन ही समझा गया था पर नाथ पंथ में काया साधन से ही मुक्ति समझी जाने लगी। देह शुद्धि के लिए हठयोग की क्रियाओं का विशाल ठाठ है; धौति है, वस्ति है, नेति है, त्राटक है, नौलि है, कपालभाति है। इन्हें षट्कर्म कहते हैं। फिर आसनों, मुद्राओं, प्राणायामों, ध्यानों और समाधियों का विराट् आडम्बर है।"❀ परन्तु नाथ पंथ का प्रचार राजपूताने और पंजाब में बहुत अधिक हुआ क्योंकि उसमें तीर्थ यात्रा और वेदों का अध्ययन व्यर्थ माना गया है और प्रतिमा पूजन तथा बहु देवोपासना को भी आवश्यक न समझा गया है। ईश्वर की साधना के

❀ दे०—कबीर—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी (पृष्ट ४७-४८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेतु मानस को मुकुर माना गया है जिसमें आत्म के स्वरूप का प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होता है—

हृदयं दर्पणं यस्य मनस्तत्र विलोकयेत।
दृश्यते प्रतिबिम्बेन आत्मरूपं सुनिश्चितम् ॥

इस प्रकार मुसलमानों की रुचि भी इस सम्प्रदाय के प्रति स्वाभाविक ही आकर्षित होने लगी। प्रतिमापूजन, बहुदेवोपासना, तीर्थयात्रा और वेद शास्त्रों के अध्ययन को व्यर्थ मानने से मुसलमानों के लिए आपत्ति जनक बातें कुछ भी न रहीं। जिस प्रकार सिद्धों की संख्या चौरासी कही जाती है उसी प्रकार नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ; भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चर्पट, जालन्धर और मलयार्जुन नामक नव नाथों का उल्लेख किया जाता है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि महमूद गजनवी के आक्रमण के कुछ पूर्व ही सिंध और मुलतान में कुछ मुसलमान बस चुके थे जिनमें कि सूफियों की भी कुछ संख्या थी। ऐतिहासिक ग्रन्थों में कुछ ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं; जिनसे विदित होता है कि बहुत से सूफियों ने भारतीय योगियों से प्रणायाम आदि की क्रियाएँ भी सीखी थीं। इस प्रकार यह कहना अस्वाभाविक न होगा कि गोरखनाथ का मुसलमानों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और बहुत से मुसलमानों ने स्वच्छा से ही नाथ पंथ अंगीकार किया था। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने तो स्पष्ट रूप से इसे स्वीकार किया है कि गोरखनाथ मुसलमानों से बहुत अच्छी तरह से परिचित थे।† हिमालय के निकटवर्ती प्रदेशों में बहुत से मंत्र इस प्रकार के अभी भी प्रचलित हैं जिनसे ज्ञात होता है कि हिंदू और मुसलमान दोनों ने ही गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया था। देखिये—

हिंदू मुसलमान बाल गुदाई।
दोऊ सहरथ लिये लगाई ॥

---

† दे०—हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल (पृ० १५—१६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़थ्वाल जी ने 'काफिर बोध' के बाबा रतन हाजी को गोरखनाथ का शिष्य माना है जिसने कि मुहम्मद नामक किसी मुसलमान बादशाह को सम्बोधित करते हुए अपने ग्रंथ 'काफिर बोध' में यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि हिंदू और मुसलमान दोनों एक ही हैं तथा उनमें किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है और वे दोनों एक ही ईश्वर के अनुयायी हैं। देखिए—

जिस पाणी से कुल आलम उतपाना।
ते हिन्दू बोलिए कि मुसलमाना॥
हिन्दू मुसलमान खुदाई के बंदे।
हम जोगी न रखे किसी के छन्दे॥

यद्यपि त्रिपिटकाचार्य्य राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी माना है परन्तु कुछ विद्वानों ने १३वीं शताब्दी को ही उनका समय माना है ❀ इतना तो स्पष्ट है कि मुसलमानों पर नाथ पंथ का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और गोरखनाथ से भी वे विशेष रूप से प्रभावित थे। नाथ पंथियों की भाँति सिद्धों ने भी तत्कालीन धार्मिक दशा पर बहुत अधिक प्रभाव डाला था। सिद्धों ने जाति-पाँति के भेदभाव को मिटाकर शूद्रों को भी प्रेम के साथ गले से लगाया। चौरासी सिद्धों में तो अधिकांशतः चमार, धोबी, कहार, डोम के सदृश शूद्र कहे जानेवाले लोग थे। इस प्रकार निम्न श्रेणी के हिन्दू भी इस सम्प्रदाय की ओर बहुत अधिक संख्या में आकर्षित होने लगे। सिद्धों की कुछ पुस्तकें भी प्रकाश में आईं जिनमें प्रायः जाति-पाँति, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा और बहुदेवोपासना के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित की गई तथा रहस्यवादी बनकर शास्त्रों का तिरस्कार किया गया और रूपकों का आधार लेकर पहेलियाँ

❀ दे०—हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (पृ० १५—२०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुझाने का प्रयास किया जाने लगा। 'नाद' 'बिन्दु' आदि शब्दों का बहुत अधिक प्रचार हुआ तथा नाद और बिन्दु के योग से ही विश्व की उत्पत्ति मानी गई। हठयोगी भी जगत् की उत्पत्ति नाद और बिन्दु के योग से ही मानते हैं:—

नाथांशो नादो नादांश: प्राणा:;शक्त्यशों बिन्दु: बिन्दोरंश: शरीरम्।

यद्यपि कुरान में स्पष्ट लिखा है कि "बल प्रयोग करने से कभी भी धर्म की स्थापना नहीं हो सकती है। किसी भी प्रकार से विवश कर देने से ही किसी के हृदय में विश्वास उत्पन्न नहीं किया जा सकता। एकमात्र ईश्वर की प्रेरणा द्वारा ही विश्वास की भावना जाग्रत हो सकती है;"* परन्तु विचार-पूर्वक देखा जाय तो दूसरे देशों में इस्लाम का प्रवेश और प्रसार विशेष रूप से तलवार की सहायता से ही हुआ है। पूर्वी योरप से लेकर चीन और मंचूरिया तक के प्रदेशों का विगत इतिहास इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार प्रारंभिक मुस्लिम आक्रांताओं ने जहाँ कहीं भी आक्रमण किया वहाँ के निरपराध निवासियों के शोणित की सरिताएँ प्रवाहित की, अबलाओं पर अत्याचार किए और देश को वीरान बना दिया। यह अवश्य है; जैसा कि टी० आर्नल्ड (T. Arnold) ने लिखा है—"अन्य प्रदेशों की भाँति भारत में इस्लाम के प्रचारक एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान की पुस्तक लेकर नहीं आए बल्कि वस्तुत: मुसलमानों ने व्यापार करने की कामना से ही भारत में प्रवेश किया था" वह उचित भी जान पड़ता है। वे मुसलमान जिन्होंने भारत के मलाबार किनारे पर सर्वप्रथम प्रवेश किया था व्यापार करने की ही अभिलाषा रखते थे और तत्कालीन हिन्दू राजाओं की सहिष्णुता पूर्ण नीति ने भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों तटों को उनकी आकांक्षा-पूर्ति के लिए मुक्त सा कर दिया। कहा जाता है कि कालीकट

* दे० सेल "अलकुरान" (पृष्ठ ५०२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के जेमेरिन (Zamerin) ने ही प्रथमबार निम्न श्रेणी के कुछ हिंदुओं को इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए उत्साहित किया था क्योंकि उसे कुछ मुस्लिम नाविकों की विशेष आवश्यकता थी। शनैः शनैः यह प्रवृत्ति बलवती होती गई और भारत में इस्लाम धर्म को विकसित करने का प्रयत्न किया जाने लगा। परन्तु महमूद गजनवी के आक्रमण के उपरान्त तो मुस्लिम धर्म-प्रचारकों ने बहुत अधिक संख्या में भारत में प्रवेश किया और हिन्दुओं को इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर विवश किया। दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में ही नूरुद्दीन ने गुजरात में बहुत से कोरी, कुनबी और करवारों को तथा तेरहवीं शताब्दी में बुखारा के सैय्यद जलालुद्दीन ने सिंध में बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया था।* महमूद गजनवी के आक्रमण तो इतिहास में प्रसिद्ध ही हैं तथा उसकी बर्बरता और अत्याचार पूर्ण कथाएँ तो साधारण जन समुदाय में भी प्रचलित रही हैं। अलबेरुनी नामक इतिहासकार ने जो कि गजनवी के साथ ही साथ भारत आया था, भारत की तत्कालीन दशा का वास्तविकता पूर्ण चित्रण किया है। उसने महमूद गजनवी के अत्याचारों पर भी प्रकाश डाला है और स्पष्ट रूप से लिखा है कि देश को वीरान कर दिया, बहुत से प्रदेशों को उजाड़ बना दिया तथा सर्वसाधारण जनता के रक्त की सरिताएँ प्रवाहित की। महमूद गजनवी के परवर्ती आक्रांताओं ने भी भारतीय संस्कृति को विनष्ट करने के बहुत अधिक प्रयास किए। इस प्रकार लूटमार तथा अत्याचारों की बहुलता के साथ साथ भारतीय संस्कृति का प्रसार करनेवाले केन्द्रों को भी विनष्ट करने के प्रयत्न किए जाने लगे। सन् ११९७ में जब मुहम्मद बिन बख्यतार खिलजी ने बिहार पर आक्रमण किया था तब बौद्ध धर्म का पूर्ण रूप से उन्मूलन करने के हेतु बौद्ध बिहारों को पूर्ण रूप से ध्वंस करने का

---

* दे०—A short History of Muslim Rule in India —Dr. Iswari Prasad (Page 9-10)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयत्न किया गया और एक बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकों को जला दिया गया। ध्यान रहे कि ये पुस्तकें भारतीय संस्कृति का बोध कराती थीं।* यद्यपि प्रारंभिक मुस्लिम आक्रांताओं ने भारत में शासन स्थापित करने की चेष्टा नहीं की और वे केवल लूटमार कर ही वापिस लौट जाते थे परन्तु जब मुस्लिम आक्रांताओं ने यहाँ शासन स्थापित किया तब भारतीयों को विदेशियों की असहिष्णुता पूर्ण नीति तथा अत्याचार पूर्ण शासन के कटु अनुभव भी सहन करने पड़े। हिन्दू जनता के मानस से स्वाभिमान और उत्साह के भाव विलुप्त हो गए तथा वे जीवित ही मृतक के समान देख पड़ने लगे क्योंकि उनके अधिकारों की संख्या सीमित कर दी गई थी और उनकी जीवन यात्रा को कंटकाकीर्ण बना दिया गया था। अलाउद्दीन खिलजी के समय में तो दोआब के हिन्दुओं को अपनी उपार्जित सम्पत्ति का आधा भाग राजकोष में देना पड़ता था और इसके साथ साथ कुछ अन्य करों को भी देना पड़ता था। इस प्रकार हिन्दुओं की दशा कष्ट पूर्ण हो गई थी। ± आर्थिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रता के हनन के साथ-साथ हिन्दुओं को धार्मिक स्वतंत्रता भी नहीं प्रदान की गई। हिन्दू धर्म की उपेक्षा करना तो साधारण बात है उसका पूर्ण रूप से उन्मूलन कर देने का प्रयास भी किया जाता था। हिन्दुओं के नेत्रों के सामने ही उनके मंदिर नष्ट किए जाते थे, देव प्रतिमाएँ खंडित की जाती थीं और उनके सांस्कृतिक स्थानों को भी पूर्ण रूप से भस्मसात् कर दिया जाता था। फीरोज तुगलक ने तो खुले आम हिंदू विधि से उपासना करने के अपराध में एक

---

* दे०—A short History of Muslim Rule in India
—Dr. Iswari Prasad (Page 60)

± A short History of Muslim Rule in India
(Page 96)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंदू ब्राह्मण को जीवित ही जला दिया था।※ प्रारंभ में हिंदू नरेशों ने मुस्लिम शासकों से युद्ध अवश्य किए तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा करने का प्रयास भी किया किन्तु पारस्परिक कलह और अविश्वास की भावना के फलस्वरूप वे अपने प्रयत्नों में सफलता न प्राप्त कर सके। हिन्दू जाति इस प्रकार अपनी वीरता से हतोत्साहित होकर एकमात्र ईश्वर के सहारे ही रह गई थी। अतः वीरता की भावना के स्थान पर जन-साधारण के मानस में भक्ति भावना की ही प्रधानता थी और इन सब परिस्थितियों के कारण भक्ति काव्य की धारा को अबाध गति के साथ प्रवाहित होने का अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ।

मुसलमानों ने जिस समय भारत में प्रवेश किया उस समय हिन्दू धर्म का वास्तविक स्वरूप भी परिवर्तित हो चला था। कर्म, ज्ञान और भक्ति के संयोग से ही धर्म का प्रवाह प्रवाहित हो पाता है। वज्रयानी सिद्धों, कापालिकों और नाथ पंथी योगियों ने सामान्य जनता को सत्कर्मों की ओर ले जाने के स्थान पर उन्हें कर्मक्षेत्र से सर्वथा विलग करने का प्रयत्न किया था। भक्ति, प्रेम आदि मानस की स्वाभाविक भावनाओं के स्थान पर इनकी बानियों में गुप्त, रहस्य और सिद्धि का ही वर्णन किया गया। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में—"सामान्य अशिक्षित या अर्धशिक्षित जनता पर इनकी बानियों का प्रभाव इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता था कि वह सच्चे शुभ कर्मों के मार्ग से तथा भगवद्भक्ति की स्वाभाविक हृदय पद्धति से हटकर अनेक प्रकार के मंत्र, तंत्र और उपचारों में जा उलझे और उसका विश्वास अलौकिक सिद्धियों पर जा जमे?"± यह अवश्य है

※ The History Mediaeval India—
Dr. Iswari Prasad (Page 182-83)

± दे० हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल (पृष्ठ ६१-६२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि सिद्धों की इन बानियों का प्रभाव सर्व-साधारण जनता पर ही पड़ सका तथा शास्त्रज्ञ विद्वान और पंडित इनसे किंचित मात्र भी प्रभावित न हो सके। इस प्रकार वेदांत की भी चर्चा होती रही, दार्शनिक सिद्धांतों के खंडन-मंडन भी होते रहे और शास्त्रार्थ भी चालू रहे। ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों और गीता आदि के भाष्यों की परंपरा के फलस्वरूप भक्ति मार्ग तो शनैः शनैः उत्तरोत्तर परिवर्द्धित ही होता रहा और आगे चलकर तो वह सर्वथा नूतन रूप में विकसित हुआ।

शनैः शनैः मुस्लिम शासकों ने भी भली भाँति समझ लिया कि बर्बरता और अत्याचार से स्थापित किया हुआ शासन स्थायी नहीं हो सकता तथा भारतीय संस्कृति को पूर्ण रूप से विनष्ट कर देना भी टेढ़ी खीर है। सूफी फकीर जिनकी कि विचार धारा और हिन्दुओं की विचार धारा में स्वाभाविक समानता थी हिन्दू मुस्लिम विद्वेष को उचित न समझते थे। यों तो इतिहासकारों ने सिद्ध कर दिया है कि भारत और अरब का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन है तथा ईसा के १०८६ वर्ष पूर्व ही भारत और अरब में व्यापारिक सम्बन्ध था। इस प्रकार स्वाभाविक ही अब हिन्दू मुस्लिम एकता की भावना मुस्लिम शासकों के हृदय में जाग्रत होने लगी। विद्वानों का मत है कि सूफी मत भारतीय संस्कृति से बहुत अधिक प्रभावित है तथा डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने तो स्पष्ट ही लिखा है—"जो हो इस बात को सब विद्वान मानते हैं कि सूफी मत का दूसरा उत्थान जिसका विकास फारस में हुआ, अधिकांश में हिन्दू प्रभावों का परिणाम है।"❀ अवारिफल मआरिफ के अनुसार सूफी शब्द का सर्व प्रथम उल्लेख सीरिया के जाहिद अबू हसन की कृतियों में देख पड़ता है जिनका कि मृत्युकाल ईस्वी सन् ७८० माना जाता

❀ दे० हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल (पृष्ठ १७-२१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। तत्कालीन बगदाद के उदार और धर्म सहिष्णु खलीफाओं ने भारतीय धर्म और चिकित्सा प्रणाली का अध्ययन करने के हेतु एक योग्य प्रतिनिधि को भारत भेजा था। इससे ज्ञात होता है कि अरवों में हिन्दू धर्म से परिचित होने की लालसा बहुत पहले से से विद्यमान थी और अपनी इस पिपासा का शमन करने के हेतु हिन्दू धर्म की दार्शनिकता से परिचित होने की चाह भी वे स्वाभाविक ही रखते होंगे। अतः इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा यदि हम यह कहें कि सूफी धर्म का अद्वैत मूलक सर्वात्म वाद भारतीय दर्शन शास्त्र की ही देन है। भारत में अजमेर के शेख मनुद्दीन चिश्ती ने सूफी धर्म का प्रचार करने का बहुत अधिक प्रयत्न किया और राजपूताना, मुलतान तथा कुछ अन्य प्रदेश उनके सिद्धान्तों से प्रभावित भी होने लगे। विचार-धारा की समानता और उदार दृष्टि-कोण ने सूफियों को हिन्दुओं की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया तथा बहुत से हिन्दुओं ने भी सूफी धर्म की दीक्षा ली। सूफी संतों ने भी उदारता के साथ हिन्दुओं के साथ अपने सुदृढ़ पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किए; हिंदू संतों से सत्संग किया और हिंदू गृहों से भिक्षा प्राप्त करने में भी संकोच नहीं किया। मुस्लिम आक्रांताओं की भाँति वे अपने आपको विजेता और हिन्दुओं को विजित नहीं समझते थे, बल्कि समानता की दृष्टि से देखते थे। उनके हृदय की इस समानता, सहृदयता और सहानुभूति पूर्ण भावनाओं का हिन्दुओं के मानस पर विशेष प्रभाव पड़ा और इस प्रकार भावुक हिन्दू जाति के हृदय में उनके प्रति स्वाभाविक ही स्नेह का स्रोत उमड़ उठा। इन सूफी मतावलम्बियों ने हिंदू जीवन की मर्मस्पर्शी गाथाओं को ही अपनाया तथा लौकिक प्रेम से परिपूर्ण काव्य मूलक कहानियों को लिखकर लौकिक प्रेम के बहाने उस 'प्रेम तत्त्व' पर प्रकाश डाला जो कि ईश्वर के सन्निकट पहुँचा देता है। हिंदू जीवन का मार्मिक आधार ग्रहण करने से न केवल हिंदुओं में इनका प्रचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ बल्कि उनके हृदय में इनके प्रति सम्मान और श्रद्धा की भावनाएँ भी जाग्रत हुईं। इस प्रकार हिन्दुओं और मुसलमानों में वैमनस्यता के स्थान पर सौहार्द्र की स्थापना होने लगी। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में—"सूफियों के प्रेम-प्रबंधों में खंडन-मंडन की बुद्धि को किनारे रखकर मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने का ही प्रयत्न किया गया है जिससे इनका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से पड़ता है।"÷

पन्द्रहवीं शताब्दी में भक्ति भावना अपनी चरम सीमा पर पहुँच रही थी और हिन्दुओं में एकेश्वर वाद की भावना बलवती होने लगी यों तो वि० सं० १०७३ में ही श्री रामानुजाचार्य्य ने दक्षिण में भक्ति का उपदेश दिया था और इस प्रकार दक्षिण से वेदान्तभावित भक्ति का आन्दोलन क्रमश: शनै: शनै: उत्तर की ओर द्रुत गति से बढ़ता चला आया। डा० ग्रियर्सन ने उचित ही लिखा है—"अचानक ही विद्युत के आलोक के समान तत्कालीन धार्मिक मतों के ऊपर एक नूतन बात दृष्टिगोचर हुई। इसे भक्ति का आन्दोलन कहना चाहिए।" विचार पूर्वक देखा जाय तो तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि दक्षिण में सरलता से भक्ति का आंदोलन वृद्धि कर सकता था। उत्तर भारत के सदृश अव्यवस्था और अशांति का साम्राज्य दक्षिण में बहुत दिनों उपरान्त विकसित हो पाया अत: राजनैतिक अशान्ति का अभाव होने से स्वाभाविक ही धार्मिक भावनाओं में प्रबलता आने लगी। भक्ति का स्वरूप तो दक्षिण में सातवीं शताब्दी में ही प्रकट हो गया था और बाणभट्ट के 'हर्ष चरित्र' में पंच रात्र और भागवत का उल्लेख भी किया गया है। शंकराचार्य का जिनका कि समय सातवीं शताब्दी ही माना जाता है यद्यपि कुछ विद्वानों ने उनका समय नवीं शताब्दी भी माना है, पंच रात्र और

÷ दे० हिंदी साहित्य इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल (पृष्ठ ७४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागवत दोनों से शास्त्रार्थ किया था। सातवीं शताब्दी के पूर्व चौथी-पाँचवीं शताब्दी में ही दक्षिण में भागवत धर्म की प्रबलता थी और यह बात तो चोल प्रदेश के पल्लव राजाओं के शिला लेखों से भी प्रमाणित हो जाती है। यह तो वस्तुत: ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि दक्षिण में भागवत धर्म का प्रचार कब से हुआ परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि प्राचीन काल में ही उसका प्रवेश दक्षिण में हो चुका था और शनै: शनै: वह विकसित भी होता गया; यद्यपि दसवीं शताब्दी तक उसे वहाँ के प्रधान धर्म शैव धर्म के सदृश प्रधानता न प्राप्त हो सकी। दक्षिण में कई वैष्णव भक्त और आचार्य वैष्णव धर्म की अडयार (आलवार) शाखा के अंतर्गत उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने कि सरल सुकुमार तामिलभाषा में अपनी स्वाभाविक हृदगत भावनाओं को व्यक्त कर वैष्णव धर्म को विकसित करने का प्रयास किया था। इनमें शठकोप जिन्हें कि नम्मलवार भी कहा जाता है विशेष सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। उन्होंने विष्णु के अवतारों का अपने गीतों में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। शठकोप के शिष्य नाथ मुनि ने चार सहस्र पदों का एक संग्रह प्रस्तुत किया था जिसका कि सम्मान वेदों के सदृश किया जाता था। नाथमुनि ने कृष्ण की जीवन-लीला से सम्बन्धित स्थानों के दर्शन भी किए थे और उन सबका उन पर विशेष प्रभाव पड़ा। इसी आड्यार (आलवार) शाखा में ही मलावार के नृपति कुलशेखर की भी गणना की जाती है जिन्होंने कि 'मुकुन्दमाला' नामक पुस्तक लिखी है तथा जिसेकि जयदेव के 'गीतगोविन्द' से भी उत्कृष्ट माना जाता है। नाथमुनि का पौत्र यामुनाचार्य अपने पितामह से भी अधिक योग्य सिद्ध हुआ और उसने वैष्णवधर्म के ही प्रचार में अपना समस्त जीवन व्यतीत किया। परन्तु वैष्णव धर्म को सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में सर्वाधिक सफलता रामानुज को ही प्राप्त हुई जो कि नाथमुनि के प्रपौत्र ही थे। नाथमुनि द्वारा अंकुरित वैष्णव सम्प्रदाय के विशिष्ट द्वैतसिद्धान्त को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसे कि यामुनाचार्य ने विकसित करने का प्रयास किया था पल्लवित करने का संयोग रामानुज को ही प्राप्त हुआ और वे इस कृत्य में पूर्ण सफल भी रहे। गौतम बुद्ध के जिन अनीश्वरवादी सिद्धान्तों ने जन समुदाय के मानस में शून्यता ला दी थी और जिसे कि शंकराचार्य का अद्वैतवाद भी दूर न कर सका उसे दूर करने में रामानुज का अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई। रामानुज ने वेदान्तसार, वेदान्तसंग्रह, वेदान्तदीप, गीता भाष्य आदि कई ग्रंथ लिखे हैं, पर उनका वेदान्त सूत्रों पर लिखा गया भाष्य बहुत अधिक प्रसिद्ध है। अपने इन ग्रंथों में उन्होंने शंकराचार्य के मायासंचालित अद्वैतवाद का खंडन किया है और जीव तथा प्रकृति को ब्रह्म का ही अंग मानकर ब्रह्म के ही महत्व को विशेष रूप से प्रतिपादित किया है। ब्रह्म को ही सब प्रकार से विशिष्ट समझने से और चेतन तथा अचेतन दोनों पर ही उसकी सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करने से इनका मत विशिष्टा-द्वैतवाद कहलाता है। रामानुज को अपने मत का प्रसार करने में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई और इस प्रकार विशिष्टा-द्वैतवादियों की संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि करने लगी।

इसी बारहवीं शताब्दी में (रामानुज का समय बारहवीं शताब्दी ही माना जाता है) निम्बार्क ने राधाकृष्ण की उपासना को प्रधानता दी और वृन्दावन आकर राधाकृष्ण की जीवन लीलाओं का वर्णन प्रसारित किया। निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैतमत की स्थापना की और जीव तथा प्रकृति को ब्रह्म में विलीन भी माना तथा विलग भी। शंकराचार्य के पूर्व इसी प्रकार जीव और प्रकृति को ब्रह्म से विलग तथा ब्रह्म में विलान दोनों ही माना जाता था। निम्बर्क का कथन था कि ब्रह्म की कृपा से ही जीव माया से मुक्त हो पाता है। उन्होंने प्रभु के सगुण को ही स्वीकार किया तथा कृष्ण को ही एकमात्र आराध्य माना। निम्बार्क के उपरान्त वल्लभाचार्य ने भी वैष्णवभक्ति का प्रवाह प्रवाहित करने की चेष्टा की। उत्तरभारत की तत्कालीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिस्थितियाँ अब इस प्रकार की थीं कि वहाँ सुगमता से वेदान्तभावित भक्ति का प्रसार हो सकता था। विश्व को अनित्यता चिंतित, सुख और वैभव से विहीन तथा सतत कष्टों से पीड़ित करने के कारण हिन्दुओं ने वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रसारित इस भक्ति के पीयूष का रसास्वादन कर अपने समस्त दुखों को दूर करना चाहा। कदाचित इसीलिए भक्ति का आन्दोलन उत्तरोत्तर सफलता ही प्राप्त करता गया।

श्री रामानुजाचार्य्य ने विशिष्टाद्वैतवाद के जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया था उन्हें उनकी शिष्य परम्परा भारत के विभिन्न प्रदेशों में विकसित करने का प्रयत्न बराबर करती रही और इस प्रकार भक्ति मार्ग की ओर जनता दिनों दिन भारी संख्या में आकर्षित होने लगी। श्री रामानुजाचार्य्य के शिष्य हुए देवाचार्य्य, उनके हुए हरिनन्द, उनके हुए राघवानन्द और उनके हुए रामानंद। रामानन्द का जन्म 'अगस्त्य संहिता' के अनुसार संवत १३५६ में प्रयाग में हुआ माना जाता है। प्रियादास जी ने अपनी भक्तमाल की टीका में और जार्ज-ग्रियर्सन तथा भंडारकार जैसे प्रसिद्ध विद्वानों ने भी इसका समर्थन किया है परन्तु जे. एन. फर्कुहर ने उन्हें दक्षिण का निवासी ही माना है और मेकॉलिफ ने तो उनका जन्म मैसूर के मैलकोट स्थान में माना है। आचार्य शुक्ल ने रामानन्द की उपासना पद्धति में विभिन्नता होते हुए भी तत्त्वदृष्टि से उन्हें रामानुजाचार्य्य का ही मतावलम्बी माना है।❀ परन्तु कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि तत्त्वदृष्टि से तो किसी भी प्रकार रामान्द जी को रामानुज का मतावलम्बी नहीं माना जा सकता चाहे अन्य किसी भी दृष्टि से वे उनके मतावलम्बी क्यों न हों; यद्यपि किसी किसी ने शुक्ल जी की भाँति उन्हें रामानुज

❀ दे० हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल (पृष्ठ ११८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से विभिन्न भी माना है और तत्त्वदृष्टि से रामान्द को उनका अनुयायी ही माना है। इस प्रकार परम्परा से प्रसिद्ध इस बात में कि रामानंद जी रामानुजीय सम्प्रदाय से प्रभावित थे कुछ ऐसी शंकाएँ प्रस्तुत की गई हैं कि जिनसे यही आभास होता है कि कदाचित दोनों आचार्यों का सम्बन्ध उतना सन्निकट नहीं था। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।* द्विवेदी जी का कहना है कि रामानुज के वैष्णव संप्रदाय में तो समस्त अवतारों की उपासना की जाती है परन्तु रामानंद ने तो राम को ही इष्टदेव माना है। रामानुजीय और रामानंदी संप्रदाय का अन्तर द्विवेदी जी ने इस तालिका द्वारा स्पष्ट किया है:—

	रामानुजीय	रामानंदीय
संप्रदाय	श्री वैष्णव सम्प्रदाय	श्री सम्प्रदाय
मंत्र	ॐ नमो नारायणाय	ॐ रामाय नमः
भाष्य	श्री भाष्य	आनंद भाष्य

परन्तु चाहे रामानंद जी का रामानुज संप्रदाय से कुछ भी सम्बन्ध स्वीकार किया जाए किन्तु इतना तो निस्संदेह स्वीकार करना होगा कि तत्त्वों के विश्लेषण की अपेक्षा भक्तिभावना ही रामानंद जी की दृष्टि में विशेष महत्त्वपूर्ण थी और विशिष्टाद्वैत के प्रचारक होते हुए भी उनके सम्प्रदाय में और उनके शिष्यों की विचारधारा में अद्वैत मत को ही सम्मान दिया जाता रहा। रामानंद जी ने वेदान्त भावित भक्ति के आंदोलन का द्रुतगति से प्रचार किया और वे भक्ति का गुणगान करते हुए कहा करते थे कि निम्न कोटि से निम्न कोटि का मनुष्य भी भक्ति का आधार लेकर परमपद को पहुँच सकता है। रामानंद ने भगवद्भक्ति के द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिए और भक्ति के क्षेत्र में वर्णविभेद, धार्मिक विद्वेष ऊँचनीच आदि के

* दे० कबीर—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृष्ठ ६५-६८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ भी महत्व न दिया। 'भविष्य पुराण' के अनुसार तो उन्होंने फैजाबाद के उन बहुत से हिन्दुओं को जो कि बलपूर्वक मुसलमान बना लिए गए थे अपना शिष्य बना लिया और अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लिया।± रामानंद का यह उदारवादी दृष्टिकोण बड़ा ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ और उनके इस प्रकार के कृत्यों से भक्ति के आंदोलन को विकसित होने में पूर्ण सफलता मिली। वस्तुत: हिन्दू धर्म को जितनी अधिक हानि मुसलमानों से नहीं पहुँची थी उतनी वर्णव्यवस्था और धार्मिक विद्वेष से पहुँची थी। मुसलमानों के समान उनमें संगठन का अभाव था और उच्चकोटि के हिन्दू तो निम्नकोटि के हिन्दुओं से सर्वदा घृणा ही करते थे। जैसा कि अर्नाल्ड (Arnold) ने लिखा है वर्णव्यवस्था ने वास्तव में भारत में इस्लाम को विकसित होने का अनुकूल अवसर प्रदान किया और अपनी इस निर्बलता से हिन्दू धर्म इस्लाम धर्म के विकास को रोकने का साहस भी न कर सका।÷ परन्तु श्रीमद्भागवत में तो वर्ण व्यवस्था और धार्मिक विद्वेष को कुछ भी प्रधानता नहीं दी गई तथा भक्ति को ही सर्व प्रधान माना गया है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध के चतुर्दश अध्याय में तो भगवान ने स्पष्ट रूप से घोषणा की है कि योग, ज्ञान और वाणप्रस्थ तथा सन्यास की अपेक्षा भक्ति द्वारा ही उनको (ईश्वर की) प्राप्ति सुगमता से हो सकती है तथा चांडाल तक भी

± "म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावत:। संयोगिनस्तेजसा अयोध्यं बभूविरे॥ कण्ठे च तुलसीमाला जिन्हा राममयी कृता। भाले त्रिशूल चिन्हं च श्वेत रक्तं तदाभवत्।"

—भविष्य पुराण अ० २१; (पृष्ठ ३६२)

(वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित १८६७)

÷ A short History of Maslim Rule in India (Page) 11

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति साधना से पुनीत होकर परम पद प्राप्त कर सकते हैं। देखिए—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥
वाग्गद् गदा द्रवते यस्य चितं रुदत्यभीक्ष्णं हसतिकचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति ॥
यथाग्निना हेममलं जहाति ध्मात पुनः स्व भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्ति योगन भजत्यथो माम् ॥
यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथा श्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥

श्रीमद्भागवत स्क० ११, अ० १४ श्लोक २०-२६

श्रीमद्भागवत में ऐसी जातियों की तो एक तालिका ही प्रस्तुत की गई है जोकि एक वार ईश्वर का आश्रय प्राप्त करते ही पुनीत हो गई। देखिये—

किरात हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुल्कसा:
आभीर-कङ्का यवना: खसादय:।
येऽन्ये च पापास्तदुपा श्रयाश्रया:—
शुध्यन्ति तस्मै प्रभ विष्णवे नम:

श्रीमद्भागवत स्कंध २- अ० ४ श्लो० १८

इस प्रकार निम्नकोटि से निम्नकोटि के हिन्दुओं में भी भक्ति भावना को जाग्रत करना और उन्हें प्रेम से अंगीकार करना रामानंद का एक महान् कार्य था।

इधर वज्रयानी सिद्धों और नाथ पंथियों के प्रभाव से देश में निर्गुणोपासना की ओर भी जनता प्रेरित हो रही थी तथा मुसलमानों के भारत में स्थायी रूप से निवास करने पर तो हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए एक 'सामान्य भक्ति मार्ग' की आवश्यकता भी थी। कबीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने नाथपंथियों से प्रभावित हो सर्वसाधारण जनता को जो कि प्रेमभाव और भक्ति से शून्य हो रही थी निर्गुण पंथ की ओर आकर्षित किया और मनुष्यत्व की सामान्य भावना को जाग्रत कर निम्न से निम्न श्रेणी के हिन्दुओं में भी आत्म गौरव की भावना जाग्रत कर भक्ति मार्ग का अवलम्ब लेने को प्रेरणा दी। निर्गुण पंथ पर भारतीय वेदान्तों और सूफियों के प्रेमतत्त्व दोनों का प्रभाव पड़ा है। प्रतिमा पूजन, अवतार-वाद, बहुदेवोपासना आदि बाह्याचारों का खंडन कर एकेश्वरवाद की उपासना ही निर्गुणपंथियों ने श्रेष्ठतम मानी है। ईसा की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में निराकार परमेश्वर की उपासना, सद्गुरु की भक्ति और सदाचार आदि भावनाओं की ही प्रबलता रही तथा निर्गुणपंथ कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू आदि प्रसिद्ध संत कवियों द्वारा विकसित होता रहा। रामानंद जी को यद्यपि कबीर का गुरु माना जाता हैं और स्वयं कबीर ने भी उनकी बड़ी प्रशंसा की है किन्तु कबीर ने अपने गुरु से एकमात्र अनन्य-भक्ति की भावना को ही ग्रहण किया था और उनके तत्व ज्ञान तथा उपासना पद्धति के प्रति तनिक भी रुचि प्रदर्शित नहीं की थी।±

परन्तु निराकार की उपासना से भावुक जनता को पूर्ण रूप से

± कबीर ने कई स्थलों पर रामानंद जी की प्रशंसा की है। कुछ उदाहरण देखिए—

काशी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चेताए।

और—

भलो भई जू गुरु मिल्या नहिं तर होती हांणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यू, पड़ता पूरी जांणि॥

और भी—

सद्गुरु के परताप तें, मिट गयो सब दुख दंद।
कह कबीर दुबिधा मिटी, गुरु मिलिया रामानंद॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संतोष न प्राप्त हो रहा था। भावुक जनता उपासना के हेतु कोई न कोई प्रतीक चाहती थी बौद्ध मतावलम्बी यद्यपि परमेश्वर को नहीं मानते थे परन्तु उनके मतानुयायियों ने उन्हीं को ईश्वर माना है और जैनियों ने भी तीर्थङ्करों को ही ईश्वर के सदृश उपासना की है। मुसलमान भी मुहम्मद पैगम्बर की उपासना करने लगे थे और अभी भी वे साकार पीरों का पूजन करते हैं। ईसाइयों ने भी ईसामसीह को ईश्वर के पद अधिष्ठित और और रोमन कैथलिक तो अभी भी मरियम तथा पोप आदि की उपासना करते हैं। कबीर और नानक भी निधन के उपरान्त शिष्यों की दृष्टि में परमब्रह्म के अवतार समझे जाने लगे। इस प्रकार मानव-हृदय की प्रेम पिपासा ने प्रत्येक निराकारी मत को कुछ न कुछ साकार रूप अवश्य प्रदान कर दिया और सोलहवीं शताब्दी में तो निराकार परमेश्वर के स्थान पर साकार परमेश्वर की उपासना की ही प्रधानता हो गई। हमारे कहने का अभिप्राय: यह नहीं है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में साकार भक्ति का निरा अभाव ही था या सोलहवीं सदी में निराकार उपासना सर्वथा विलुप्त ही हो गई परन्तु तात्पर्य यह है कि यद्यपि सैकड़ों वर्ष पूर्व ही पुराणों में अवतार का सिद्धान्त प्रतिपादित हो चुका था पर सोलहवीं सदी में ही उसे प्रधानता प्राप्त हो सकी। भक्ति भावना का प्रारम्भ तो ईश्वर को साकार मानकर हो हुआ था और यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के आठवें मंत्र में तो ईश्वर को निर्गुण और सगुण दोनों ही माना गया है—

स पर्य्यगाच्छु क्रमकायम व्रणमस्नाविरम् शुद्धमपाप विद्धम्
कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भू: याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्

शाश्वतीभ्य: समाभ्य:

दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन पर विचार करते समय हम लिख चुके हैं कि ग्यारहवीं सदी में ही श्री रामानुजाचार्य्य ने शास्त्रीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्धति से सगुण भक्ति का निरूपण किया था और उनकी शिष्य परम्परा ने तो उनके सिद्धान्तों का पूर्ण मनोयोग के साथ प्रसार किया। वि० सं० १२५४-१३३३ के लगभग गुजरात के स्वामी मध्वाचार्य ने अपना द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय था जिसकी ओर भी बहुत से लोग आकर्षित हुए थे। इसी प्रकार एकनाथ, तुकाराम तथा रामदास ने महाराष्ट्र में, मीरा ने राजपूताना में और चैतन्य ने बंगाल में सगुण मत का ही प्रतिपादन किया।

साथ ही एक और महान् परिवर्तन भक्ति क्षेत्र में हुआ। स्वाभाविक ही समस्त नवीन पंथ किसी न किसी रूप में सनातन धर्म से अवश्य ही प्रभावित होते हैं। यद्यपि निर्गुण पंथियों ने सनातन धर्म के देवी देवताओं, तीर्थव्रत इत्यादि का निराकरण किया था परन्तु आगे चल कर सोलहवीं सदी में तो जनता ने हर्ष के साथ इन्हें अपनाया। इस प्रकार भक्ति मार्ग की एकेश्वरवाद की भावना में भी कुछ परिवर्तन आ गया तथा अधिकांश भक्तों ने स्वीकार किया कि सर्वोपरि ईश्वर तो एक है किन्तु देवी देवता भी हैं जिनकी उपासना से मनुष्य को ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्त हो सकता है। ईश्वर की भक्ति के साथ-साथ भक्तों को तीर्थ, व्रत, जप, तप यज्ञ आदि का अवलम्ब ले लेना भी कुछ हानिकर नहीं है। सनातन धर्म में परमेश्वर के चौबीस अवतार माने जाते हैं जिनमें से दस प्रधान समझे जाते हैं और उनमें भी मुख्य दो ही माने जाते हैं—राम और कृष्ण सोलहवीं-सत्रहवीं शती के सगुणोपासक कवियों ने इन्हीं दो में से किसी एक की भक्ति का गुणगान किया है अतः भक्ति काल की सगुण धारा रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा नामक दो शाखाओं में विभाजित है। इस प्रकार रामोपासक और कृष्णोपासक भक्त कवियों की परम्पराएँ चलीं जिन्होंने कि आगे चलकर हिंदी काव्य को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा। जिस प्रकार भक्ति काल की निर्गुण धारा की ज्ञान मार्गी शाखा का कबीर ने और प्रेम मार्गी शाखा का जायसी ने प्रतिनिधित्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है उसी प्रकार तुलसी रामभक्ति और सूर कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वप्रधान कवि माने जाते हैं।

रसखान का भाषा सौन्दर्य

यदि भाव को कविता का प्राण माना जाता है तो भाषा निश्चय ही कविता का कलेवर है। भाव तो वस्तुत: भाषा में ही रहता है। भाव या मनोविकार तो स्वाभाविक ही सभी के हृदय में उठा करते हैं परन्तु उनको सुन्दर सुन्दर शब्दों द्वारा प्रकट करना किसी कुशल कवि द्वारा ही संभव है। सुन्दर, सबल और सजीव शब्दावली साधारण से साधारण भावों को भी चमत्कृत कर सकती है।

रसखान की भाषा सरल व्रजभाषा है। रसखान के प्रादुर्भाव के पूर्व ही व्रजभाषा काव्यभाषा के आसन पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी अत: उसे काव्योपयोगी बनाने के हेतु तत्कालीन कवियों को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था परन्तु हाँ उसे कुछ स्थिरता देने की आवश्यकता अवश्य थी। व्रज प्रान्त के शब्दों के साथ साथ अन्य स्थानों में प्रचलित प्रयोगों का अवलम्ब लेने से भाषा सबके योग्य बन जा सकती थी और उसका महत्व भी बढ़ सकता था। व्रज प्रान्त के संकुचित दायरें में बन्द कर व्रज भाषा को प्रादेशिक भाषा बना देने से उसमें काव्य निर्माण की शक्ति नहीं रह पाती। सूर ने इसीलिये व्रजभाषा को साहित्योचित एक रूपता देने का प्रयास किया था। सूर की भाषा ठेठ व्रजभाषा न होकर साहित्यिक व्रजभाषा है। यद्यपि सूर की काव्य भाषा में उत्तम भाषा के समस्त गुणों का समावेश हो सका है और व्रजभाषा को सार्वदेशिक भाषा बनाने के उद्देश्य में वे सफल भी रहे हैं तथापि सूर के काव्य में भाषा की अपेक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावों की ही प्रधानता है और इस प्रकार शब्द सौंदर्य तथा चमत्कार की अपेक्षा भाव और रसों की अभिव्यक्ति की ओर ही उन्होंने अधिक ध्यान दिया है। सूर के सदृश तुलसी ने भी कवितावली और गीतावली में व्रजभाषा का सार्वदेशीय भाषा बनाने का प्रयत्न किया है। व्रजभाषा को साहित्योचित एक रूपता देने का जो प्रयास सूर ने किया था वह केशव रसखान; बिहारी और घनानन्द आदि भक्ति कालीन एवं रीतिकालीन कवियों द्वारा पूरा किया गया।

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं रसखान की भाषा सरल व्रजभाषा ही है। सरलता भी भाषा का एक विशेष गुण है। सरल से सरल शब्दावली भी उत्तम भावों की अभिव्यंजना कर सकती है। आचार्य चन्द्रबली पांडे ने रसखान की भाषा के विषय में उचित ही लिखा है—"रसखान की भाषा चलती हुई, सरस सरल और सुबोध व्रज की भाषा है और है सर्वथा स्वच्छ, निर्मल और निर्दोष। शब्द छलकते हुए अपने रूप में चले जाते हैं। उनको बनने बिगड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती और वाक्य में जहाँ के तहाँ अपने आप बड़े ढब से बैठे रहते हैं।" (हिन्दी कवि चर्चा पृष्ठ २८२)

रसखान की भाषा में सामान्य काव्य भाषा का जो स्वरूप रखा गया है उसमें विदेशी भाषाओं से लेकर हिन्दी के भिन्न भिन्न देशी भाषाओं और बोलियों तक के शब्दों को ग्रहण किया गया है। सर्व-प्रथम देशी भाषा के प्रयोगों पर ध्यान दिया जाय। व्रजभाषा में कुछ ऐसे शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं जो सीधे अपभ्रंशकाल से चले आ रहे हैं और जिनका प्रयोग व्रजभाषा के आधुनिक कवियों तक ने भी किया है। यद्यपि साधारण जन-समुदायों में इनका प्रयोग नहीं होता था तथापि काव्य क्षेत्र में उनका प्रभाव उसी प्रकार रहा और व्रजभाषा के कवियों ने निस्संकोच उनका प्रयोग अपनी रचनाओं में किया। तुलसीदास की 'कवितावली' में भी अपभ्रंश के शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। मदन के लिये मयन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्वत के लिये पब्बै और सागर के लिये सायर का उन्होंने प्रयोग किया है। यद्यपि ये शब्द काव्यभाषा के हेतु उपयुक्त माने जा सकते हैं परन्तु तुलसी ने कहीं कहीं ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो कि प्रारम्भ में ही विकृत होकर संस्कृत से प्राकृत में आये। वचन के लिये बयन और वृक्ष के लिये रूख शब्द का प्रयोग भी तुलसी ने कवितावली में किया है। कविवर रसखान की भाषा में भी अपभ्रंश के कुछ शब्द उपलब्ध होते हैं परन्तु उन्होंने ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया है जो कि काव्य भाषा के लिए सर्वथा उपयुक्त थे और सरलता से पहिचाने जा सकते हैं। 'गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहल हू लुटाई, वेद बीस बेर गाइ ध्यान कीजत सकारे सों' नामक पंक्ति में 'मुक्ताहल' शब्द इसी प्रकार का है यद्यपि इसका प्रयोग पद्माकर, मतिराम और रत्नाकर तक ने किया है। रसखान ने अपभ्रंश के व्याकरण के कुछ प्रयोगों को भी ग्रहण किया है और नाम धातुओं के प्रयोग में भी उनकी यही प्रवृत्ति दीख पड़ती है।

अपभ्रंश के अतिरिक्त अवधी के शब्द भी उनकी भाषा में दृष्टि-गोचर होते हैं। व्रजभाषा के कवियों का अवधी के शब्दों से प्रभावित होना स्वाभाविक ही था क्योंकि व्रजभाषा के सभी कवि खास व्रजप्रान्त के ही निवासी न थे और फिर स्वाभाविक ही एक सामान्य साहित्यिक भाषा किसी प्रदेश विशेष के प्रयोगों तक ही सीमित नहीं रह सकती। व्रजभाषा के सम्बन्ध में प्रायः यही बात पूर्णरूप से चरितार्थ होती है और इसीलिए उसमें यत्र तत्र पूरबी प्रयोगों की बहुलता दृष्टिगोचर होती है। सूर की भाषा में मोर, हमार, अस, जस, आदि पूरबी प्रयोग देख पड़ते हैं और रीतिकाल के यशस्वी कवि बिहारी की भाषा में भी कीन, दीन, आहि और लजियात जैसे पूरबी प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। रत्नाकर की भाषा में भी बिसाही, अहक, उतान, पँवारि, लुरियाति, हिरकि, सिकहर आदि पूरबी प्रयोगों की बहुलता है। रसखान की भाषा में भी अवधी के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस, केरी आहि तथा अबार आदि अवधी के कुछ शब्दों के रसखान ने भी अपनाया है। 'अस' का प्रयोग रसखान के पूर्ववर्ती कवि सूर, बिहारी और दास आदि तक ने किया है।

रसखान की भाषा में विदेशी शब्दों की बहुलता नहीं है। भक्ति काल की प्रारम्भिक अवस्था में ही मुसलमानी संसर्ग से पारसी के शब्दों का प्रयोग कविजन करने लगे थे। तुलसी की भाषा में भी गनी, गरीब, साहब, उमरदराज आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। आगे चलकर रीतिकालीन कवियों ने तो इनका अत्यधिक प्रयोग किया और 'खुसबोथन' के सदृश विकृत शब्दों का भी उपयोग किया गया। रसखान की भाषा में भी अरबी फारसी के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है और उन्होंने इन शब्दों को तत्सम तथा तद्भव दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है। नेजा, तीर, जाँबाजी, महबूब आदि को तत्सम रूप में ही उन्होंने स्वीकार किया है और उन्हें अपनी रचनाओं में शुद्ध रूप में ही प्रस्तुत किया है परन्तु कुछ शब्दों के तद्भव रूपों को भी उन्होंने ग्रहण किया है। अरबी फारसी के कुछ शब्दों को उन्होंने ब्रज का जामा पहनाकर उनके विदेशी पन को दूर करने की चेष्टा की है। रीतिकालीन कवियों में भूषण में भी यह प्रवृत्ति थी और उन्होंने विदेशी शब्दों के तद्भव रूपों को ही प्राय: अपनाया है। रसखान ने 'अजीब' को 'अजूबों' तथा 'ताक' को 'ताख' के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'शुमार' को 'सुमार' के रूप में ही उन्होंने अपनाया है—

कहा रसखान सुख सम्पति सुमार कहा,
कहा तन जोगी है लगाये अङ्ग छार को।

इस प्रकार निस्सन्देह ही रसखान की भाषा सर्वमान्य साहित्यिक ब्रजभाषा कही जा सकती है। साथ ही उनकी भाषा सर्वत्र ही भावानुरूपिणी है और भावों की व्यञ्जना करने की शक्ति उसमें विद्यमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। उत्तम भाषा का प्रधान गुण उसकी स्वाभाविक अर्थ शक्ति को ही माना जाता है।

"साहित्य दर्पण" में विश्वनाथ ने 'गुणा माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति त्रिधा' लिखकर माधुर्य, ओज और प्रसाद को ही उत्तम भाषा के तीन प्रधान गुण माना है। संस्कृत में वामनाचार्य और हिन्दी में 'काव्य निर्णय' के प्रसिद्ध रचयिता भिखारीदास जी ने उत्तम भाषा के निम्नांकित दस गुण माने हैं—(१) माधुर्य (२) ओज (३) प्रसाद (४) श्लेष (५) समता (६) सुकुमारता (७) समाधि (८) कांति (९) उदारता और (१०) अर्थ व्यक्ति। रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि और आचार्य श्रीपति ने तो दस शब्द गुण और आठ अर्थगुण माने हैं तथा महाराज भोज ने 'सरस्वती कंठाभरण' में गुणों की संख्या चौबीस मानी है। यद्यपि इन समस्त गुणों का भाषा में होना आवश्यक है परन्तु विशेषत: ओज, प्रसाद और माधुर्य नामक तीन गुणों को ही प्रधानता दी जाती है। कदाचित इसीलिए दास जी ने लिखा है—

माधुर्योज प्रसाद के सब गुन हैं आधीन।
तातें इनही को गनें मम्मट सुकवि प्रवीन॥

रसखान की भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण ही विशेष रूप से हैं तथा ओज गुण का निरा अभाव ही है। यहाँ तक कि कवि ने ओज गुण प्रधान 'ट' वर्ण को भी माधुर्य का सहायक बना लिया है—

नैन लख्यौ जब कुंजन तें,
बनि कै निकस्यो मटक्यो मटक्यो री।
सोहत कैसे हरा दुपटो,
सिर तैसे किरीट लसै लटक्यो री॥
को रसखान रहै अटक्यो,
हटक्यो, ब्रज लोग फिरैं भटक्यो री।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप अनूपम वा नट को,
हियरे अटक्यो-अटक्यो-अटक्यो री ॥

रसखान की भाषा की सर्वप्रधान विशेषता उसकी स्वाभाविक मधुरता ही है। इसमें लालित्य सर्वत्र ही झलकता है। भाषा में प्रवाह है और शब्द योजना इतनी कुशलता से की गई है कि भाषा में स्वाभाविक प्रवाह है। चूँकि कवि ने प्रधानतः शृङ्गार रस की ही अभिव्यंजना की है इसलिए उसके अनुकूल उपनागरिका एवं कोमल वृत्तियों तथा वैदर्भी और पांचाली नामक रीतियों की ही प्रधानता दी गई है। कान्ति नामकगुण का समावेशहोनेसे भाषा में कमनीयता की वृद्धि हो गई है साथ ही सवैयों की भाषा में संगीत का तारतम्य सा पाया जाता है।

रसखान के छन्दों में अलंकारों का स्वाभाविक ही प्रयोग हुआ है। चूँकि कवि की रुचि चमत्कार प्रदर्शन की ओर न थी अतः केशव की भाँति उसने अलंकार प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग कवि ने किया है शब्दालंकारों के अन्तर्गत अनुप्रास का ही विशेष प्रयोग कवि ने किया है परन्तु उन्होंने भाषा को विकृत नहीं किया है। पद्माकर ने अनुप्रास प्रदर्शन की प्रवृत्ति के फलस्वरुप भाषा को विकृत सा कर डाला है पर रसखान की भाषा में अनुप्रास का वांछनीय प्रयोग हुआ है। 'केतक ही कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं, "गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैयाँ" दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत है बलैयाँ, इन्हें भूलि गई गैयाँ, उन्हें गागर उठाय बो' जैसी अनुप्रास पूर्ण पंक्तियों की रसखान के काव्य में बहुलता सी हैं।

रसखान की भाषा में यमक का भी प्रयोग हुआ है और 'या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी' जैसी यमकालंकार पूर्ण पंक्तियाँ यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती हैं यद्यपि यमक का प्रयोग कवि ने बहुत कम किया है। यमक के एक रूप सिहांवलोकन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का भी कवि ने प्रयोग किया है और प्रसंगानुसार कहीं कहीं अपने नाम को श्लेष के रूप में भी प्रस्तुत किया है जो अनुकूल प्रतीत होता है। जिस प्रकार घनानन्दने 'सुजान' को श्लेष के रूप में प्रस्तुत किया था उसी प्रकार रसखान ने भी रसखान शब्द द्वारा सम्पूर्ण रसों की खान श्रीकृष्ण की ओर संकेत किया है तथा अपने नाम का भी परिचय दिया है। अर्थालंकारों की ओर तो कदाचित कवि की रुचि थी ही नहीं इसीलिए उनकी भाषा में उपमा और रूपक के उदाहरणों का अभाव सा है। यह अवश्य है कि 'यों जगि जोति उठी तन की, उसकाय दई मानौ बाती दिया की' जैसी प्रशंसनीय उत्प्रेक्षा बहुत कम कवियों की सूक्तियों में देख पड़ती है और इसी प्रकार रूपकातिशयोक्ति की अभिव्यक्ति भी निम्नांकित सवैये में कुशलता से हुई है—

सोई हुती पिय की छतियाँ लगि,
बाल प्रवीनि महामुद मानै।
केस खुलै छहरैं बहरैं,
कहरैं छबि देखत मैन अमानै॥
वा रस में रसखान पगी रति,
रैन जगी अखियाँ अन मानै।
चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब पै कैरव,
कैरव पै मुकुतान प्रमानै॥

रसखान की भाषा में मुहाविरे बंदिश और लोकोक्तियों का प्रयोग भी हुआ है। यों तो मुहाविरे सार्वदेशिक ही कहे जाते हैं पर किसी किसी कवि ने प्रान्तीय मुहावरों का भी प्रयोग किया है। रसखान ने प्राय: लोक प्रचलित मुहावरों का ही प्रयोग किया है और "बैस चढ़ै घर ही रह बैठ अटान चढ़े बदनाम चढ़ैगो' तथा 'यह रसखान दिना द्वै में बात फैल जैहै कहाँ लौं सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जसे जन प्रसिद्ध मुहावरों को ही उन्होंने ग्रहण किया है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में सबलता और सजीवता सी आ गई है।

रसखान की भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों का अवश्य अभाव है तथा घनानन्द, बिहारी और रत्नाकर की सी लाक्षणिकता उनकी भाषा में अवश्य दृष्टिगोचर नहीं होती तथा 'तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी' जैसे लाक्षणिक प्रयोगों की संख्या न्यून ही है।

इस प्रकार रसखान की काव्यभाषा निस्संदेह उत्तम भाषा कही जा सकती है। रसखान ने सूर और पद्माकर के सदृश तुकान्त के लिये शब्दों को विकृत नहीं किया है और न बहुत से मनमाने शब्दों को गढ़ा ही है। उनकी भाषा में मृदुलता, मनोहरता और मधुरता का मणिकांचनमय योग है वस्तुत: उनकी भाषा में कहीं भी कृत्रिमता परिलक्षित नहीं होती है।

हिंदी कविता में प्रकृति-चित्रण की विविध शैलियाँ

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य कवि कीट्स ने उचित ही लिखा है—"सौंदय वह पदार्थ है जो सर्वदा आनन्ददायी होता है।" (Beauty is a thing which joy forever.) वस्तुत: मनुष्य सौंदर्योपासक प्राणी ही है और कला सौंदर्य का केवल अनुसरण ही नहीं करती बल्कि नूतन सौंदर्य का सृजन भी करती है। सौंदर्योपासना द्वारा हम सुन्दर वस्तु के अस्तित्व को सार्थक कर अपनी और सम्पूर्ण विश्व के एकत्व की स्थापना करते हैं। इस प्रकार सौंदर्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पासना ही वास्तव में विश्व-व्यापिनी उपासना है जिसके द्वारा मानव उस सौंदर्य की झलक प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है जिससे कि समस्त विश्व की रमणीय वस्तुओं की मनोहारिणी सुन्दरता प्राप्त होती है तथा समष्टि और व्यष्टि के आदर्शों का मेल हो जाता है। विविध प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण द्वारा कवियों ने समष्टि के आदर्श के साथ व्यष्टि के आदर्श की भी समानता, दिखलाई है। चूँकि अलौकिक सौंदर्य-दृष्टि ही कवि की प्रतिभा का मूलतत्त्व मानी जाती है अत: कवियों ने बाह्य जगत, आभ्यंतरिक जगत, बौद्धिक जगत और आध्यात्मिक जगत के सौंदर्य की मनोरम झाँकी अपनी कृतियों में प्रस्तुत की है। यद्यपि प्रकृतिक दृश्यों का चित्रण बाह्यजगत के अंतर्गत ही माना जाता है किन्तु वास्तव में प्रकृतिक का विस्तार अनन्त है तथा जल, थल और अंतरिक्ष कहीं भी उसका अंत नहीं मिलता। वस्तुत: बहिर्जगत, अन्तर्जगत, वौद्धजगत और अध्यात्म जगत के जिन रूपेन्द्रिय पदार्थों का सौंदर्य जगत में समावेश होता है उनमें प्राकृतिक दृश्यों का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार ब्रायरन ने भी उचित ही लिखा है—"मैं मनुष्य से कम प्यार नहीं करता, पर प्रकृति से अधिक प्यार करता हूँ।" (I love not man the less, but Nature more.)

यदि सौंदर्य-भावना मनस्-परक है तो प्रकृति सौंदर्य मानव की कलात्मक दृष्टि का परिणाम है। इस प्रकार प्रकृति की सौंदर्यानुभूति के लिए कलात्मक दृष्टि अत्यंत आवश्यक है। क्रोशे के शब्दों में—"प्रकृति उसी व्यक्ति के लिए सुन्दर है जो उसे कलाकार की दृष्टि से देखता है।" एस० अलेकजेन्डर का भी यही विचार है कि प्रकृति तभी मनोहारिणी प्रतीत होती है जब कि हम उसे कलाकार की दृष्टि से देखते हैं और एक निश्चित सीमा तक तो हम सभी कलाकार हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि साधारण व्यक्ति प्रकृति की सौंदर्यानुभूति में असमर्थ ही रहता है। वास्तव में कलाकार और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधारण व्यक्ति दोनों में ही सौंदर्यानुभूति की क्षमता विद्यमान रहती है परन्तु कलाकार अपनी व्यापक दृष्टि और प्रत्यक्ष-ग्रहण की शक्ति के कारण अपनी अभिव्यक्ति की प्रेरणा शक्ति द्वारा प्रकृति के व्यापक विस्तार से विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का चयन कर अपनी सौंदर्यानुभूति के योग से उनका मर्मस्पर्शी चित्रण करता है। कदाचित इसीलिए ई० एम० वर्टलेट ने लिखा भी है—"प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति को सुन्दर कलाकार सदृश नहीं बना देता; जैसा कि कलाकार कला को बनाता है। साधारण व्यक्ति तो प्रकृति के गुणों को सुन्दर तथा असुन्दर दोनों ही प्रकार से देख सकता है।"

वस्तुत: प्रकृति सौंदर्य के प्रति उपेक्षा प्रकट करना सृष्टि-निर्माता ईश्वर के प्रति ही उपेक्षा दिखाना है क्योंकि प्रकृति सौंदर्य दर्शन से स्वाभाविक ही मन आनन्द विह्वल हो उठता है। प्रभात, मध्याह्न, संध्या, शर्वरी, तपनारुण, कौमुदी, विभात, नक्षत्र मंडित व्योममंडल, सुरचाप रंजित विद्युत घोष, सुमधुर पवन संचार, सुमधुर नादी-सुदूर-मेघमाला, विकसित वृक्ष, पुष्पित लताएँ, शारदीय पूर्णिमा का चंद्र, सुरभित-सुमन संपत्तिवाले तरु, भ्रमर-स्पृष्ट-मुकुल, स्फुटोन्मुख किशलय, छायामय कुंजवन, सुखमय उपवन, निविड़ अरण्य, उत्ताल जलनिधि, सांध्यकालीन सूर्य की अरुणिमा, नदी का निर्मल जल, हिमतुषार, मधुमय पराग, नीरद का वारि; तरंगमय सरोवर आदि के सौंदर्य से किसका मन प्रफुल्लित नहीं हो उठता। वस्तुत: प्रकृति तो मानव की आदिम सहचरी ही है तथा आदि काल के प्रथम पुरुष ने जब अपने चक्षु पटल खोले होंगे तब उसको सर्वप्रथम प्रकृति की अनूठी छबि ही दृष्टिगोचर हुई होंगी और इस प्रकार मानव का प्रकृति के साथ स्वाभाविक ही चिर साहचर्य स्थापित हो गया होगा। वैज्ञानिकों का विकासवाद और धर्म ग्रंथों की सृष्टि कल्पना दोनों ही इस विषय में एक मत हैं कि प्रकृति के विशाल क्रोड़ में ही मानव ने जन्म धारण किया है और प्रकृति के साहचर्य तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहयोग से ही अपनी चेतना को विकसित किया है। चूँकि प्रारम्भ से ही मानव में चिर साहचर्य से उद्‌भूतवासना अथवा संस्कार-रूप में प्रकृति के प्रति आकर्षण की भावना विद्यमान रही है अतएव प्राचीन से लेकर अर्वाचीन कवियों तक ने प्रकृति के सुन्दर, विराट और भयंकर रूपों का विशद वर्णन किया है। चूँकि प्रकृति की सौंदर्यानुभूति के लिए कलात्मक दृष्टि अत्यंत आवश्यक है अत: भारतीय साहित्य में ही नहीं बल्कि पाश्चात्य साहित्य में भी विविध प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण किया गया है। वर्ड्सवर्थ ने तो प्रकृति को ही जीवन की क्रीड़ा एवं मधुर मुस्कान माना है—

It is her privilege through all the years this our life to lead from joy to joy

तथा प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में ही उसे निरंतर अव्यक्त सत्ता का आभास होता है—

A motion and a spirit impels
All thinkIng things
All objects of all thougts
And rolls through all things

जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"अनन्त रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है कहीं मधुर, सुसज्जित या सुन्दर रूप में, कहीं रूखे बेडौल या कर्कश रूप में; कहीं मत्त, विशाल या विचित्र रूप में; कहीं उग्र, कराल या भयंकर रूप में" चूँकि कवि स्वाभाविक ही मानव जीवन की अनेक रूपता से प्रभावित होकर बाह्यजगत् की विविध परिस्थितियों को अपनी हृदयगत भावनाओं से अनुरंजित कर अंकित करता है अत: प्रत्येक कवि का प्रकृति के प्रति अपना निजी दृष्टिकोण ही रहता है। इस प्रकार स्वाभाविक ही कविता में प्रकृति चित्रण के विविध रूपों की झाँकी देख पड़ती है। काव्य कृतियों, के अध्ययन से स्पष्ट रूप में ज्ञात होता है कि एक ही काल में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ही वर्ग के कवियों की प्रकृति विषयक चेतना में विभिन्नता पाई जाती है। प्रकृति चित्रण की इन विविध शैलियों पर यहाँ संक्षेप में प्रकाश डालना असंगत न होगा।

प्रकृति चित्रण के विविध रूपों में आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण को प्रथम स्थान दिया जाता है। वस्तुतः प्रारम्भ में कवियों की दृष्टि प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण करने की ओर ही विशेष रूप से रही है। इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में प्रकृति बहुधा साधन न बन कर साध्य बन जाती है और कवि अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षणी शक्ति द्वारा प्रकृति के सूक्ष्माति सूक्ष्म तत्वों के प्रति आकृष्ट होकर प्रकृतिक वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उसके आस पास की परिस्थितियों का परस्पर, संश्लिष्ट वर्णन करता है और इस प्रकार अर्थ ग्रहण की अपेक्षा विम्बग्रहण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जब तक कि कवियों में प्रकृति के प्रति असीम अनुराग न होगा, वे प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों तक न तो उनकी दृष्टि ही पहुँच सकेगी और न वे प्रकृति-दर्शन में आत्म-विभोर होकर अपनी तल्लीनता में हृदय की मुक्तावस्था को ही प्राप्त हो सकेंगे। प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण पाठकों को प्रकृति के प्रत्यक्षदर्शन का सा आनन्द प्रदान कराता है। संस्कृत के प्राचीन प्रबन्धकाव्यों में विशेषकर आलंवन रूप में ही प्रकृति का चित्रण किया गया है तथा आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, भारवि और माघ ने प्रकृति वर्णन में इसी प्रकार की प्रणाली को विशेष रूप से ग्रहण किया है। आदि कवि की 'वाल्मीकि रामायण' में तो ऐसे स्थलों की प्रचुरता सी है जहाँ कि उन्होंने प्रकृति के आलम्बन रूप की मनोमुग्धकारी झाँकी दिखलाई है। हेमन्त वर्णन का निम्नांकित उदाहरण देखिये—

अवश्याय-निपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा॥
स्पृशंस्तु विपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।
अत्यन्त तृषितो वन्यः प्रति संहरते करम॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवश्याय-तमोनद्धा नीहार - तमसावृता: ।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजय: ।
वाष्प सांछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसा: ।
हिमार्द्रवालुकैस्तीरै: सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥
जरा-जर्जरितै: पद्मै: शीर्णकेसर कर्णिकै: ।
नालशेषैर्हिमध्वस्तैर्न भान्ति कमलाकरा: ॥

संस्कृति कवियों ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण करते समय केवल उसके रम्य रूप की ही प्रशंसा नहीं की है बल्कि उसके भव्य और भयंकर रूपों का भी विशद वर्णन किया है। डा० किरणकुमारी गुप्ता के शब्दों में—"एक ओर वे सरिताओं के कल-कल....निनाद, यौवनमद से मतवाले कुसुम तथा मलय समीर के प्रति आकर्षित हुए और दूसरी ओर सूखे ताल, आतपाकुल सर्प एवं अन्य जीवजंतु, पत्र शून्य वृक्षावली आदि भी उनके काव्य के उपादान हुए। काव्यकार का हृदय जिस प्रकार रम्य दृश्य पर मुग्ध हुआ उसी प्रकार विकृत रूप का अवलोकन कर वे करुणा से आप्लावित हो उठे। प्रकृति उनकी सहचरी रही। उन्होंने प्रकृति के साथ अपना निकटतम सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उसकी मुसकान एवं भ्रू-भंगिमा दोनों का ही अवलोकन किया।"

यद्यपि प्राचीन हिन्दी कवियों ने भी कहीं-कहीं प्रकृति को आलंबन रूप में चित्रित किया है किन्तु प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन आधुनिक हिन्दी कविता में ही विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। यों तो आधुनिक काल में हरिऔध ने अपने प्रसिद्ध महा काव्यों 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही-वनवास' में प्रकृति वर्णन प्राय: मानवीय भावनाओं और कार्यों की भूमिका अथवा पृष्ठ भूमि के रूप में ही किया है किन्तु ऐसे स्थलों की कमी नहीं है जहाँ कि प्रकृति के प्रति उनका सहज-प्रेम, आकर्षण एवं हृदय का उत्साह परिलक्षित होता है। आधुनिक हिन्दी कवियों ने प्रकृति के आलम्बन रूप में सौम्य और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उग्र दोनों रूपों के दर्शन किए हैं तथा कभी तो वे प्रकृति के सरस और मोहक रूप पर मुग्ध हुए हैं और कभी उसकी भयंकरता का वर्णन करते हुए रौद्ररूप का दिग्दर्शन कराया है। हरिऔध और प्रसाद दोनों के प्रकृति चित्रण में यह विशेषता विशेष रूप से दृष्टि गोचर होती है।※ प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण की सुविधा प्रबन्ध काव्य में ही विशेष रूप से रहती है अतएव आधुनिक काल में गीति काव्य का विकास हो जाने से प्रगीत मुक्तकों में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण का अभाव सा ले गया। एक गीत में सम्पूर्ण प्रकृति एक साथ केन्द्रित नहीं हो सकती है अतः हिन्दी गीति काव्यकार एक गीत में प्रकृति के केवल एक ही तत्व से सम्पर्क रख सके हैं तथा प्रभात, संध्या, बादल, निर्झरी, खद्योत, चाँदनी जुगनू और विभिन्न ऋतुओं की प्राकृतिक सुषमा का चित्रण पृथक-पृथक गीतों में ही किया गया। प्रकृति के सीधे, सरल, स्वाभाविक, और संश्लिष्ट चित्रण का प्रयास श्रीधर पाठक और पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अवश्य किया है। जैसा कि शुक्ल जी ने प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध को ही कविता का धर्म माना है उसी प्रकार उन्होंने प्रकृति को उद्दीपन के बंधन से मुक्त कर वाल्मीकि, कालिदास तथा भवभूति की भाँति उसका सूक्ष्म-पर्यवेक्षण कर आलम्बन के भाव विभागों के ही अंतर्गत प्रकृति वर्णन किया है। चूँकि वे प्रकृति के नैसर्गिक रूप के ही उपासक थे अतः

※ वैदेही वनवास' में तपस्विनी सीता के आश्रम का वर्णन करते हुए हरिऔध ने प्रकृति के सौम्य रूप का ही चित्रण किया है—

प्रकृति का नीलाम्बर उतरे, श्वेत साड़ी उसने पाई।
हटा घन घूँघट शरदाभा, विहँसती महि में थी आई॥

दशम सर्ग

इसी प्रकार प्रसाद ने भी प्रकृति के स्वच्छ सुनिर्मल रूप की छटा दिखाई है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी कविताओं में प्रकृति के स्वाभाविक स्वरूप का ही यथा तथ्य चित्रण दृष्टिगोचर होता है। 'बुद्ध चरित' में इस प्रकार के उदाहरणों की बहुलता सी है जिनमें कि कवि ने अपने प्रकृति पर्यवेक्षण का पूर्ण परिचय देते हुए प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का पूर्णतः बिम्ब ग्रहण करा दिया है। तथा अपना यह कथन "वस्तुओं के रूप और आस पास की प्रकृतियों का व्यौरा जितना ही स्पष्ट या स्फुट

आकाश श्री सम्पन्न था, नव नीरदों से था घिरा,
संध्या मनोहर खेलती थी, नीलपट तम का गिरा।
यह चंचला चपला दिखाती थी कभी अपनी कला,
ज्यों वीर वारिद की प्रभा-मय रत्न वाली मेखला।

—कानन कुसुम पृ० ३७

किन्तु इस के साथ साथ इन्होंने प्रकृति के विराट, विकाराल एवं भयावह रूपों के भी दर्शन किए हैं। हरिऔध ने प्रिय प्रवास' में रात्रि की भयंकरता और निस्तब्धता का तथा वैदेही वनवास में ग्रीष्म में दावानल से प्रज्वलित वन खंड के भयोत्पादक भीषण रूप का स्वाभाविक चित्रण किया है। प्रसाद ने भी कामायनी में प्रकृति के भीषण रूप का वास्तविक चित्रण किया है:—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल की जालों सी;
चली आ रही फेन उगलती,
फन फैलाये व्यालों सी।
धँसती धरा, धधकती ज्वाला,
ज्वालामुखियों के निश्वास;
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास।

कामायनी पृ० १४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा उतना ही पूर्ण बिम्ब ग्रहण होगा और उतना ही अच्छा दृश्य-चित्रण कहा जायेगा" पूर्ण रूप से सिद्ध कर दिया है। एक उदाहरण देखिए—

लदे कलियान औ फूलन सो कचनार रहे कहूँ डार नवाय।
भरो जहँ नीर धरा रस भीजि के दीनी हैं दूब की गोट चढ़ाय॥
रह्यो कल-गान विपगन को अति मोद भरो चहुँ ओर सो आय।
कढ़ै लघु जन्तु अनेक, भगै पुनि पास की झाड़िन को झहराय॥
डोलत है बहु भृंग, पतंग, सरिसृप मंगल मोद मनाय।
भागत झाड़न सों कढ़ि तीतर पास कहूँ कछु आहट पाय॥
बागन के फल पे कहुँ कीर हैं भागत चोंच चलाय चलाय।
धावत है धरिवे हित कीटन चाव धनी चित चाह चढ़ाय॥

बुद्धि चरित पृ० १७

इधर हाल ही के नए हिन्दी कवियों ने तो प्रकृति के क्षेत्र को और भी अधिक विस्तृत कर दिया है। चूँकि प्रत्येक युग की अपनी निजी सौन्दर्य चेतना होती है जिसका उद्‌भव युग की परिस्थितियों से होता और कवि भी युग की परिस्थितियों से उद्‌भूत नवीन भावनाओं के भीतर से ही प्रकृति का दर्शन करता है कदाचित् इसीलिए नई हिंदी कविता में प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण नवीनता के साथ किया गया है। छायावादी कवियों की दृष्टि जहाँ केवल धरा-गगन, संध्या-उषा, नद-निर्झर, लता गुल्म, और गिरिउपत्यका तक ही सीमित रही वहाँ आज के यथार्थ वादी कवि ने अपने दृष्टि पथ पर आने वाली मीलों मीनारों और कृषकों की झोपड़ियों का भी यथा तथ्य, चित्रण किया है। जंगलों का आलम्बन रूप में वर्णन संस्कृत काव्य तथा प्राचीन हिंदी कविता में बहुलता के साथ किया गया है किन्तु नए कवियों ने जंगल की नैसर्गिक-सुषमा और भी अधिक स्वाभाविक रूप में चित्रित की है। श्री भवानीप्रसाद मिश्र की प्रसिद्ध कविता 'सतपुड़ा के जंगल' की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुये से,
ऊँघते अनमते जंगल
झाड़ ऊँचे और नीचे,
चुप खड़े हैं आँख मींचे
घास चुप है, कास चुप हैं
मूक शाल, पलाश चुप हैं।
बन सके तो धँसो इनमें,
धँस न पाती हवा जिनमें,
सतपुड़ा के घने जंगल,
ऊँघते अनमने जंगल

\+ + +

मकड़ियों के जाल मुँह पर,
और सिर के बाल मुँह पर,
मच्छरों के दंश वाले,
दाग काले-लाल मुँह पर,
वात झंझा वहन करते,
चलो इतना सहन करते,
कष्ट से ये सने जंगल,
ऊँघते अनमने जंगल।
अजगरों से भरे जंगल,
अगम गति से परे जंगल,
सात सात पहाड़ वाले,
बड़े छोटे झाड़ वाले,
शेर वाले, बाघ वाले,
गरज और दहाड़ वाले,
कम्प से कनकने जंगल,
ऊँघते अनमने जंगल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री सुमित्रानंदन पंत ने भी प्रकृति वर्णन में यथार्थता लाने के उद्देश्य से ग्राम्या में गाँवों की सब्जी, पौधे और पक्षियों का विशद वर्णन करने के साथ साथ गाँव वालों के रीति रिवाजों, आभूषणों, उत्सवों, और समस्याओं का भी चित्रण किया है। इस प्रकार के प्रकृति वर्णन में बौद्धिकता विशेष रुप में पाई जाती है तथा प्रकृति को वास्तव में प्राकृतिक शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

चूँकि बाह्य जगत का अनुभूत ज्ञान ही अंतर्जगत का मूलआधार होता है अतः प्रकृति सौंदर्य के साथ-साथ मानव के अंतर्जगत का सौंदर्य वर्णन करने की ओर भी कवियों की दृष्टि गई। आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण करते समय कवि अपनी भावस्थिति में ही प्राकृति के समक्ष रहता था किन्तु काव्य का विस्तार तो मानवीय भावों में है और चूंकि प्रकृति द्वारा उनके भावों के उद्दीपन की प्रेरणा प्राप्त होती है अतः कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में भी चित्रित किया है। संस्कृत के प्राचीन कवियों ने जहाँ स्वान्तः सुखाय ही काव्य सृजन किया था वहाँ आगे चलकर कुछ काव्यमर्मज्ञ नरेशों द्वारा कुछ प्रतिभाशाली कवियों को राजसभा में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान कर देने से कविता का प्रसार राजप्रासादों के संकुचित क्षेत्र में ही सीमित रहा तथा प्रकृति का परंपरागत वर्णन ही किया जाने लगा। उद्दीपन रूप में प्रकृति वर्णन करते समय प्रकृति को काव्य के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में वर्णित किया गया तथा शृंगार रस का विशेष रूप से अवलम्ब लिया गया। श्रीलोकनाथ द्विवेदी 'सिलाकारी' के शब्दों में—"शृंगार रसाचार्यों के मत से तो सृष्टि सृजनकारी रतिभाव के कारण ही सुधांशु अपने रूप-लावण्य की पराकाष्ठा पर आकर समुद्र का हृदय डावाँडोल कर देता है। बालसूर्य की कोमल किरणों कमलों का द्वार खोल देती हैं। कोकिला की कूक में वसुधा का अभाव भरा शृंगार परिलक्षित होता है। सच तो यह है कि शृंगार और सौंदर्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। प्रकृति की सुन्दरता की उपासना शृंगार में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही होती है। सुन्दरवन, सुन्दर उपवन, सुन्दर मंदिर, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभरण, सुन्दर वेशभूषा, सुन्दर सामग्री, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषण, सुन्दर सामग्री, सुन्दर संगीत और वह सब जो 'शिव-सुन्दर' है, उस सबका वर्णन श्रृंगार में ही पूर्णतया होता है।" इस प्रकार कवियों के लिए प्रकृति अनुराग का विषय न होकर नायक और नायिका के विविध भावों को उद्दीप्त करने का साधनमात्र रही। आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन करते समय प्रकृति कवियों के लिए साध्य ही थी किन्तु उद्दीपन रूप में तो वह साधन के रूप में चित्रित की जाती रही। उद्दीपन में प्रकृति चित्रण तो हमारे यहाँ सभी कालों में और सभी वर्गों की कविताओं में पाया जाता है। संस्कृत कवियों ने भी प्रकृति के उद्दीपन रूप का विशदता के साथ चित्रण किया है और कालिदास के मेघदूत में तो इस प्रकार के चित्रों की बहुलता सी है। भक्तिकाल में जायसी की 'पद्मावत' में, सूर के 'सूरसागर' में तथा तुलसी के 'मानस' में आवश्यकतानुसार प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित किया गया है। 'पद्मावत' में प्रकृति वर्णन यद्यपि परम्परागत ही जान पड़ता है किन्तु कहीं-कहीं मर्मस्पर्शी भावव्यंजना से चित्रण अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। नागमती की विरहव्यथा के चित्रण में प्रकृति को विशेषरूप से साधन बनाया गया है तथा विरहानुभूति में स्वाभाविकता का समावेश किया गया है। केवल चेतन प्रकृति को ही नहीं बल्कि जड़ प्रकृति को भी जायसी ने मानव के दुःख से दुखी चित्रित किया है।

प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन विशेषरूप से रीतिकालीन कवियों ने ही किया है। संयोग तथा वियोग दोनों ही अवस्थाओं में इन कवियों ने प्रकृति का नायक और नायिका के भावों को उद्दीप्त करने का साधन माना है। संयोग श्रृंगार की अभिव्यंजना करते समय प्रकृति मानसिक उल्लास की वृद्धि करती है तथा शारीरिक उपभोग की वस्तु भी बन जाती है। मलय-समीर, शीतल चंद्रिका, निर्झर तट,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विहंगों का कलकूजन आदि प्रेमी प्रेमिका के संयोग होने पर पारस्परिक आकर्षण में अभिवृद्धि करते हैं। समस्त जड़ और चेतन प्रकृति नायक नायिका को प्रेम, आनन्द, सुख और उल्लास से पूर्ण प्रतीत होती है। प्रकृति का सुखद वातावरण उनके मन को प्रभावित करता है और उनके सम्मिलन को और भी अधिक सुखद बना देता है। प्राकृतिक वस्तुओं और कार्य व्यापारों से प्रेमी-प्रेमिका के मन में नवीन भावनाओं का संचार भी होता है और उसी के अनुसार उनके कार्य कलापों में परिवर्तन भी होता रहता है।❀ "रीतिकालीन कवियों के षटऋतु वर्णन में इस प्रकार के प्रकृति वर्णन की मनोहरता विस्तार के साथ दृष्टिगोचर होती है। सेनापति, बिहारी, मतिराम देव और पद्माकर की कृतियों में इस प्रकार के चित्रों की बहुलता सी है। मतिराम का एक छंद देखिए:—जिसमें कि प्रकृति को उद्दीपन विभावों के अंतर्गत चित्रित किया गया है और उसे नायक नायिका के पारस्परिक आकर्षण की वृद्धि में साधन बनाया गया है—

पूरन चंद उदोत कियो पग, फूलि रही बन जाति सुहाई।
मोंरन की अवली कल कैरव, कुंजन पुंजन में मृदु गाई॥
बांसुरी तानिन काम के बानिन लै मतिराम सबै अकुलाई।
गोपिन गोप कछू न गने, अपने अपने घर तैं उठि धाई॥

—मतिराम ग्रंथावली

❀ प्रकृति के नूतन परिवर्तनों से प्रेमी-प्रेमिका के हृदय किस प्रकार तरंगित हो उठे, यह देव की इस उक्ति में दर्शनीय है—

झूलन हारी अनोखी नई उनई इतही रहती रंग माती।
मेह में ल्यावै यै तैसिये संग की रंग भरी चुनरी चुचुवाती॥
झूला चढ़े हरि साथ हहाकरि देव झुलावति ही ते डराती।
भोर हिंडोले की डोंड़िन छाँड़ि अरे ससवाई गरे लपटाती॥

—सुख सागर तरंग छ० १६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंदी कविता में अधिकांशत: विप्रलम्भ शृंगार में ही प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया गया है। विरहिणी नायिका के विरहजन्य भावों को उद्दीप्त करने में वर्ष के प्रत्येक मास की प्राकृतिक-अवस्था और कार्य-व्यापारों की सहायता ली गई है तथा इस प्रकार रीतिकालिन कवियों के षट्ऋतुवर्णन या बारह मासा के छन्दों में विरह विदग्धा नायिकाओं के अंतस्तल की व्यथा का चित्रण करते समय प्रकृति के महोहारी दृश्यों को चित्रित किया गया है। संयोगावस्था में जो वस्तुएँ उन्हें सुखदायिनी प्रतीत होती थीं वे ही वियोगावस्था में दु:ख-प्रद और पीड़ा-वर्द्धिनी जान पड़ती हैं।* विरहाधिक्य में मानव को स्वाभाविक ही उन्माद सा हो जाता है और उसकी समस्त चेतना विलुप्त हो जाती है। विरहिणी नायिका तो इस प्रकार से ज्ञानशून्य सी हो जाती है और जुगनुओं को अंगारें समझकर अपनी सहेलियों को अंदर भागजाने को राय देती है—

---

* संयोगावस्था में शारीरिक सुख प्रदान करने वाले समस्त शीतोपचार नायिका के लिए प्रतिकूल से हो जाते हैं और उसकी दशा इस प्रकार हो जाती है—

कौन करे होरी कोउ गोरी समुझावै कहा,
नागरी को राग लग्यौ विष-सो-विराग सो।
कहर-सी केसरि कपूर लग्यो काल-सम,
गाज सो गुलाब लग्यो अरगजा आग सो॥

—पद्माकर

और भी—

प्रीतम अरग जातें, ताही तें अरगजा तें,
सीरक न होति, जुर जारत है मारकौं।
सीतल गुलाब हूँ सों घिसि उर पर कीनो,
लेप घनसार को सो मानों घनसार कौ॥

—सेनापति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरह जरी लखि जीगननि कह्यो न वहि कै वार ।
अरी जाउ भजि भीतरै, बरसत आजु अंगार ।।

—विहारी सतसई

सेनापति, विहारी, मतिराम, देव, घनानंद, पद्माकर आदि की काव्यकृतियों में विप्रलंभ श्रृंगार के अंतर्गत ही विस्तार के साथ प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया गया है कहीं कहीं तो कवियों ने ऊहा का आश्रय लेकर प्रकृति वर्णन की स्वभाविकता को नष्ट भी कर दिया है। आधुनिक काल के प्रारम्भ में भारतेन्दु जी ने भी अपने व्रजभाषा के छन्दों में रीतिकालीन कवियों की ही भाँति प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही वर्णन किया है और यद्यपि उनका प्रकृति चित्रण रीतिकालीन परम्पराओं से प्रभावित हुआ है किन्तु उसमें भक्तिकालीन कवियों की सी भक्तिभावना भी स्पष्ट देख पड़ती है। रासलीला का वर्णन करते समय उन्होंने समस्त प्रकृति और देवगणों की प्रफुल्लता का भी वर्णन किया है—

थाक्यो नभ चन्द देखि रैनि गति सिथिल भई।
लखि हरि गजपति संग गज गामिनी ।।
'हरीचंद' सोभा लखि देवमुनि नभ विथकित।
मानी हरि साथ सबै व्रज भामिनी ।।

आधुनिक हिंदी कविता में भी प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया गया है यद्यपि प्रकृति के परांपरागत रूपों का वर्णन करने की अपेक्षा प्रकृति निरीक्षण से उत्पन्न आनंद या विषाद के सहजोद्रेक के चित्रण पर ही कवियों ने विशेष ध्यान दिया है। जिस प्रकार शिशु किसी नवीन और सुन्दर वस्तु को देखकर हर्ष में मग्न हो स्वाभाविक सरलता से अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्त कर देता है उसी प्रकार आधुनिक हिंदी कवियों ने भी प्रकृति के अलौकिक सौंदर्य की छवि निहार कर अपने आनंदो को का चित्रण किया है। इस प्रकार अपने उद्दीपकत्व में प्रकृति व्यक्ति की रसभूमिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की सृष्टि करने का प्रयास करती है। 'काश्मीर सुषमा' में श्रीधर पाठक और पल्लव की अधिकांश कविताओं में पंत के आनंदोद्रेकों की धारा सी उमड़ पड़ी है। 'पल्लव' की उच्छ्वास शीर्षक कविता इस दृष्टि से विशेष प्रशंसनीय है जिसमें कि कवि ने पर्वत प्रदेश पर पावस ऋतु की सुषमा का अपूर्व चित्रण किया है—

पावस-ऋतु थी पर्वत-प्रदेश ;
पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार ;
—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल।

\+ \+ \+

—उड़ गया, अचानक लो, भूधर
फड़का अपार पारद के पर।
रव-शेष रह गए हैं निर्झर।
है टूट पड़ा भू पर अम्बर।
धँस गए धरा में सभय शाल।
उठ रहा धुँआ जल गया ताल।
—यों जलद-यान में विचर, विचर,
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल।

किन्तु इस प्रकार के प्रकृति चित्रण में प्रकृति साधन न होकर साध्य ही रही है अतएव उसे साधन रूप में चित्रित करने के लिए कवियों ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं और कार्यों की भूमिका अथवा पृष्ठ भूमि के रूप में भी चित्रित किया। चूँकि मानव का प्राकृतिक जीवन प्रकृति के क्रोड़ में ही है अतएव प्रेमी प्रेमिका के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेम भाव की भूमिका के रूप में प्रकृति ने कार्य सम्पादन किया है। आधुनिक हिंदी कविता के कई प्रबंध काव्यों और खंड काव्यों में इस प्रकार के प्रकृति वर्णन भरे पड़े हैं जो कि मानवीय कार्यों और भावनाओं की पृष्ठभूमि हैं। 'प्रेम पथिक' और 'ग्रंथि' में तो प्रकृति नायक नायिकाओं के स्वच्छंद प्रेम की भूमिका के रूप में ही अंकित की गई है। प्रसाद जी के प्रेम-पथिक का एक उदाहरण देखिए—

छोटे छोटे कुँज तलहटी गिरि कानन की शस्य भरी।
भर देती थी हरियाली ही हम दोनों के हृदयों में।
कलनादिनी प्रवीना तटिनी पूर्ण प्रवाह बहाती थी,
प्रेम चन्द्र प्रतिबिम्ब कलेजे में लेकर खेला करती।
व्योम अष्टमी का जो तारों से रहता था भरा हुआ,
उसके तारे भी चुक जाते थे जब गिनते थे हम दोनों।

आधुनिक हिंदी कविता में भी कवि परम्परानुसार उद्दीपन रूप में प्रकृति वर्णन किया गया है। प्रेमी प्रेमिकाओं ने प्रकृति में अपनी मनोदशा का प्रतिबिम्ब देखा है और इस प्रकार प्रकृति का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार न कर वे न तो प्रकृति के मुग्धकारी रूप प्रफुल्लित ही होते हैं और न उसके विनाश पर संतप्त ही होते हैं बल्कि अपने निजी हर्ष विषाद की अवस्थानुसार प्रकृति के हर्ष और संताप का अनुमान कर लेने हैं। अपनी सुख दशा में उन्हें प्रकृति की उग्रता, भयंकरता और क्षुब्धता भी प्रिय प्रतीत होती है परन्तु अपनी अपनी उद्विग्नावस्था में उन्हें प्रकृति की सुहावनी छवि भी भयंकर जान पड़ती है। इस प्रकार के प्रकृति वर्णन में काव्यगत दृष्टि से प्रकृति का केवल इतना ही महत्व है कि वह मानव के हर्ष-विषाद दोनों की मात्रा बढ़ाती है। आधुनिक हिंदी कविता में भी प्रकृति का उपयोग विप्रलंभ शृंगार में ही किया गया है। संयोग शृंगार में प्रकृति का वर्णन करते समय कवियों ने कहीं-कहीं प्रकृति में ऐन्द्रिय सुख का भी अनुभव किया है लेकिन रीतिकालीन कवियों की भाँति कामुकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और विलासिता का प्रदर्शन कहीं भी नहीं किया गया।✽ प्रबन्ध काव्यों, खंड काव्यों तथा प्रगति मुक्तकों में प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन विस्तार के साथ किया गया है और कवि परम्परानुसार षटऋतु वर्णन भी किया गया है। हरिऔध ने प्रिय प्रवास और वैदेही वनबास में, गुप्तजी ने साकेत, यशोधरा, शकुन्तला, जयद्रथवध और पंचवटी आदि में, रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक और मिलन में, तथा प्रसाद ने कामायनी में अपने पात्रों की विरहावस्था में स्वाभाविकता लाने के हेतु आवश्यकतानुसार प्राकृतिक दृश्यों का भी चित्रण किया है।± साथ ही साथ आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य

✽ हरिऔध जी को समस्त जड़ प्रकृति पति-पत्नी के ऐन्द्रिय सुख और विलास में मग्न प्रतीत होती है—

गोद में गिरिगण के बैठी घाटियाँ शोभा पाती हैं।
दौड़ती जाकर के नदियाँ समुद्रों में मिल जाती हैं॥
अंक में उपवन के विरची क्यारियाँ कान्त दिखाती हैं।
पादपों के सुन्दर तन में बेलियाँ लिपटी जाती हैं॥

± वियोगिनी की विरह व्यथित वेदना का संचार, गहरी अनुभूति और भावावेश के कोमल व्यापारों की सूक्ष्म अभिव्यंजना करते समय आधुनिक हिंदी कवियों ने नवीन विचारों का संचरण कर अपनी प्रतिभा की मौलिकता प्रदर्शिता की है। रीतिकालीन कवियों की अपेक्षा इनके प्रकृति वर्णन में इसीलिए अधिक स्वाभाविकता और सरसता का समावेश हो सका है। इस सम्बन्ध में श्री मैथिलीशरण जी गुप्त का कहना है कि—"साधारणत: विरह वर्णन में देखा जाता है कि विरही जन सारे उद्दीपन विभावों को उपालम्भ देकर कोसा करते हैं। द्विजराज चन्द्रमा तक को कसाई कह देना तो कोई बात ही नहीं और भी न जाने क्या क्या कहा जाता। किन्तु उर्मिला इस विचार के विरुद्ध मानो विद्रोह करती है। वह सब का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में भी प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित किया गया है और प्रकृति के अनन्त-सौंदर्य को देखकर कभी गीतिकार अपनी कल्पना का अवलम्ब लेकर एक सुखकर भाव जगत की सृष्टि करता है और कभी यथार्थता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रकृति के स्थायित्व में संदिग्ध होकर विषाद से पूर्ण होकर अपनी निराश भावनाओं का चित्रण करता है। कल्पना, चिंतन और अनुभूति के योग से जहाँ आधुनिक हिंदी गीति काव्य में प्रगीतत्त्व का पूर्ण विकास हुआ है वहाँ प्रकृति-चित्रण में भी नूतनता उठती है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा, बच्चन, दिनकर, अंचल आदि के कई स्फुट गीतों का आधार प्रकृति सौंदर्य ही रहा है और अपनी विगत

स्वागत करती है। इस कारण प्रकृति की शोभा में उसको अपने प्रियतम की आभा दिखायी देती है। + + + कभी वह चक्रवाक को सांत्वना देती है, कभी कोयल को धैर्य धराती है, कभी लता को अवसर से लाभ उठाने के लिए प्रेरित करती है, कभी कली को शिक्षा का पाठ पढ़ाती है। मकड़ी और मक्खी भी उसकी सहानुभूति से वंचित नहीं। अपने रुदन से वह एक पत्ता भी सूखा नहीं रहने देना चाहती और उसे सरस बनाने के लिए अंचल पसार लेती है।" यद्यपि सूरदास की गोपियाँ विरहोन्माद में इस प्रकार कहती हैं—

मधुबन तुम कत रहत हरे ?
बिरह-वियोग श्यामसुन्दर के काहे न उकठि परे ?

किन्तु उर्मिला की मनोभावनाएँ इस प्रकार की नहीं है—

वह चिर दिन तू हरी भरी,
बढ़ सुख से बढ़, सृष्टि सुन्दरी !

इस प्रकार आधुनिक हिंदी कविता में स्वाभाविकता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्था की स्मृति में निराश होकर आँसू बहाते समय उन्होंने प्रकृति को साधन भी बनाया है।

प्रसाद का 'आँसू' तो कवि के अंतर्जगत का पूर्ण चित्र है तथा 'लहर' में तो उनकी निराशा प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर होती है। लहर के गीतों में आत्माभिव्यक्ति, भावव्यंजना और संवेदना के साथ प्रकृति के प्रेम-सौंदर्य में विह्वल होकर अपना समस्त प्यार न्यौछावर कर देने की मधुर भावना भी है—

काली आंखों का अंधकार
जब हो जाता है वार-पार
मद पिये अचेतन कलाकार
उन्मीलन करता क्षितिज-पार
वह चित्र! रंग का ले बहार
जिसमें है केवल प्यार प्यार।

प्राचीन कवियों की भाँति आज का कवि भी अपनी मनोव्यथा को प्रकृति से उद्दीप्त होता हुआ पाता है। दिनकर ने भी अपनी मार्मिक भावनाओं को प्रकृति सौंदर्य से अनुरंजित किया—

पर्ण कुंजों में न मर्मर गान।
सो गया थककर शिथिल पवमान॥

अब न जल पर रश्मि-बिम्बित लाल।
मूँद उर में स्वप्न सोया ताल॥

सामने द्रुम-राजि तम साकार।
बोलते तम में विहग दो चार॥

झींगुरों में शोर खग के लीन।
दीखते ज्यों एक रव अस्पष्ट अर्थ-विहीन॥

दूर श्रुत अस्फुट कहीं की तान।
बोलते मानों तिमिर के प्रान॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण करते समय प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार न कर संयोग तथा वियोग दोनों ही अवस्थाओं में प्रेमी प्रेमिका की मनोगत भावनाओं को उद्दीप्त करने में, साधन के रूप में ही उसे प्रयुक्त किया जाता है लेकिन आदि कवि से लेकर अब तक प्रकृति को इस रूप में उपयोग किया जाता रहा है और प्राय: सभी कालों तथा सभी वर्गों की कविताओं में उसके इस रूप को चित्रित करने में कवियों ने उत्साह दिखाया है।❀ इस प्रकार डा० सुधीन्द्र ने उचित ही लिखा है—"जब तक मनुष्य के पास स्पन्दनशील हृदय है—अर्थात् जब तक उसमें कुछ भावनाएँ हैं, कुछ अनुभूतियाँ हैं तब तक वह अपने अन्तर्गत भावरूप की प्रकृति में छाया देखता रहेगा। और जब तक वह प्रकृति से यह तादात्म्य रहेगा, वह प्रकृति से प्रेम के, शोक के, रोष के सहानुभूति के मादक और निष्ठुर, उग्र और कोमल आघात पाता रहेगा। यह लौकिक अनुभव की बात है कि विषाद की मनस्थिति में

❀ अत्याधुनिकाल में भी प्रयोगवादी कवियों की कविताओं में प्रकृति का यह रूप दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरहण देखिए—

घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष—
वज्र सा, यदि तड़ित् से झुलसा हुआ-सा।
आह, मेरा श्वास है उत्तप्त—
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार—
प्यार है अभिशप्त—
तुम कहाँ हो नारि?

—अज्ञेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

झरना अश्रु बहाता, (क्रन्दन) करता हुआ और हर्ष की मनोदशा में मधुर हास्यध्वनि करता हुआ हमें प्रतीत होता है।"

प्राचीन तथा अर्वाचीन हिंदी कवियों ने कहीं-कहीं प्रकृति और प्राकृतिक दृश्यों को उपदेश और नीति का माध्यम बनाकर भी चित्रित किया है। वस्तुत: प्रकृति हमें सर्वदा ही गहन से गहन शिक्षा प्रदान करती रही है। प्राकृतिक वस्तुओं और उनके कार्य-व्यापारों को आदर्श मानकर चलने से प्रत्येक मनुष्य साहस, सद्बुद्धि और सांत्वना प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक वृक्ष का प्रत्येक पत्र किसी महाकाव्य के पत्र की सी क्षमता रखता है जिसके द्वारा हमें अमूल्य ज्ञान और अनंतसत्य का आभास होता है। प्रकृति के साधारण से साधारण पदार्थों और दृश्यों का भी कवि अपने आत्मानुभव के बल पर कवि और अपनी प्रत्यक्ष ज्ञान-शक्ति का आधार लेकर निजी कल्पना, संवेदना और बुद्धि से अनुरंजित कर इस प्रकार चित्रित करता है कि वे न केवल हृदयस्पर्शी जान पड़ते हैं और रस संचार करते हैं बल्कि साथ ही अटल सत्य की अलौकिक शिक्षा भी प्रदान करते हैं। प्रकृति को उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में सर्वप्रथम महर्षि व्यास ने ही श्री मद्भागवत में चित्रित किया है। श्री मद्भागवत में दशमस्कन्ध में बीसवें अध्याय में वर्षा और शरद्ऋतु का वर्णन करते समय प्राकृतिक दृश्यां वस्तुओं और कार्य-व्यापारों को उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में ही माना गया है।❀

❀ महर्षि व्यास के शरद् वर्णन की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

गाधवारि चरास्तापमविन्दञ्शरदर्कगम।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः॥
सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः।
यथा त्यक्तैषणः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषा॥
गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचः शिवम्।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास का 'मानस' इस दिशा में श्री मद्भागवत से विशेषरूप से प्रभावित हुआ है और उनके वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन तो श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के वर्णनों के सदृश ही हैं ॐ तुलसी को तो प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व उपदेशक सा प्रतीत होता है और कहीं कहीं प्रकृति का यथा तथ्य चित्रण करते समय भी उनकी केन्द्रीय भावना उपदेशक की सी ही रही है। चूँकि उनका उद्देश्य राम के लोकरक्षक और लोकरंजक रूप का ही चित्रण करना था अतएव प्रकृति के सुरम्य अथवा भयंकर वातावरण से न प्रभावित होकर उनकी दृष्टि लोक-कल्याण की कामना में ही रमी रही। तुलसी के अतिरिक्त अन्य किसी प्राचीन कवि ने प्रकृति को उपदेशक और नीति का माध्यम बनाने पर विशेष ध्यान नहीं दिया और न उनको सो सफलता ही प्राप्त की। प्रकृति निरीक्षण से उदासीन प्रतीत होनेवाले केशव ने उदाहरण रूपमें कहीं कहीं प्रकृति को उपदेशिका अवश्य बना दिया है पर उसमें तुलसी की सी सरसता और स्वाभाविकता नहीं है। आधुनिक हिंदी कवियों ने अवश्य प्रकृति वर्णन की इस प्रणाली को ग्रहण किया है और प्रकृति द्वारा एक ओर तो भक्ति तथा वेदांत विषयक और दूसरी ओर देशभक्ति विषयक उपदेशों का दिग्दर्शन कराया है। तुलसी की भाँति जहाँ प्रकृति के वृक्ष, पत्र और पक्षी सभी को उपदेशक बना दिया गया है वहाँ भारत की अधोगति पर खेद प्रकट

वाणीङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यर्थात् प्रपेदिरे।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वापिराडान्काल आगते॥

ॐ तुलसी के वर्षा वर्णन की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

दामिनि दमक रही घन माहीं। खल के प्रीति यथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराए। जथा नवहिं बुध विद्या पाए॥
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे॥
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरेहु धन खल बौराई॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हुए प्रकृति का आश्रय लेकर भारतवासियों को चेतावनी भी दी गई है। भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, और श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि आधुनिक कवियों के प्रकृति वर्णन में उपदेश और नीति की भावनाएँ यथेष्ट मात्रा में प्राप्त होती है।॥ इस प्रकार के प्रकृति वर्णन में प्राय: प्रकृति का अस्तित्व गौण सा हो जाता है और उपदेशात्मक भावनाओं को ही प्रधानता प्राप्त होती है। रहीम, गिरधर, दीनदयाल और विहारी जैसे कवियों ने जो जड़ प्रकृति या चेतना प्रकृति के समष्टि रूप या उसके किसी तत्व को अपना प्रतिपाद्य विषय बनाकर अन्योक्तियों द्वारा प्रकृति का उपदेशात्मक रूप प्रकट किया है उससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि उनके हृदय में प्रकृति के प्रति प्रेम अवश्य था तथा उनके प्रकृति वर्णन की इस शैली में नीति और कला का अद्भुत संगम भी देख पड़ता है।

बहुत से कवियों ने प्रकृति को उपमा रूपक आदि अलंकारों के

॥ भारतेन्दु को तो पुष्पों का खिलना और मुरझा जाना मानव जीवन के, विकास और ह्रास के समान जान पड़ता है—

खिल खिल कर सब फूल बाग में कुम्हला कुम्हला जाते हैं।
तेरी भी गति यहि है गाफिल तुझको यह दिखलाते हैं॥

तुलसी की भाँति 'पूर्ण' जी ने भी प्राकृतिक व्यापारों के लिए वेदांत और नीति के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—

उवत भानु के भयो सकल निसि तिमिर विनासा,
ज्यों नसात मोहांध होत जब ज्ञान प्रकासा।

गुप्त जी ने तो प्रकृति के महत्वपूर्ण पंच तत्वों को सर्वदा व्यस्त दिखला कर अपने देशवासियों को जाग्रत होने की चेतावनी दी है—

पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल सब लग रहे हैं काम में।
फिर क्यों तुम्हीं खोते समय हो व्यर्थ के विश्राम में॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप में भी प्रस्तुत किया है। वामन ने तो "काव्यं ग्राह्यमलंकारात्" लिखकर अलंकार सहित होने पर ही काव्य को ग्राह्य माना है तथा 'चन्द्रालोक' के रचयिता जयदेव का भी विचार है कि जो विद्वान अलंकार विहीन शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं वे अग्नि को भी उष्णता रहित क्यों नहीं मानते। वस्तुवर्णन में तो अलंकार विशेष रूप से सहायक होते हैं अतएव प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में भी उनकी सहायता लेने से प्राकृति सौंदर्य द्विगुणित हो उठता है। जिस प्रकार रम्य से रम्य भाव, और कल्पना भी; अलंकारों के अभाव में उतने सुन्दर नहीं प्रतीत होते जब कि साधारण भाव भी उनके सहयोग से चमत्कृत हो उठते हैं उसी प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं और कार्यों तक व्यापारों के चित्रण में जब अलंकारों की सहायता ली जाती है वे और भी अधिक चमत्कृत तथा चित्ताकर्षक हो जाते हैं। यह अवश्य है कि अलंकार स्वयं तो भावाभिव्यंजन नहीं करते हैं परन्तु भाव निरूपण में सहायक अवश्य होते हैं।

यह तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि अलंकारो का प्रचलन उस समय से है जब वाणी का व्यवहार विचार व्यक्त करने के हेतु प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक अलंकारों का प्रयोग होता चला आया है। अतएव स्वाभाविक ही कवियों ने अपनी मनोभावनाओं को अनुरंजित करने के लिए प्रकृति से भी सहायता ली है और उससे (प्रकृति से) उपमाएँ उधार लेकर लौकिक भावों, भावनाओं और प्रकृतियाँ का दिग्दर्शन कराया है इस प्रकार जड़ और चेतन तथा प्रकृति और मानव में समानता तो उत्पन्न हो ही जाती है प्राकृतिक वस्तुओं का चेतन मानव के शरीर रोगों का उपमान बन जाने के कारण विशेष महत्व प्राप्त हो जाता है। उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक द्वारा नायक-नायिका के रूप वर्णन के लिए इस प्रकार कवियों ने प्रकृति की ही सहायता ली। यद्यपि इस प्रकार के चित्रण में कवियों ने साहित्य शास्त्र में निर्धारित शैली का ही आश्रय लेकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम्परागत वर्णन-प्रणाली का ही आधार लिया है किन्तु बहुत से कवियों की उक्तियों में नवीनता भी दीख पड़ती है जिसका कारण उनकी बाह्य प्रकृति न होकर अन्तरंग प्रकृति ही है।※ बाह्य प्रकृति के साथ अंतरंग प्रकृति का सम्बन्ध होने पर बाह्य आकृति पर अन्तरंग मनोभावों की जो छाया पड़ती है उससे बाह्य आकृति में अन्तर आ जाता है। बाह्य आकृति की सुन्दरता स्थिर और अपरिवर्तनशील होने से निष्प्राण सी रहती है किन्तु जब उससे अन्त:करण की स्फूर्ति का योग होता है तब उसमें सजीवता और नवीनता आ जाती है। इसीलिए भिन्न-भिन्न अंगों के लिए जो उपमान नियत किए गए हैं वे केवल काल्पनिक न होकर अनुभूति के आधार पर भी माने गए हैं।

प्रकृति का अलंकार रूप में प्रयोग मध्ययुग की हिंदी कविता में विशेष रूप में मिलता है यद्यपि कहीं-कहीं अलंकार साधन न होकर साध्य ही बन गए हैं। संस्कृत में कालिदास, में यह प्रवृति विशेष रूप से थी और उनकी उपमाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। विद्यापति और सूर ने भी अलंकार रूप में प्रकृति का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है।± रीति

※ जबकि अधिकांश कवियों ने मुख को उपमा चन्द्रमा या कमल से दी है प्रसाद ने श्रद्धा के मुख को रवि मंडल के सदृश वर्णन कर प्रकृति वर्णन में नवीनता ला दी है—

आह ! वह मुख पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हो घनश्याम।
अरुण रविमंडल उनको भेद,
दिखाई देता हो छविधाम॥

± विद्यापति ने वसंत का जन्मोत्सव साँग रूपक की सहायता से अत्यंत आकर्षक एवं नवीन ढंग से वर्णन किया है—

नाचए जुवतिजना हरखित मन जनमल बाल मधाई हे।
मधुर महारस मंगल गावए मानिनि मान उड़ाई हे॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालीन कवियों का तो प्रमुख विषय शृंगार वर्णन ही था और चूँकि तत्कालीन कवियों ने राज प्रासादों के विलास पूर्ण वातावरण में नायिकाओं के हाव-भावों और सौंदर्य का वर्णन करना ही अपना ध्येय बना रखा था अतः उन्होंने मानव सौन्दर्य के उपमान के रूप में ही प्रकृति का उपयोग किया है। कही कहीं कवियों ने रमणीय स्थलों की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करने के लिए शब्द-साम्य के सहारे जो उपमान ग्रहण किए हैं वे किसी रम्यदृश्य से उद्भूत सौंदर्य की अनुभूति के सर्वथा विरुद्ध होने के कारण हृदय में सौंदर्य भावना की वृद्धि करने में सक्षम नहीं जान पड़ते। केशवदास में यह प्रवृत्ति विशेषरूप से थी और उनकी कविता को अत्यधिक विकृत, क्लिष्ट और अरुचिकर करनेवाली वस्तु उनकी आलंकारिक-चमत्कार की प्रवृत्ति ही है जिसके फलस्वरूप न तो उनकी भावव्यंजना ही स्वाभाविक जान पड़ती है और न वस्तु वर्णन में ही कुछ मर्मस्पर्शिता है। केशव में ही नहीं रीतिकालीन अधिकांश कवियों में अलंकार-प्रदर्शन की यह प्रवृत्ति विद्यमान थी और इस प्रकार आचार्य शुक्ल का यह कथन उचित ही जान पड़ता है—"प्रभात के सूर्यबिम्ब के सम्बन्ध में इस कथन से

वह मलयानिल ओत उचित है नव घन भओ उजियारा।
माधवि फूल भेल मुकता तुल ते देल गन्दनबारा॥
पीअरि पाँड़रि महुअरि गावए काहरकार धतूरा।
नागेसर-कलि संख धुनि पूर तकर ताल समतूरा॥
मधु लए मधुकर बालक दएहलु कमल-पंखरी·लाई।
पओनार तोरि सूत बाँधल कटि केसर कएलि बधनाई॥
नव नव पल्लव सज ओटा ओल, सिर देल कदम्बक माला।
बैसलि भमरी हरउद गावए चक्का चन्द निहारा॥
कनअ केसुअ सुति-पत्र लिखिए हलु रासि नछत कए लोला।
कोकिल गनित-गुनित भल जानए रितु बसंत नाम थोला॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि "कै शोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को" अथवा शिखर की तरह उठे हुए मेघखण्ड के ऊपर उदित होते हुए चन्द्रबिम्ब के सम्बन्ध में इस उक्ति से कि "मनहुँ क्रमेलक-पीठ पै धरयो गोल घंटा लसत" दूर की सूझ ही चाहे प्रकट हो, पर प्रस्तुत सौंदर्य की भावना का कुछ पुष्टि नहीं होती।" सेनापति, बिहारी और देव ने अवश्य ऋतुओं का उत्कर्ष व्यंजित करने के लिए कहीं-कहीं सादृश्य मूलक अर्थालंकारों की सहायता लेकर स्वाभाविक प्रकृति चित्रण भी किया है परन्तु प्रकृति इस प्रकार के वर्णनों में भी परम्परा पालन की रूढ़ियों से स्वच्छन्द नहीं हो पाई है।

आधुनिक हिंदी कविता में भी प्रकृति का आलंकारिक रूप में वर्णन किया गया है तथा उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों को सहायता से प्रकृति और मानव में सामंजस्य स्थापित किया गया है।* प्रकृति का प्रतीक रूप में भी प्रयोग किया गया है। साथ ही कवियों ने प्राकृतिक दृश्यों को अलंकारों के बोझ से बोझिल भी कर दिया है और इस प्रकार का प्रकृति वर्णन स्वतंत्र

---

* प्रसाद ने रूप वर्णन के लिए प्राकृतिक वस्तुओं से ही साधन जुटाये हैं:—

ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तल घने,
नील नलिन से नेत्र—चपल मद से भरे,
अरुण राग—रंजित कोमल हिमखण्ड से—
सुन्दर गोल कपोल सुढर नासा बनी।
धवलस्मित जैसे शारद घन बीच में—
(जो कि कौमदी से रंजित है हो रहा।
चपला-सी है ग्रीवा हंसी से बढ़ी।
रूप जलधि में लोल लहरियाँ उठ रहीं
मुक्ता गण हैं लिपटे कोमल कन्बु में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावना परक न होकर रूढ़िवादी और अलंकारों से आक्रान्त ही जान पड़ता है।

कवियों ने प्रकृति का उपयोग उसका मानवीकरण करके भी किया है। यद्यपि कुछ आलोचकों का यह भी मत है कि यह प्रवृत्ति अंग्रेजी साहित्य की देन है किन्तु वास्तविकता यह है कि इस प्रकार की प्रवृत्ति का आरम्भ वैदिक काल से ही हो जाता है। वेदों में उषा मरुत अग्नि आदि के सम्बन्ध में लिखी गई। ऋचाओं में भी मानवीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप में देख पड़ती है। यह अवश्य है कि प्राचीन हिंदी कविता में प्रकृति का मानवीकरण करने की ओर कवियों का बहुत कम ध्यान गया है और आधुनिक हिंदी कविता में ही विशेष रूप से प्रकृति सौंदर्य की मानव रूप में प्रतीक की भाँति अंकित करने का प्रयत्न किया गया और अपनी सौंदर्य भावना के अनुरूप कवियों ने उसे विशेषत: नारी रूप में ही चित्रित किया है। यों तो द्विवेदी युग में भी रामचरित उपाध्याय ने एक प्रेमी द्वारा पवन को दूत बनाकर प्रियतमा के पास भेजा था और हरिऔध ने भी प्रियप्रवास में विरहिणी राधा द्वारा पवन की दूती के रूप में भेज कर कल्पना और भावुकता के संयोग से प्रकृति का चेतनीकरण और मानवीकरण किया है। किन्तु वास्तव में प्रकृति में मानवीकरण की भावना छायावाद युग की ही देन है और पूर्ववर्त्ती कविता में इस प्रकार के सजीव सुन्दर सरस और सुमधुर उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं होते। वस्तुत: छायावादी कविताओं की यह एक विशेषता ही है कि उसमें प्रकृति में मानव रूप मानवगुण मानव क्रिया और मानव-भावना का आरोप किया जाता है इस प्रकार प्रकृति को सचेतन रूप में देखा जाने लगा और कविगण किसी प्राकृतिक वस्तु के रूप, भाव और वातावरण को लेकर एक सुंदर मानव रूप की सृष्टि करने लगे। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की कृतियों में इसके उदाहरण प्रचुरता से मिलते हैं और उन्हें प्रकृति का मानवीकरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने में अद्वितीय सफलता भी प्राप्त हुई है। वसन्त की मधुरिमा-मय रात्रि को महादेवी ने कुशलता के साथ नारी रूप में अंकित किया है—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी
तारकमय नव वेणी-बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन अवगुंठन,
मुक्ताहल अविराम बिछा दे चितवन से अपनी
फूलकती आ वसन्त रजनी।

इसी प्रकार निराला की प्रसिद्ध कविता 'संध्या सुन्दरी' देखिये—

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर, मधुर, हैं दोनों उसके अधर —
किन्तु गभीर,—नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुंथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर पथ से चली।

प्रकृति का मानवीकरण करते समय कवियों ने उसके वासनामय सौंदर्य का भी चित्रण किया है और प्रकृति की नायक नायिकाओं को भी विषय-रस संलग्न चित्रित किया है। निराला की प्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' में जुही की कली एक साधारण कली न रहकर एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानवीय नायिका के रूप में चित्रित की गई है और मलयानिल भी शरीर धारी प्रेमी (नायक) के रूप में अङ्कित किया गया है। दोनों प्रेमियों की प्रेम क्रीड़ा में मानवी सजीवता विद्यमान है। इस प्रकार 'शेफालिका में भी कवि ने शेफाली के वासनामय सौन्दर्य का चित्रण किया है—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन-उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोती शेफालि के।
मूक-आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।

जिस प्रकार प्रकृति मानवीय भावों, क्रियाओं और व्यापारों की प्रतिकृति के रूप में चित्रित की गई उसी प्रकार मानव भी अपनी भावनाओं और क्रिया व्यापारों में प्रकृति का प्रति रूप माना गया। प्रकृति और मानव में भावनाओं का एक प्रकार से रहस्यालोकित आदान-प्रदान हुआ और कवियों ने प्रकृति में परम तत्व का आभास पाया और उसे विश्वात्मा के दर्शन का माध्यम माना। रहस्यवादी कवियों के लिए प्रकृति के कण कण में दैवी सत्ता की झलक देख पड़ती है और—विराट् साधना के मार्ग में प्रकृति सर्वदा ही उनके साथ रही है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने 'यामा' की 'अपनी बात' में इस आध्यात्मिक आधार के सम्बन्ध में लिखा भी हैं—'प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियों और कठोर शिलायें, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की अनेक रूपता में, परिवर्तन शील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य सोचने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।"

प्रकृति और पुरुष को एक मान लेने की भावना हमें वैदिक काल में भी देख पड़ती है तथा तत्कालीन मानव ने भी प्रकृति में परमतत्त्व का आभास देखा था। मध्यकालीन हिंदी कविता में एक ओर तो अद्वैतभावना को ही महत्व दिया जाता रहा और दूसरी ओर अवतारवाद का भी प्रारम्भ हुआ। संत काव्य में तो अद्वैतवाद और ब्रह्मवाद की ही झलक देख पड़ती है तथा अमर तत्त्व को अंतर में ही व्याप्त माना गया है। जैसा कि डा० रघुवंश ने लिखा है-"संतों की अन्तर्मुखी साधना में अलौकिक अनुभूति का स्थान है और उसी की व्यंजना के लिए प्रकृति रूपों का आश्रय लिया गया है।" सूफी कवियों के लिए भी आत्मा और परमात्मा की एकता एक अनुभूत सत्य है। उनकी दृष्टि में सकल विश्व उसी परम-तत्त्व की सौंदर्य सत्ता से पूर्ण है और उसी की दिव्य विभूति चराचर सृष्टि में व्याप्त है। इस प्रकार प्रेमाख्यान के काव्यों में प्रकृति के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य और प्रेम व्यंजना दोनों को प्रस्तुत किया गया। जहाँ प्रकृति की व्यापकता, नितान्त सघनता, चिरंतन स्थिति तथा स्वर्गीय कल्पना आध्यात्मिक वातावरण को प्रस्तुत करती है वहाँ उसका अलौकिक सौंदर्य और उल्लास प्रेम की आध्यात्मिक व्यंजना भी करता है। सर्ववाद की भावना आधुनिक हिंदी कविता में भी दृष्टिगोचर होती है तथा आधुनिक हिंदी कवियों को भी प्रकृति में सर्वत्र दैवी सौंदर्य का आभास होता है और उन्हें भी प्रकृति के चित्रों में आध्यात्मिक अनुभूति हुई है तथा आध्यात्मिक रहस्य की व्यंजना भी उन्होंने की है श्री मुकुटधर पांडेय जहाँ प्रकृति में विराट सत्ता का आभास देखते हैं—

यह स्निग्ध सुखद सुरभित समीर,
कर रहा आज मुझको अधीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किस नील उदधि के कूलों से
अज्ञात वन्य किन फूलों से
इस नवप्रभात में लाती है
जाने यह क्या वार्ता गभीर
प्राची में अरुणोदय अनूप
हैं दिखा रहा निज दिव्य रूप
लाली यह किसके अधरों में
लख जिसे मलिन नक्षत्र–हीर

वहाँ पंतजी को ऐसा जान पड़ता है मानों प्रकृति के द्वारा कोई उन्हें मौन-निमंत्रण दे रहा है—

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुवास
बिधुर-उर के-से मृदु-उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन

कवियों में प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है और इस प्रकार वह उनको हृदय से भिन्न न रहकर उन्हीं के जीवन का अंश बन कर सामने आती है। महादेवी ने अपनी निम्नांकित कविता में अपने जीवन की छाया सन्ध्या के आकाश में प्रतिविम्बित की है—

प्रिय सांध्य गगन, मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीलें घन
साधों का आज सुनहला पन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घिरता विषाद का तिमिर गहन,
संध्या का नभ से मूक मिलन।
यह अश्रुमती हँसती चितवन।

प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने की भावना से प्रकृति और मानव की एकता चरमसीमा पर पहुँच जाती है; दोनों में एकही सत्ता: की व्यापकता देख पड़ती है और इसी सत्ता के दर्शन के आधार पर समस्त सृष्टि के साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार मानव के हृदय में प्रकृति-प्रेम पूर्ण रूप से स्थापित हो जाता है और वह प्रकृति में अपनी ही व्यापक आत्मा दर्शन करने लगता है। प्राकृति में परम तत्त्व का आभास अधिकांश आधुनिक कवियों ने पाया है तथा, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि कवियों ने प्रकृति चित्रण की इस प्रणाली का आधार लेकर जहाँ समस्त प्रकृति में विराट की अपार सत्ता की झलक देखी है वहाँ प्राकृतिक दृश्यों की रम्यझाँकी भी प्रस्तुत की है।

इस प्रकार हम देखते है कि हिंदी कविया में प्रकृति चित्रण की विविध शैलियाँ प्रचलित हैं तथा कवियों ने अपनी विशेष भावनाओं का आधार लेकर प्रकृति-निरीक्षण किया है और अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार प्रकृति सौंदर्य का चित्रण किया है। वस्तुत: प्रकृति प्राचीन काल से लेकर अत्याधुनिक युग के कवियों की प्रेरणा का स्रोत रही है और उसके सौंदर्य से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी कला कृतियों में प्रकृति के विविध रूपों को उन्मीलित भी किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक की प्रसिद्ध कृति

हिन्दी कवियों की काव्य-साधना पर

कुछ अमूल्य सम्मतियाँ

"पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।..........."

—डा० धीरेन्द्र वर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

"हिंदी कवियों की काव्य साधना की एक प्रति मिली। अनेकानेक धन्यवाद। पुस्तक के कई अंश में चाव से पढ़ गया। आपने इस मध्यप्रदेश में ऐसे विद्वान इने गिने ही हैं जो कवियों के सम्बन्ध में गम्भीर अध्ययन करके पाठकों के लिये ज्ञातव्य सामग्री दे सकें। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपने इस पुस्तक द्वारा न केवल उच्च परीक्षाओं के विद्यार्थियों ही के लिये किन्तु सामान्य साहित्य प्रेमियों के लिये भी उत्तम वस्तु प्रदान की है। मैं आशा करता हूँ कि हिंदी संसार इस उपादेय ग्रंथ का आदर करेगा और अपने प्रदेश में इसका पर्याप्त प्रचार होगा।"

—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र एम० ए०, एल् एल् बी० डि० लिट्०

भू० पू० अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय

भू० पू० अध्यक्ष, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन

"पुस्तक आपने बड़े मनोयोग पूर्वक लिखी है। + + + यह साहित्य रसिकों के लिए संग्रह की वस्तु है और परीक्षार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है। मैं इसके लिए आपको बधाई देता हूँ।

—परशुराम चतुर्वेदी,

एम० ए० एल० एल० बी०

सुन्दर आकर्षक छपाई, सजिल्द और ह्वाइट प्रिंट कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य, केवल साढ़े चार रुपए।

प्रकाशक—

नवयुग ग्रंथागार, छितवापुर रोड, लखनऊ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक की प्रसिद्ध कृति

'हिन्दी कवियों की काव्य-साधना' पर दो अमूल्य सम्मतियाँ

"मिश्र जी हिन्दी साहित्य के एक श्रेष्ठ कलाकार हैं यही कारण है कि हिन्दी कवियों का संक्षिप्त परिचय उन्होंने इस खूबी से दिया है कि हिंदी साहित्य से अपरिचित व्यक्ति भी उसे पढ़कर हिंदी के प्रत्येक कवि को अपने सामने पा सकता है। आपकी शैली और भाषा अत्यंत रोचक और सहज है। विद्यार्थियों के लिए तो यह पुस्तक सजीवन मूरि बन सकती है। सिद्धान्तों और वादों की जो झलक साहित्य में मिलती है, उसके प्रति मिश्रजी के विचार अत्यंत संयत और सारगर्भित हैं।" विशालभारत, कलकत्ता।

"हिन्दी कवियों की काव्य साधना पुस्तक में मिश्रजी ने वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के छब्बीस प्रमुख कवियों के जीवनवृत्त, शैली, काव्य सौन्दर्य एवं प्रणीत ग्रन्थों का परिचय दिया है। हिंदी साहित्य के सभी कालों के प्रतिनिधि काव्यकारों को इस पुस्तक में स्थान मिला है, किन्तु आधुनिक काल के कवियों का परिचय अधिक संक्षिप्त हो गया है। फिर भी यह पुस्तक साहित्य रत्न, प्रभाकर और माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों के लिए उपयोगी है। विद्यार्थी-वर्ग को कवियों के परिचय और आलोचना के लिए प्रस्तुत पुस्तक में एकत्रित सामग्री मिल जाती है और उन्हें इधर उधर भटकना नहीं पड़ता। पुस्तक की भाषा संयत और प्रांजल है।" साहित्य सन्देश, आगरा।

सुन्दर आकर्षक छपाई, चित्ताकर्षक आवरण पृष्ठ, ह्वाइट प्रिंट कागज पर मुद्रित, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल साढ़े चार रुपए।

प्रकाशक

नवयुग ग्रन्थागार; छितुवापुर रोड, लखनऊ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।

अन्तर्द्वन्द्व

(श्री वीरभानुसिंह 'प्रताप')

यह एक सुन्दर दार्शनिक उपन्यास है जिसमें विश्वकी दो महान संस्कृतियों की टक्कर और अभूतपूर्व संघर्ष दृष्टिगोचर होता है। अबला कही जानेवाली भारतीय ललनाएँ संसार तक को बदल डालने की क्षमता रखती हैं; यह इस उपन्यास में विशेष रूप से देख पड़ता है। परित्यक्ता नारी की प्रतिक्रिया, हिन्दू रमणी के महान सामाजिक प्रयास तथा रोमांस के पीछे छिपकर चलने वाली जीवन की दार्शनिक गहराई इस उपन्यास में देख पड़ती है। रुदन और हास भरे क्षण तथा जीवन की रुपहली चाँदनी बिखेरनेवाले कथानक में विनोद की सुरुचिपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। इसमें जीवन के चौराहे पर खड़े होकर बोलने वाले, दुर्भाग्य से लड़ने वाले, संघर्ष प्रिय पुरुषों और विपत्तियों तथा विराग से लोहा लेने वाली नारियों का अभूतपूर्व चित्रण किया गया है और समाज की प्रगति का नाम लेकर समाज की जड़ खोदने वाले सामाजिक पाकेट मारों के चरित्र की झाँकी भी प्रस्तुत की गई है। संयोग और वियोग के सजीले स्वप्नों से सजे हुए कथानक को इसमें प्रस्तुत किया गया है। प्रसिद्ध उपन्यास कार श्री अमृतलाल नागर और श्री रूपनारायण पांडे ने पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सुन्दर कवर पृष्ठ और छपाई के साथ लगभग ३०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ३||) रु०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi